1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-5, अंक-6, जून-जुलाई 2022, ₹50/-

आज़ादी का अमृत महोत्सव

सांस्कृतिक यात्रा के 25 वर्ष पूर्ण...

# कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

## नाद ब्रह्म विशेषांक

अतिथि संपादक : प्रो.डॉ. मधु भट्ट तैलंग

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

सबसे पहले
लाइफ इंश्योरेंस

# एक मुश्त प्रीमियम.
## सुनिश्चित लाभ.

एल आई सी का
एकल प्रीमियम
न्यू बीमा बचत
मनी बैक पॉलिसी

UIN: 512N284V02 Plan No. 916

## एकल प्रीमियम मनी बैक पॉलिसी

- पॉलिसी अवधि के दौरान हर 3 साल में बीमाराशि के 15% के बराबर मनीबैक
- मैच्योरिटी बेनिफिट : चुकाये गये कुल प्रीमियम (अतिरिक्त प्रीमियम को छोड़कर) के साथ लॉयल्टी एडीशन *
- परिपक्वता तक बीमा कवर
- अवधि 9,12,15 वर्ष
- न्यूनतम आयु : 15 वर्ष
- 1 वर्ष बाद लोन सुविधा उपलब्ध

**भ्रामक फोन कॉल्स तथा फर्जी/ धोखाधड़ी वाली ऑफर्स से सावधान**

आईआरडीए सर्वसाधारण को सूचित करता है • आईआरडीए या इसके अधिकारी, बीमा विक्रय या वित्तीय उत्पाद अथवा प्रीमियम निवेश संबंधी गतिविधियों से संबंध नहीं रखते • आईआरडीए किसी प्रकार के बोनस की घोषणा नहीं करता. ऐसे फोन आने पर कॉल विवरण तथा फोन नंबर की रिपोर्ट तुरंत पुलिस में दर्ज करवाये.

आपके एजेंट/नजदीकी शाखा से संपर्क करें
अथवा हमारी वेबसाईट **www.licindia.in** देखें
अथवा SMS करें **'CITY'** और भेज दें **56767474** पर (उदाहरण **'Mumbai'.**)

Follow us : YouTube LIC India Forever

*निगम के अनुभव पर निर्भर

आईआरडीएआई पंजीकरण संख्या : 512

LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

LIC/AR/19-20/23/HIN

बिक्री के समापन से पूर्व कृपया विस्तृत जानकारी के लिए बिक्री पुस्तिका को ध्यानपूर्वक पढ़े।

एलआईसी का हो साथ, तो फिक्र की छोड़ो बात
**मध्य क्षेत्र, भोपाल**

RNI NO. MPHIN/2017/73838

**1998 से निरंतर प्रकाशित**

**देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका**

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

**www.kalasamaymagazine.com**

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

**(वर्ष : 20+05=25) पूर्णांक-117**

**वर्ष-5, अंक-6, जून-जुलाई -2022, मूल्य : ₹50/-**

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

# कला समय

**कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका**

**संरक्षक**

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

**परामर्श**

लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
ललित शर्मा
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

**सांस्कृतिक प्रतिनिधि**

चेतना श्रीवास

**वेबसाइट प्रबंधन**

मयंक अग्रवाल

**कानूनी सलाहकार**

जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

**पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान**

पेंटिंग : विजय शर्मा

**संपादक**

भँवरलाल श्रीवास

**सलाहकार संपादक**

डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

**सह संपादक**

डॉ. मधु भट्ट तैलंग

**उप संपादक**

राहुल श्रीवास

**संपादक मंडल**

डॉ. बिनय षड़ंगी राजाराम

**साहित्य**

अरुण तिवारी

**समसामयिक**

हरीश श्रीवास

**कला, संस्कृति**

नरिन्दर कौर

**प्रबंध**

**सदस्यता सहयोग राशि:**

| | | | |
|---|---|---|---|
| **वार्षिक** | : | 300 ( व्यक्तिगत ) | 350 ( संस्थागत ) |
| **द्वैवार्षिक** | : | 600 ( व्यक्तिगत ) | 700 ( संस्थागत ) |
| **चार वर्ष** | : | 1000 ( व्यक्तिगत ) | 1200 ( संस्थागत ) |
| **आजीवन** | : | 10,000 ( व्यक्तिगत ) | 12000 ( संस्थागत ) |

( 15 वर्ष के लिए )

( कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें )

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

**कार्यालय सम्पर्क :**

**संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग**

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

**ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :**

**'कला समय' का बैंक खाता विवरण**

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास

## इस अंक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

अशोक आत्रेय

डॉ. सुमन चौरे

डॉ.राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल

डॉ. रविदीन रामसमूज

लक्ष्मीनारायण पयोधि

प्रो.डॉ. सत्यवती शर्मा

प्रो.डॉ. सृष्टि माथुर

डॉ. राजेश शर्मा

डॉ. श्याम सुंदर शर्मा

डॉ. मोहनलाल

**इस विशेषांक की अतिथि संपादक**

**प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग**

वरिष्ठ ध्रुवपद गायिका, पूर्व अधिष्ठाता, ललित कला संकाय
पूर्व अध्यक्ष, संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

## इस बार


- अतिथि संपादक की कलम से 05
- संपादकीय 09
- **आलेख** 11
  कला: ब्रह्म के आनन्द की अनुकृति / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
- **अद्वैत-विमर्श**
  शंकराचार्य:अद्वैत और श्रीविद्या / डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 14
- **आलेख**
  सत-चित-आनंद का विस्तार हैं हमारी सारी कलाएँ/ अशोक आत्रेय 17
  ध्रुवपद गायकी के मूर्धन्य संत साधक / प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग 20
- **साक्षात्कार**
  ध्रुवपदाचार्य पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग से ध्रुवपद-गायक डॉ. श्याम सुन्दर शर्मा का संवाद 23
- **आलेख**
  भारतीय ध्रुवपद गायकी में नादब्रह्म... / प्रो.डॉ. मधु भट्ट तैलंग 31
  संगीत का परम उद्देश्य नादब्रह्म उपासना / प्रो.डॉ. सृष्टि माथुर 38
  नाद ब्रह्म का संगीतिक महत्व / डॉ. राजेश शर्मा 40
  नाद ब्रह्म और संगीत / डॉ.राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल 43
  ईश्वरवाद एवं नाद-ब्रह्म : एक विवेचन / डॉ. रविदीन रामसमूज 46
  संगीत में 'नाद-ब्रह्म' की अवधारणा / डॉ. मोहन लाल 48
  योग और नादब्रह्मवाद / प्रो.डॉ. सत्यवती शर्मा 51
  नाद-ब्रह्म और उसका स्वरूप / डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग 54
  गीत और प्रतीक / गोपालचंद्र जोशी 59
  सत्य का अन्वेषण और शब्द के रूपाकार / लक्ष्मीनारायण पयोधि 64
  निमाड़ की महिलाओं के लोकगीतों में गुरु दर्शन / डॉ. सुमन चौरे 69
  स्वतंत्रता आन्दोलन का साहित्य.. / पं. कैलाश चन्द्र घनश्याम पाण्डेय 73
- **ध्रुवपद स्वरलिपि**
  भट्ट-परम्परा के तीन ध्रुवपद... / प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग 77
- **संस्मरण**
  पं. भजन सोपोरी / प्रदीप टांक 80
  बाबा योगेन्द्र भारती जी को श्रद्धासुमन / अरुण कुमार शर्मा 82
- **पुस्तक समीक्षा**
  उपन्यास राजमहिषी मामोलाबाई / लक्ष्मीनारायण पयोधि 84
  मैं बंदूकें बो रहा / डॉ. रोहिताश्व अस्थाना 87
  शाश्वत संवाद / राम मेश्राम 89
- **आयोजन**
  कलाघर में याद किए गए संत कवि रविदास 93
  कथाकठौती की समीक्षा-गोष्ठी 94
- **समवेत** 95
  नादब्रह्मोपासना की पर्याय ध्रुवपद गायकी की दो प्रशिक्षण-कार्यशालाएँ / संदीप व श्रीति राशिनकर पुणे में कालीदास पुरस्कार से सम्मानित / 'पर्यावरण और हम' विषय-केंद्रित एक कला-प्रतियोगिता का आयोजन / 'सीस दिए जो गुरु मिलै, तौ भी सस्ता जान' / पखावज वादक पं. रामजीलाल का निधन / कला समय पत्रिका के स्वतंत्रता आन्दोलन में मध्यप्रदेश की गौरवगाथा विशेषांक (1857-1947) का उज्जैन में लोकार्पण /
- **समय की धरोहर**
  डॉ. एन. राजम् 97
- **संस्मरण**
  डा. एन. राजम् तब और अब... / जगदीश कौशल 98



**शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स,** भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र** - भारत भवन के सौजन्य से, **अंतिम आवरण पेंटिंग :** श्री गोपाल भारती, जयपुर (राज.) | **छायाचित्र** -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार | **पेंटिंग** - विजय शर्मा | **सहयोग** - धन सिंह, लता श्रीवास | **आवरण सज्जा** - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

**अतिथि संपादक की कलम से...**

# पुरोवाक्

**तुम ब्रह्मा हम आत्मा, तुम सबके परमात्मा, तू ही गुरु हम चेला, करो जग के सब खेला।**
**तुम आदि, मध्य, अंत, ओंकार प्रणवन्त, साधत सब साधु-संत, तुम कला हम कलावंत।**
**तुम भक्ति रस हम प्याला, तुम शीश हम माला, तुम कृष्ण रखवाला, हम ब्रज गोपी-ग्वाला।**
**तुम संगीत हम साधक, तू ही पिता हम जातक, सब रिध-सिध सुखदायक, शान्ति-मुक्ति विधायक।**

**( आत्मा, ब्रह्मा एवं नाद के अन्तर्संबंध पर आधारित लेखिका रचित ध्रुवपद )**

कला-समय के सुधि पाठकों को मेरा सादर प्रणाम एवं वन्दे मातरम्। मुझे यह बताते हुए अत्यन्त हर्ष है कि कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक सन्दर्भों से गुम्फित एवं सुशोभित प्रतिष्ठित राष्ट्रीय पत्रिका 'कला समय' की गौरवपूर्ण यात्रा के 25वें वर्ष एवं सम्पूर्ण देश में मनाये जा रहे भारत के '75वें आज़ादी अमृत महोत्सव' के विशेषोपलक्ष्य में प्रकाशित की जा रही महत्वपूर्ण कड़ियों में कुछ विशिष्ट अंकों का प्रकाशन किया जा रहा है, जैसा कि पिछला अंक स्वतंत्रता-आन्दोलन में मध्यप्रदेश की महती भूमिका एवं योगदान पर प्रकाशित होकर पाठकों के हाथ में पहुंच चुका है। इसी कड़ी में ही 'कला समय' के संपादक परम आदरणीय श्रीमान भँवरलाल जी श्रीवास, जो स्वयं साहित्य एवं कला-क्षेत्र की अज़ीम शख़्सियत हैं, आपकी पहल एवं सद्कामना से ही जून-जुलाई का विशेषांक 'नाद-ब्रह्म' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है एवं जब उनका दूरभाष द्वारा मुझे इसके अतिथि संपादक के रूप में कार्य करने हेतु निमंत्रण प्राप्त हुआ तो मैं एक ओर तो अत्यन्त अभिभूत हो गई किन्तु इतने विराट विषय पर मैंने अपना क़द बहुत छोटा महसूस किया और सत्यत: मुझे एक बार तो यह कार्य बहुत दुष्कर लगा किन्तु मेरी माताश्री एवं परमपिता गुरुवर्य ध्रुवपदाचार्य पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग जी के लगभग 50 वर्षों पूर्व के उस कठिन साहस को मैंने पुन: याद किया जब उन्होंने एक पुरुषसाध्य एवं पुरुष-वर्चस्व वाली दु:साध्य गायकी की बागडोर मेरे नन्हें हाथों में जिस विश्वास एवं आशा से थमाई थी, जो कदम-कदम पर चुनौती बन कर मुझे और भी ताकतवर बनाती रही, मैंने उसी आत्मविश्वास से ही इस कार्य को भी चुनौती माना और आ. श्रीवास जी द्वारा मुझ जैसी बहुत छोटी सी साधिका की योग्यता के प्रति किये गये विश्वास को श्रद्धावनत होकर प्रणाम किया एवं प्रभु व अपने गुरु के प्रति नतमस्तक होकर इस गूढ़ कार्य की सफलता हेतु प्रार्थना की एवं कर्म-पथ पर चलना प्रारम्भ करते ही विचार-मन्थन भी शुरु हुआ। विषय के विविध आयामों एवं विषय वस्तुओं यथा- धर्म, दर्शन, आध्यात्म, विज्ञान, भौतिक शास्त्र, मनोविज्ञान, धर्म-गुरुओं एवं उनके सिद्धान्त, योग, नाद-साधकों की तपस्या, योगदान एवं उनकी रचनाधर्मिता; विविध कला-क्षेत्र, हिन्दी-संस्कृत वाड्मय एवं अंग्रेजी-साहित्य, संगीत-विधाएं, संगीत-ग्रंथ, नादब्रह्ममयी संगीत-रचनाएं, वैश्विक विचारणाएं, प्रचलित-अप्रचलित गेय श्लोकों, विविध भाष्य, सूत्रों एवं टीकाएं आदि-आदि के विशेषज्ञ एवं विद्वान लेखकों, विचारकों, साधकों, सर्जकों, शिक्षाविदों एवं रचनाकारों आदि की खोज की एवं मैंने उनसे सतत् रूप से लगातार पिछले ढ़ाई-तीन महीनों से इस अंक में अपने ज्ञानालोक से पाठकों को भी अपने आलेख के माध्यम से आलोकित करने हेतु विनम्र निवेदन किये, किन्तु ग्रीष्मावकाश होने एवं कोरोना की त्रासदी से अभी पूरी तरह विमुक्त नहीं हुए देश-विदेश के विद्वान् लेखकों द्वारा मुझे इस कार्य को कराने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा किन्तु कुछ सक्रिय, अध्ययन एवं चिंतनशील और सद्भावी विद्वान् लेखकों एवं साधकों ने अपनी तमाम अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद इस अंक के लिए अध्यवसायपूर्ण रूप से कार्य किया,मैं उन सभी के प्रति अत्यन्त आभारी हूँ। निश्चय ही श्री भँवरलाल श्रीवास जी का 'नाद ब्रह्म' जैसे विषय पर अंक निकालना अप्रतिम अथवा अद्वितीय कार्य ही कहा जायेगा क्योंकि जहां तक मुझे ज्ञात है कि कला एवं संगीत की आज तक की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में अभी तक 'नाद ब्रह्म' जैसे महत्वपूर्ण विषय पर विशेषांक के रूप में कोई भी पत्रिका नहीं छापी

गयी, इस ओर आपका सम्भवत: अपूर्व, अद्वितीय, अनन्य एवं अनूठा प्रयास है, जो निश्चय ही श्लाघनीय है जबकि यह विषय ऐसा है कि संगीत का प्रत्येक गंभीर साधक इस विषय से गहरी आस्था के साथ हर युग में अपना जुड़ाव रखता आया है। इसके प्रमाण के रूप में एक घटना मैं पाठकों के समक्ष रखना अत्यन्त आवश्यक समझती हूँ। जयपुर में लगभग 25 वर्षों पूर्व एक महत्वपूर्ण संगीत-सेमिनार हुआ, जिसमें संगीत के आध्यात्मिक पक्ष पर गंभीर रूप से चर्चा हुई, जिसमें विषय-विशेषज्ञ के रूप में उपस्थित हुए एक प्रतिष्ठित शिक्षक का वक्तव्य था कि कलाकार के रूप में मनुष्य में अपार सम्भावनाएं हैं, वह बहुत बड़ा सर्जक है, उसने अनेक बहुत बड़े रचनाकर्म भी किये किन्तु इसमें ईश्वर का कोई योगदान नहीं, जो कुछ रचा उस मनुष्य ने फिर भी आस्तिकतावश वह अपनी योग्यता का सही आकलन न करके अपने सारे योगदान को प्रभु पर न्यौछावर कर देता है, इस पर काफी मत-विमत हुए, अन्ततोगत्वा सभी प्रतिभागियों को इसके पक्ष-विपक्ष में बेनाम चिट प्रस्तुत करने के लिए कहा गया।

सेमिनार में उपस्थित सभी प्रतिभागियों ने उसे बहुमत से सिर्फ प्रभु का ही आशीर्वाद माना और उन्हें उसी तरह निरुत्तर कर दिया जैसा कि योग और ब्रह्म के ज्ञाता उद्धव को कृष्ण-प्रेम के अधीन गोपियों ने, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रभु की आस्था से युक्त आध्यात्म लगभग प्रत्येक भारतीय संगीत-साधक के संस्कारों में खून की तरह घुला-मिला हुआ है। मेरे गुरु के वाक्य हैं कि ''यदि कृष्ण-तत्व को ही संगीत से निकाल दिया जाये तो उसके अभाव में संगीत ही प्राणहीन हो जायेगा। ध्रुवपद धाराशायी; ख्याल का ख़ात्मा; ठुमरी ठिठुरने; भजन भंगुर एवं लोक संगीत लंगड़ा हो जायेगा, '' अतएव कृष्ण के इस घोष में कि ''जहाँ मेरे भक्त गायन करते हैं वहीं मेरा वास है, '' प्रभु और संगीत के इस अभेद्य संबंध के कारण ही इसे 'ब्रह्मनाद' की महिमा प्राप्त हुई। **जगद्गुरु आदि शंकराचार्य** रचित '**योगतारावली**' के मात्र 29 श्लोकों में से एक निम्न वर्णित श्लोक में भी कहा गया -

**सदाशिवोक्तानि सपादलक्षलयावधानानि च संति लोके।**
**नादानुसंधान समाधिकं मन्यामहे मान्यतमं लयानाम्।**

अर्थात्- सदाशिव द्वारा प्रोक्त संसार स्थित एक लाख पच्चीस हजार 'लययोगों' में एकमात्र नादानुसंधान युक्त समाधि को ही सर्वोच्च लय माना है।

शंकराचार्य ने नाद के निराकार स्वरुप में स्थित ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप को वर्णित करते हुए उसकी लय को संसार का जनक व निर्धारक माना है। ''**अथातो ब्रह्म जिज्ञासा**'' '**ब्रह्मसूत्र-भाष्य**' के अन्तर्गत **शंकराचार्य** द्वारा इस ब्रह्म की खोज ने संगीत जैसी विधा के साधकों को भी संगीत-साधना की गहराई और नादयोग-साधना की ओर इस दृष्टि से प्रेरित किया कि कलाकार जिस आनन्द की खोज में रहता है उसी संगीतानन्द को ही 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा गया है, जो प्रत्येक मानव को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष जीवन के इन पुरूषार्थों की ओर भी नैतिकता के साथ कर्मशील होने की प्रेरणा देते हैं।

इस अंक में शंकरावतार के रूप में ख़्यात आदिगुरु परम **ब्रह्मज्ञाता शंकराचार्य जी** को केन्द्र बिन्दु में रखते हुए विद्वान लेखकों ने नाद का अपने आलेखों में विश्लेषण किया है, जो पठनीय होगा। भारत के महान् दार्शनिक एवं धर्म-प्रवर्तक **आदि शंकराचार्य** ने अद्वैत वेदान्त को ठोस आधार दिया, यद्यपि उन्होंने तत्कालीन सभी धर्माचार्यों से शास्त्रार्थ कर उनको भी सम्मान देते हुए अपने उन व्यावहारिक सिद्धान्तों को स्थापित किया, जिससे पूरे विश्व को एक सूत्र में बांधा जा सके। उन्होंने तीन प्रकार के ग्रंथों का प्रणयन किया, जो भाष्य, प्रकरण ग्रंथ (दार्शनिक ग्रंथ) एवं स्तोत्र के रूप में खूब प्रचलित हुए, इन तीनों के अन्तर्गत आपके प्रणीत ग्रंथों एवं वाङमय में प्रमुख हैं - तत्वबोध, आनन्द-लहरी, सौन्दर्य-लहरी, आत्मबोध, विवेक चूड़ामणि, ब्रह्मसूत्रभाष्य, अभ्यास भाष्य, अपरोक्षानुभूति, उपदेश सहस्त्री, वेदान्त सूत्रों, भगवद्गीता (महाभारत) एवं ईशोपनिषद् पर टीकाएं, विष्णुसहस्त्रनाम, गंगाष्टकम्, यमुनाष्टकम्, अच्युताष्टकम्, दशश्लोक स्तुति, वेदसार शिवस्तोत्रम्, शिवपंचाक्षर स्तोत्र, शतश्लोकी, एकश्लोकी, गायत्री मंत्र आदि। दस से अधिक उपनिषदों को लिखित व मौखिक रूप से दुनिया में पहुँचाने का आपने अद्वितीय कार्य किया।

इस विशेषांक के प्रतिपाद्य पर यदि संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला जाये तो भारतीय संगीत की स्थापना में वेदों का विशिष्ट महत्व रहा है। वेदान्त-ज्ञान योग एवं ज्ञान-प्राप्ति का मुख्य स्रोत है एवं इसका मुख्य स्रोत उपनिषद हैं। वेदान्त की प्रमुख तीन शाखाएं अद्वैत, विशिष्ट एवं द्वैत प्रचलित हैं, जिसके प्रवर्तक आदि शंकराचार्य, रामानुज एवं मध्वाचार्य हैं। गौडपाद् 300 ई. तथा उनके अनुवर्ती **आदिशंकराचार्य** 700 ई. ने कहा कि ''**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापर:** अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है किन्तु जीव एवं जगत उससे अभिन्न हैं। परब्रह्म या परमब्रह्म ब्रह्म का वह रूप है जो निर्गुण, अनन्त, निराकार, निरंजन और गुणमय है परन्तु अनंत,सत्, चित् व आनन्दमय है। जगत का नियन्ता है। जाग्रत होने पर मनुष्य के हृदय में ऊर्जा अथवा प्राणशक्ति के रूप में संचार करता है, इसी ऊर्जा से अन्तर्मन का निर्माण होता है एवं ध्वनि उत्पन्न होती है, जो मस्तिष्क में चेतना का संचार करती है। इसी चेतना से पंचमहाभूत बनते हैं, इसे ही ज्योतिस्वरूप ब्रह्म कहते हैं,जिसके अवतरण से मनुष्य को अपने सशरीर होने को अहसास होता है, अतएव ये सचेत ऊर्जा ही 'नाद ब्रह्म' के रूप में परिलक्षित हुई, चाहे

वह आहत हो अथवा अनाहत। 'आहत' किसी वस्तु के संघात से एवं 'अनाहत' यानि बिना किसी आघात से उत्पन्न माना गया। यह संसार आहत नाद से ही बना है अनाहत तो सिद्धि के उपरान्त साधक को दिव्य ध्वनि के अहसास के रूप में सुनाई देता है, जिसे हमारे यहां 'मार्गी संगीत' भी कहा गया।

**आदि शंकराचार्य** की इन कृतियों ने भारतीय संगीत के कलाकारों को भी शब्द, स्वर एवं छन्द की गुम्फित सुन्दरतम अनुपम विरासत सौंपी, जिनसे उनकी कला और समृद्ध हुई एवं उनके अद्वैतवाद के द्वारा जो व्यावहारिक उपदेश जनता तक पहुंचे वे एक सुसंस्कृत समाज-निर्माण में बहुत सहायक हुए। उन्होंने मन, आत्मा, ईश्वर एवं जगत सभी को अपने अनुभवों एवं ज्ञान से बहुत खूबसूरती से समक्ष रखा। उन्होंने कहा कि ''सबसे उत्तम तीर्थ मन और आत्मा है, जो स्वयं ज्ञान स्वरूप है, उसे पवित्र रखो, फिर उसे ज्ञानार्थ व तीर्थ के लिए कहीं जाने की ज़रूरत नहीं। सत्य हर युग में एक होता है। आप जब तक निद्रा में होते हैं तब तक ये संसार स्वप्न एवं मोह भरा है, अन्यथा ब्रह्म सत्य है एवं वह जीव से भिन्न नहीं अर्थात् '**अहम् ब्रह्मास्मि**'। उन्होंने किसी भी देवता को कम नहीं आंका, किन्तु शिवावतार के रूप में स्वयं जगत को शिव की महिमा व शक्ति बताई। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश इन त्रिदेव की महिमा के साथ संसार के जीव-जन्तु प्राणी, पेड़, पौधों रूप प्रकृति की सुन्दरता का महत्व भी सामने रखा। उनके सिद्धान्त एवं तथ्य, जिसमें सांसारिकता एवं दिव्यता दोनों का बेजोड़ मिलन है।

संगीत के जन्म की भारतीय एवं विदेशी विद्वानों ने अनेक व्याख्याएं कीं, जिसका महत्वपूर्ण पक्ष मनोविज्ञान, नैसर्गिकता एवं विज्ञान से भी जुड़ा हुआ है। इनके अनुसार मानव ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्रकृति एवं जीव-जन्तु भी नैसर्गिक रूप से संगीत-प्रिय होते हैं। सीशोर ने कहा कि हर व्यक्ति में गुनगुनाहट की स्वाभाविक आदत होती है एवं 'संगीतात्मक मन' सभी में विद्यमान हैं। अर्नेष्ट हंट ने अपनी पुस्तक *'Spirit of Music'* में लिखा है ''संगीत केवल सामान्य ध्वनि मात्र नहीं अपितु सूक्ष्म अन्तवृत्तियों के उद्घाटन का सबल साधन है।''

संगीत के जन्म के विविध मतमतान्तर होते हुए भी बहुमत उसके आध्यात्मिक पक्ष की ओर ही दृष्टिगत होता है। उसे विश्व के अधिकांश संगीतकारों ने चरित्र-निर्माण एवं ईश्वर द्वारा प्रेरित और प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन माना है इसीलिए कालान्तर में उसे योग एवं उपचार से भी सम्बद्ध किया गया। बिथोवन ने कहा 'Music is the Mediator between spiritual and the sensual life'.

प्राचीन समय में 'साम गीति' एवं गांधर्व इत्यादि नाम 'संगीत' शब्द के स्थान पर प्रयुक्त होते थे, अतएव संगीत नाम बहुत पुराना नहीं। शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में इस मत की पुष्टि की है - ब्रह्म ने सामवेद से गीत का संग्रह किया। शंकर गीत से प्रसन्न होते हैं। गोपीपति अनंत (कृष्ण) बंशीध्वनि के वशीभूत हैं। ब्रह्मा सामगीति में रत हैं। सरस्वती वीणा में आसक्त हैं। अन्य देव, यक्ष, गंधर्व, दानव एवं मानवों के विषय में क्या कहा जाये। (स्वराध्याय, भाग 1, पृ.15)

संगीत के लिए यूनानी लेटिन, फ्रांसीसी, पुर्तगीज़, जर्मन, अंग्रेजी, ईरानी, अरबी व फारसी आदि भाषाओं में 'संगीत' के लिए यूनानी के 'म्यूज़' शब्द से नि:सृत अनेक शब्दों की रचना हुई, जिसे मैंने अपने इस अंक के आलेख में भी दिया है, यूनानी भाषा के इस शब्द का अर्थ कोश के अनुसार 'दि इन्सपाइरिंग गोडेस ऑफ सोंग' यानि 'गान की प्रेरक देवी' के रूप में ही लिया है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर भी संगीत को पावनकारी शक्ति के रूप में देखते हैं। पं. रविशंकर ने भी "Through music one can reach god" कहा।

लूथर ने भी कहा था कि संगीत मनुष्य को दयालु, नीतिशील और बुद्धिमान बनाता है। संगीत खुदा की दी हुई चीज़ है, जो मनुष्यों के कष्टों को दूर कर शान्ति पहुंचाती है। (The New Dictionary of Thoughts, p.314)

चिन्तक बाख भी लिखते हैं ''संगीत का एक ही लक्ष्य होना चाहिये, ईश्वर की जै जैकार एवं उसकी प्राप्ति।''

नाद या संगीतिक या संगीतोपयोगी ध्वनि, जिसे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने ब्रह्मस्वरूप माना है, जो समस्त जगत का स्रष्टा है एवं अविनाशी है एवं नाद-साधना को ब्रह्म की उपासना के सदृश्य माना और उसे 'नादब्रह्म' अभिहित किया। 'नाद' शब्द की उत्पत्ति 'नद्' धातु में धञ् प्रत्यय लगाकर हुई, तात्पर्य है 'नन्दयति इति नाद: 'जो आनन्द प्रदान करे। इसकी उत्पत्ति प्राणवायु एवं अग्नि वायु के योग से बताई गई है। वैज्ञानिक रूप से नियत एवं नियमित आन्दोलन-संख्या के परिणाम स्वरूप ही मधुर व कर्णप्रिय नाद उत्पन्न होता है, जिसे संगीत शास्त्रियों ने विविध सिद्धान्तों व शास्त्रीयता में आबद्ध कर गायन, वादन एवं नृत्य की विविध शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम एवं लोक आदि विधाओं में प्रयुक्त किया। यह नाद ब्रह्मांड में व्याप्त है। नाद ही आकाश का गुण है जो समस्त जीवन-जन्तु व प्राणियों को प्रभावित करता है। 7 वीं शती में सर्वप्रथम 'बृहद्देशी' में मुनिमतंग ने इसकी सर्वव्यापकता की महिमा बतायी-

**न नादेन बिना गीतम्, न नादेन बिना स्वर: ,**
**न नादेन बिना नृत्तम्, तस्मान्नादात्मकं जगत्।**

यह शब्द तत्व ब्रह्म है ''अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्व यदरक्षरम्'' वाक्यपदीय। नाद् से वर्ण, वर्ण से शब्द, शब्द से वाक्य,

वाक्य से भाषा, भाषा से सृष्टि क्रियाशील बनती है। स्वर का आधार भी नाद है।

**नादेन व्यंजते वर्णः, वर्णात् पदाश्चः,**
**वचसा व्यवहारोऽयं, नादाधीनं अतो जगत् ( शारंगदेव )**

इसकी सुन्दर व्याख्या इस रूप में भी और प्राप्त होती है –

**आदि शंकराचार्य** के मत से ब्रह्म अद्वैत होने पर भी शास्त्रोक्त परब्रह्म एवं शब्दब्रह्म नामों से अभिहित होता है। शब्दब्रह्म की सुष्ठु साधनोपरान्त ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है –

**शब्द ब्रह्मणी निष्पातः परं ब्रह्मणी गच्छति**

प्रणव ओंकार की साधना ही प्रकारान्तर से शब्दब्रह्म–साधना होती है। शास्त्रों में मन्त्रों की परम प्रकृति प्रणव या ओंकार ही है क्योंकि प्रणव में अकार, उकार, मकार, बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, शक्ति , व्यापिनी सभता और उन्मता अंश के समन्वय से नाद–साधना द्वारा ब्रह्म–प्राप्ति का मार्ग सुगम होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संगीत का आधार आहत नाद से उत्पन्न स्वर है, जो कि किसी ना किसी भौतिक द्रव्य ( मानव कंठ अथवा वाद्य ) में उत्पन्न होकर इसी भौतिक माध्यम से कानों में पहुँच कर मस्तिक द्वारा अनुभव किया जाता है। स्वर के नियत आघात एवं अनुरणन ( आन्दोलन ) के द्वारा वह तारता, तीव्रता तथा नाद के विशिष्ट गुण के साथ गायन–वादन में प्रयुक्त होता है। ब्रह्माण्ड में व्याप्त तीन तत्व शब्द, काल व वाक इसके विषय–निर्धारक होते हैं, जो विस्तार का कारण है, इसे संस्कृत में 'नाद' कहते हैं। ये तीनों हमारे द्वारा गाये जा रहे आधुनिक संगीत की सभी विधाओं के प्रमुख तत्वों स्वर, ताल एवं पद विषय–संघटक के रूप में इस के परिपाक एवं सौन्दर्याभिव्यंजना के परिणामस्वरूप नाद–साधना को सम्पूर्णाकार देकर और ब्रह्मप्राप्ति का उपादान बनकर साधक को चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्राप्ति तक पहुँचाते हैं। पं. दामोदर ने कहा है **''वेदोऽखिलम् धर्ममूलम्। धर्मार्थकाममोक्षणमिदमेवैक साधनम्।''** ( संगीत दर्पण, प्रथम अध्याय, 29/18 )

अतएव उपरोक्त विस्तृत नाद–प्रकरण एवं विवेचन और उसका आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, यौगिक, वैज्ञानिक एवं तात्विक आदि धरातलों पर व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक दोनों रूपों के समन्वय से विद्वान लेखकों ने इस अंक के प्रतिपाद्य विषय को अपने आलेखों के माध्यम से सार्थकता प्रदान करने के साथ समृद्ध एवं गरिमापूर्ण बनाया है। इन आलेखों में विषयवस्तु के रूप में नादोत्पत्ति; नादब्रह्म की अवधारणा एवं विविध दर्शनों एवं मीमांसाओं में उसकी व्याख्या एवं विश्लेषण; नाद ब्रह्ममयी विविध सर्जनाओं, सांगीतिक विधाओं में उसकी अवतारणा, उत्कृष्ट नादसाधकों का योगदान, एवं कतिपय साधकों से विमुख हुई भारत माता और उनके आत्मीय जनों के प्रति संवेदनाएं, जिसके अन्तर्गत कुछ समय पहले ही ब्रह्मलीन हुये संतूर के संत कहे जाने वाले पद्मश्री पं. भजन सोपोरी, कलाओं के उन्नयन में समर्पित संस्कार भारती के संस्थापक बाबा योगेन्द्र जी एवं पखावज वादक पं. रामजीलाल शर्मा के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप आलेख प्रस्तुत किये गये है; साथ ही हाथरस से प्रकाशित 'संगीत' मासिक पत्रिका के प्रधान सम्पादक डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग के एक महत्वपूर्ण आलेख को भी उनके मरणोपरान्त इस अंक में साभार प्रकाशित किया जा रहा है, जो कि उनको श्रद्धासहित स्मरण करने के साथ पाठकों के ज्ञानवर्द्धन के लिये एक महत्वपूर्ण दस्तावेज होगा, भविष्य में कलासमय में इसके उपयोग हेतु उनकी हार्दिक इच्छा भी थी। इसके अतिरिक्त आज़ादी के अमृत वर्ष से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण सामग्री, स्थाई स्तम्भ के रूप में पुस्तक–समीक्षाएं एवं देशभर के सांस्कृतिक आयोजनों की रपट आदि से अलंकृत इस अंक में पाठकों को निश्चय ही ज्ञानवर्द्धक एवं आनन्दवर्द्धक सामग्री पढ़ने को मिलेगी। मैं सभी कर्मयोगी गुणवन्त लेखकों, जिन्होंने इस अंक को अपने सश्रम आलेखों के अवदान द्वारा अपने गहन अनुभवों, अध्ययन, साधना एवं मनीषा से अलंकृत कर हमें शब्द एवं नादब्रह्म का अनुभव कराया है, उनके प्रति हार्दिक आभार एवं कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। इन आलेखों में प्रस्तुत विचारों से यह आवश्यक नहीं कि पाठकों की पूर्ण सहमति हो, यह उनका अपना अध्ययन, मनन, चिन्तन एवं अभिव्यक्ति है। बहरहाल, हमें उदारता से उनका आत्मिक स्वागत एवं अभिवादन करना चाहिये। अन्ततोगत्वा मैं 'कला समय' के संपादक परमादरणीय श्रीमान् भँवरलाल श्रीवास जी का भी हृदय से पुनर्पुनः आभार व्यक्त करती हूं कि उन्होंने मुझे इस ज़िम्मेदारी के लिए पात्र माना, जिसके परिणाम स्वरूप मुझे स्वाध्याय सहित अन्य विद्वानों के अध्ययन, मनन, चिन्तन एवं लेखन से मेरे ज्ञानवर्धन का बहुमूल्य अवसर प्राप्त हुआ, जिससे मैं अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व को और भी परिष्कृत एवं विकसित कर पाऊंगी। अंत में, इस कार्य में पूर्ण संलग्नता एवं समर्पण के बावजूद भी यदि कोई त्रुटि रह जाती है तो उसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मंगल स्वरों के साथ 'ॐ नाद ब्रह्म'

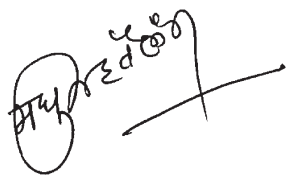

**– प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग**

■

संपादकीय

# नाद की स्थिर अवस्था ब्रह्म है

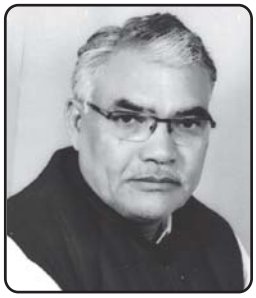

**''नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः।**
**नानुसन्धेः परा पूजा न हि तृप्तेः परं सुखम्।।''**

–योगशिखोपनिषद्

अर्थात् – नाद से बड़ा कोई मन्त्र नहीं है, अपनी आत्मा से बडा कोई देव नहीं है, नादानुसन्धान से बड़ी कोई पूजा नहीं हैं और तृप्ति से बड़ा कोई सुख नहीं हैं ।

**''मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणानन्तशक्तिना।**
**भूतेषु घोषरूपेण बिसेषूर्णेव लक्ष्यते ।।''**

–श्रीमद्भागवत ( 11/21/37 )

अर्थात्– मैं अनन्त शक्ति–सम्पन्न एवं स्वयं अनन्त ब्रह्म हूँ । मैंने ही वेदवाणी का विस्तार किया है । जैसे कमलनाल में पतला–सा सूत होता है, वैसे ही वह वेदवाणी प्राणियों के अन्तःकरण में अनाहत नाद के रूप में उद्घाटित होती है ।

सृष्टि के मूल में व्याप्त स्थिर नाद को जाग्रत करने का माध्यम ''ॐ'' शब्द अति उत्तम है । उसका सन्तुलित उच्चारण नादब्रह्म में कम्पन उत्पन्न कर देता है । शंख की ध्वनि भी यही कार्य करती है । नाद की इस अवस्था को झकझोर देने से अन्य भूतों के गुण भी उससे उत्पन्न हो सकते हैं, अर्थात् जिस प्रकार आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है; उसी प्रकार नाद से रूप,रस,स्पर्श और गन्ध उत्पन्न होते हैं । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि एक ही इच्छा या शान्ति से अनेक का जन्म हुआ । शास्त्र की भाषा में इसी को कहा गया है– ''**एकोऽहं बहुस्याम**'' अर्थात् मैं एक से अनेक हो जाऊं । यह अनेक होना नाद की तंरगें हैं जो मूल नाद की क्रियाशक्ति के घर्षण या प्रकम्पन से उत्पन्न होती हैं । जब यह शक्ति आकार ग्रहण करती है तो साकार या सगुण कहलाती है और जब अपनी पूर्व स्थिति में लौटकर शांत होती है, तो निराकार कहलाती है । साकार और निराकार का यह खेल ही सृष्टि , स्थिति और प्रलय का जन्मदाता है । शास्त्रो में इन्हीं को आदिदेव ( ब्रह्मा,विष्णु और महेश ) माना गया है ।

**''एकोहिदेवो भवति त्रिधावा,**
**अनन्त रूपाण्यदधात् स एव।''**

अर्थात –एक ही देव, एक से तीन और फिर तीन से अनन्त हो गये । यही बात नाद को आधार बनाकर समझी जा सकती है इसलिए संसार की समस्त वस्तुएं और क्रियाकलाप नाद के अधीन हैं । आहत नाद और अनाहत नाद में अद्भुत रोग निरोधक शक्ति है दोनो ही मन को एकाग्र करते हैं जिससे रोगाणुओं का नाश होता है ।

आचार्य शार्ङ्गदेव के अनुसार संगीत से समस्त देवताओं की उपासना हो जाती है अतः वह लोकरंजक के साथ भव भंजक भी है । अर्थात् वह भोग और मोक्ष दोनों का प्रदाता है । स्वामी संवित् सोमगिरिजी के अनुसार ''**ब्रह्म–सत्यं जगत् –मिथ्या जीवो ब्रहौव नापरः**'' करोड़ों शास्त्रों में कहा गया है– ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव ( स्वरूपतः ब्रह्म ही है, उससे भिन्न नहीं । ब्रह्म का स्वरूप लक्षण हैं –ब्रह्म सत्–चित–आनन्द स्वरूप है ।

ब्रह्म अपनी अनिर्वयनीय माया–शक्ति का प्रयोग करके जगत को प्रकट करता है। ब्रह्म अधिष्ठान है। माया उसमें अध्यस्त है। माया त्रिगुणात्मिका है। इसका परिणाम ही जगत है। जगत माया का कार्य है। अपने कार्य सहित माया ब्रह्म में अध्यस्त है। इस प्रकार ब्रह्म ही जगत का उपादान कारण है और ब्रह्म ही जगत का निमित्त कारण है। अर्थात ब्रह्म जगत का अभिन्न उपादान कारण है। ब्रह्म – विद्या आचार्यो की परम्परा हैं **''सत्यं–ज्ञानं–अनन्तं ब्रह्म'' सर्व खल्विदं ब्रह्म''** ब्रह्म ही जीव है और सारा जगत भी केवल ब्रह्म ही है।

गीता में भगवान ने कहा है –ब्रह्म निर्गुण, निराकार सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के तत्व को भली भाँति अनुभव करके उसे साक्षात् का लेना ही उसको जानना है। ''परम अक्षर '' से यहाँ उसी परब्रह्म परमात्मा का लक्ष्य है।

जिसने ब्रह्म–साक्षात्कार कर लिया है उसके लिये सारा जगत् नन्दन वन है ,सारे वृक्ष कल्प वृक्ष है, सारा जल गंगा जल है, उसकी सारी क्रियाएं पुण्य कर्म है, उसके द्वारा उच्चारित सभी शब्द महाकाव्य हैं, उसके लिये सारी पृथ्वी काशी है, उसका सारा जीवन ही ब्रह्म–रूप है। आचार्य शंकर के अद्वैत दर्शन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवधारणा ब्रह्म है। ब्रह्म शंकर की तत्व मीमांसा में एक मात्र सत्ता है जिसे परमार्थिक दृष्टि से सत् माना गया है। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म एक ही है जो सृष्टा है वह ब्रह्म है। ईश्वर की रहस्यमयता से प्रभावित इस तरह के अनेक सूफी संत हुए जैसे–कबीरदास, मीराबाई, रैदास, नानक, पुरंदरदास, कनकदास, तुकाराम, अमिर खुसरों... आदि। नियमों से बंधे समाज में जैसे यें किसी दूसरी दुनिया के निवासी हों। यह जो एक अलग तरह की आवाज है,जो स्पर्श से परे है, अरूप एवं निराकार है जो कभी नष्ट नही हो सकती यह ऐसी अनुगुँज है जो ब्रह्माण्ड में आज भी कायम है। उसे कोई दिव्य दृष्टि ही देख–समझ सकती है। नाद के स्पन्दन की भिन्न–भिन्न अवस्थाएं ही वर्णो और स्वर के रूप में जीव–ब्रह्म की अभिव्यक्ति के निमित कारण बनी है। जो मनुष्य भाव–समाधि प्राप्त करेगा, उसके समक्ष नाद का स्वरूप नि:संदेह प्रकट होगा। और उसे परब्रह्म की प्राप्ति होगी। याज्ञवल्क्य –स्मृति के अनुसार–

**वीणावादन तत्वज्ञः श्रुति जाति विशारदः।**
**तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्ष मार्ग निगच्छति।।**

अर्थात् –जो वीणा –वादन का तत्व और श्रुतियों की जाति तथा ताल जानते है वे बिना प्रयास के ही मोक्ष प्राप्त करते है।

इस ''नाद ब्रह्म'' विशेषांक की अतिथि संपादक संगीत विदुषी वरिष्ठ ध्रुवपद गायिका प्रो.डॉ. मधु भट्ट तैलंग जी के हम अत्यन्त आभारी है कि उन्होंने अपने महत्वपूर्ण व्यस्त समय के बीच कला समय के इस प्रतिष्ठापूर्ण अंक के लिए विषय केंद्रित आलेख विद्वानों से लिखवाये जिससे कला समय का यह अंक संग्रहगीय बन गया है। हम आपके प्रति कृतज्ञ है। हम उन विद्वानो... का भी हदय से आभार व्यक्त करते है जिनके रचनात्मक सहायोग के कारण यह विशेषांक आकार ले पाया। हम इस अंक में और भी महत्वपूर्ण आलेख पत्रिका की पृष्ठ सीमा के कारण सम्मिलित नहीं कर पाये उसके लिए क्षमा चाहते हैं। इस बार गुरुपूर्णिमा पर्व के अवसर पर ध्रुवपद के आचार्य गुरु ध्रुवपदाचार्य पं.लक्ष्मण भट्ट तैलंग जी पर उनकी सुयोग्य पुत्री शिष्या डॉ.मधु भट्ट तैलंग जी का महत्वपूर्ण आलेख और डॉ. श्याम सुन्दर शर्मा जी द्वारा आचार्य तैलंग जी से लिया गया साक्षात्कार इस अंक की विशेष उपलब्धि है। इससे हम मानते है कि संगीत, गायन के विद्यार्थी, शोधार्थी तथा पाठकगण अवश्य लाभान्वित होंगे। हमेशा की तरह आपकी प्रतिक्रियाओं की हमें प्रतिक्षा रहेगी। । शुभम् भवतु।।

**– भँवरलाल श्रीवास**

■

आलेख

# कला: ब्रह्म के आनन्द की अनुकृति

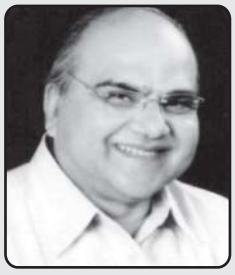

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

सहज को दुरूह बनाना बहुत सहज है लेकिन दुरूह को सहज बनाना बहुत कठिन। भारतीय दर्शन की सहजता के साथ यही दुरूहता जुड़ी है। भारतीय दर्शन जैसा सहज दर्शन कोई नहीं किन्तु उसे इतना क्लिष्ट और दुरूह बना दिया गया कि सामान्य जन के लिये उसकी सम्प्रेषणीयता ही समाप्त हो गई। आज दर्शन और कला को लेकर इतने ग्रन्थ और आख्यान हैं कि उनका परिशीलन कर उन्हें समझ पाना अत्यन्त दुष्कर है।

यदि कला और दर्शन को उनकी दुरुहता से परे जाकर उनके सहज अर्थ को जानना है तो फिर उनकी उस व्यंजना में जाना होगा जो हरेक के लिये सहज रूप में गम्य है।

यदि कला शब्द पर विचार करें तो इसकी परिभाषाएं अनन्त हैं। लेकिन सटीक रूप से कला के सम्बन्ध में विचार करते हुए प्रख्यात संस्कृतिविद् डॉ. विद्यानिवास मिश्र कहते हैं कि संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग लगभग 20 अर्थों में हुआ है। कला शब्द ''कल'' से बना है। इसके कई अर्थ हैं, जैसे भेदना, खण्ड खण्ड करना, प्रीतिकर करना। वे कहते हैं कला का अर्थ है खण्ड लेकिन ऐसा खण्ड जिसके बिना सम्पूर्ण अधूरा ही रहता है। एक तरह से कला संपूर्णता को मापने का पैमाना है। भारतीय कला में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा है लेकिन वह सौन्दर्य दैहिक नहीं है। भारतीय कला में प्राणों के संधान पर बल है। कला आंखों का वह उत्सव है जहां जीवन के यथार्थ के साथ-साथ यह भी मनाया जाता दिखाई देता है कि जीवन कैसा होना चाहिये। भारतीय कला का सबसे बड़ा गुण उसकी स्वाभाविकता है। यह कला दूब की तरह उगती है उसे रोपा नहीं जा सकता। रोपना कलात्मक नहीं है, मनोभूमि इतनी उर्वर हो कि सहज कुछ उग आए वही कला है। भारतीय दृष्टि में कला यदि संवाद है तो रूप उसकी भाषा है। भारतीय कला दृष्टि समग्रता का उदघोष करती है। जहां निजता की परिधि समाप्त होती है वहां से कला का क्षेत्रफल आरम्भ होता है। उसकी दृष्टि एकांगी नहीं है। इस समग्रता में राग बोध और सौन्दर्य दोनों समाविष्ट हैं। इस कला का स्वरूप बन्धन्जयी है। उसकी जीवन से अलग कोई स्थिति नहीं है। उसके सरोकार केवल कला के सरोकार नहीं हैं बल्कि लोक के राग से रस से और सौन्दर्य से हैं। भारतीय कला का प्रमुख लक्षण अन्तरावलम्बन है, परस्पर सम्बद्धता है। यह अलग अलग उपादानों की सुन्दरता पर बल नहीं देती। इसमें किसी केन्द्र पर बल नहीं है बल्कि उस केन्द्र की परिधि में आने वाले समस्त संसार पर,उसके लोकव्यापारों पर बल है।

इस कला के धरातल रस और आनन्द हैं। तैत्तरीय उपनिषद में जिस ''रसो वैस:'' का उद्घोष हुआ वही भारतीय कला का मर्म है जिसकी निरंतरता प्रत्येक युग में विद्यमान रही। माघ और भारवि से लेकर कालिदास तक ने रस और आनन्द को प्रतिष्ठा दी और उपनिषदकार से लेकर रूपगोस्वामी तक ने इसे खरा पाया।

भारतीय कला का सौन्दर्य पक्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसके मूल में रस है जो सकल होने का सार है। यह सौन्दर्य व्यष्टि का वह छन्द है जो समष्टि के छन्द से मिलकर चलता है और सुन्दर को जन्म देता है। यह छन्द शब्द में, रेखा में, गंध और वर्ण में सामन्जस्य के भाव को खोज लेता है। यही कारण है कि भारतीय कला के सौन्दर्य में काव्य की प्रतिष्ठा हो जाती है और कालिदास इसी को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं,

**वागार्थविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्त्ये**
**जगत पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ**

भारतीय कला पश्चिम के निजवादी दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करती। पश्चिम की वस्तुपरक अवधारणा के विरुद्ध भारतीय कला अवधारणा दर्शन परक है। वह न तो कामप्रेरित है जैसा फ्रायड मानते हैं न भौतिक अनुभूतिपरक जैसा विश्वास मार्क्स का है। यह प्रकृति का अनुवाद भी नहीं है जैसा गिफ्सन मानते हैं। भारतीय कला में न वाद हैं और न वह व्यक्तियों के नाम पर है।

भारतीय कला की यह विशेषता है कि चाहे आगम धारा हो या निगम धारा, इस कला अवधारणा के स्वरूप में परिवर्तन नहीं होता। भारतीय कला में निजता के विसर्जन का भाव अत्यन्त प्रबल है।

जैन दर्शन का स्वर है–

**जे एगं जाणइ से सव्वं् जाणइ**

**जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ**

अर्थात– जो एक को जानता है वह सबको जानता है और जो सबको जानता है वह एक को भी जानता है।

दूसरी सदी के प्रख्यात जैन चिन्तक आचार्य कुन्दकुन्द जब अकर्ता भाव की व्याख्या करते हैं तो वह व्याख्या भारतीय कला की अवधारणा का ही आख्यान करती प्रतीत होती है। अपने ग्रन्थ समयसार में उन्होंने विस्तार से समग्रता के तत्व को, पुदगल से परे होने की स्थिति को समझाया है, वह भारतीय कला के इसी अरूप, रूप की व्याख्या है। यही गीता का सार है जो प्रस्थानत्रयी का मानक ग्रन्थ है।

महर्षि अरविंद ने भारतीय कला के सम्बन्ध में यह सार रूप में कहा कि ''भारतीय सोच के अनुसार स्वरूप का अस्तित्व आत्मा के सृजन के सिवाय कहीं और नहीं है और यह आत्मा से ही अपने सम्पूर्ण अर्थ और मूल्य को प्राप्त करता है''।

हमारा शास्त्रकार भी यही कहता है–,

**विश्रान्तिर्यस्यः सम्भोगे सा कला न कलमताः।**

**लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला।।**

अर्थात– आनन्दवादी दृष्टि से वह कला, कला नहीं है, जिसका प्रभाव केवल मानसिक विश्रान्ति तक सीमित रह जाये। वस्तुतः वही कला, कला या पराकला है जो चित्त को परमानंद में विलीन कर दे।

यह संक्षिप्त विवेचन भारतीय कला दृष्टि और भारतीय कला की अवधारणा को स्पष्ट करता है।

जहां तक दर्शन का प्रश्न है, उसका सीधा अर्थ देखना है यों उसकी भी अनेक क्लिष्ट व्याख्याएं हैं। यह देखना केवल भौतिक आंखों से देखना नहीं है बल्कि अन्तर नेत्रों से निहारना है। जब अन्तर की आंखों से देखा जायेगा तभी यथार्थ तत्व की अनुभुति होगी। यही हमारी परम्परा कहती है, ''**दृश्यते यथार्थ तत्वमनेन**''।

हम आँख से तो संसार देखते हैं, अपने आपको देखते हैं लेकिन भौतिक आंखों से अपने आपको देखना अपनी देह को देखना है। अपने आपका यथार्थ तो आपकी आन्तरिक आंखें देखती हैं। इन्हीं आंखों से ईश्वर को देखा जाता है और यही आन्तरिक दृष्टि जब अपने आपको समग्रता में निहारती है तो फिर ईश्वर और ब्रह्म में अन्तर नहीं रह जाता। इसीलिये शंकर उदघोष करते हैं '**अहम ब्रह्मास्मि**'।

ब्रह्म को सबसे सुन्दर **शंकराचार्य** ने समझाया। इसलिये कि उन्होंने दोनों तरह की आंखों की दृष्टि को, देखने को समझाया। उन्होंने जगत को भी समझाया और ब्रह्म को भी समझाया। उन्होंने कहा कि ब्रह्म त्रिकाल बाधित, नित्य, चैतन्य स्वरूप और आनन्द स्वरूप है तथा इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय का आविर्भाव ब्रह्म से ही होता है। उन्होंने प्रतिपादित किया कि जीव अज्ञान के कारण ही ब्रह्म को नहीं जान पाता जबकि ब्रह्म तो उसके अन्तर में है।

**शंकराचार्य** ने अपना यह महत्वपूर्ण अनुभव साझा किया कि ज्ञान की अद्वैत भूमि पर जो परमात्मा निर्गुण, निराकार ब्रह्म है वही द्वैत की भूमि पर साकार होता है। उन्होंने एक ओर अमूर्त ब्रह्म की अवधारणा स्थापित की तो दूसरी ओर शिव, पार्वती, गणेश तथा विष्णु आदि पर श्लोक रच कर उनकी वन्दना की। उन्होंने ''सौन्दर्य लहरी'' और ''विवेक चूड़ामणि'' जैसे ग्रन्थ लिखे जिनमें सगुणोपासना का आख्यान था।

उक्त परिप्रेक्ष्य में मेरा यह मानना है कि भारतीय कला और सौन्दर्य की दृष्टि को सत्यम शिवम सौन्दर्य के मर्म को और ब्रह्मानन्द की अनुकृति के रूप में भारतीय कला को सौन्दर्य लहरी के माध्यम से जिसमें त्रिपुर सुन्दरी के अलौकिक सौन्दर्य की अभ्यर्थना की गई है उपयुक्त रूप में जाना जा सकता है। वास्तव में सौन्दर्य लहरी में मूल अवधारणा चिदानंद की है जिसकी नियति उस शाश्वत सौन्दर्य के अस्तित्व की है, जिसे मिटना नहीं है बल्कि पल पल परिवर्तित होकर नूतन स्वरूप में बदल जाना है और यही वह ब्रम्हानंद है जिसका रूपान्तरण कला में हो जाता है। कला उसकी अनुकृति बन जाती है। इस तथ्य की ओर डॉक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल इंगित करते हुए कहते हैं कि ''इस विश्व में आध्यात्म सौन्दर्य, नीति सौन्दर्य और भौतिक सौन्दर्य, इन तीनों की सत्ता है। जहां इन तीनों में से किसी एक सौन्दर्य को हम देखते हैं तो हमारा मन आनन्द से द्रवित होने लगता है। इस साढ़े तीन हाथ के शरीर संज्ञक भौतिक व्यवधान के पीछे जो दिव्य आत्म ज्योति है, वह जिस समय अपने भास्कर तेज से प्रकाशित होती है, मनुष्य का मन आनन्द में निमग्न हो जाता है।''

सौन्दर्य लहरी में मां पराम्बा के नख शिख का जो सौन्दर्य वर्णन **शंकराचार्य** करते हैं वह भारतीय कला अवधारणा का सच्चा आख्यान है।

हमारी परम्परा में जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है उस ब्रह्म की प्रतिष्ठा की गई है जो पूर्ण है। वेद यही कहते हैं,

''**पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात पूर्णमुदच्यते**''

और यह ब्रह्म सोलह कलाओं से युक्त है जिनके अलग

अलग नाम अलग अलग ग्रन्थों में दिये गये हैं। पूर्ण ब्रह्म उसे माना गया है जिसमें सभी सोलह कलाएँ हैं। इस पूर्ण ब्रह्म का सीधा सम्बन्ध रस से है और रस अलौकिक आनन्द का पर्याय है। यह रस अखण्ड है, यह वेदान्तर स्पर्श शून्य है अर्थात रसास्वाद के समय कोई अन्य भाव बीच में नहीं आ सकता। रस का मूल भाव ही स्थायी भाव है। यही रस ब्रह्मानंद सहोदर है। यह सहृदय को प्राप्त होता है।

इस संक्षिप्त विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय कला का मौलिक स्वरूप ब्रह्म स्वरूप है और ब्रह्म में सोलह कलाएँ हैं।

राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं लेकिन पूर्ण कला पुरुष नहीं हैं उनमें सोलह कलाएँ नहीं हैं उनमें जैसा विद्यानिवासजी कहते हैं पन्द्रह कलाएँ हैं। सोलह कलाओं वाले तो श्रीकृष्ण हैं। विद्यानिवासजी कहते हैं, ''राधा न शरीर हैं, न इन्द्रिय, न पत्नी, न पुत्री, वे केवल प्यार हैं। राम में पन्द्रह कलाएँ हैं, सोलहवीं कला तो वह राधा हैं जिसको अमृता कहें, जिसे राधने का व्यापार कहें, जिसे चाहत कहें, जिसे अपने को मिटाकर विराट का वरण कहें या सब अधिकारों को छोड़कर, सुविधाओं, ऐश्वर्यों को छोड़कर केवल आराधिका के अधिकार का वरण कहें, कुछ भी कहें श्रीकृष्ण के जीवन की जीवन मूरि हैं राधा।''

वे जयदेव के गीतगोविन्द की अष्टपदियों की व्याख्या करते हुए कहते हैं, ''इस ग्रन्थ का लक्ष्य ही यही था कि नयी राधा रची जाए और स्वयं श्रीकृष्ण के हाथों रची जाए। रची जाकर वह काव्य की, वैष्णव भक्ति की, कला की तथा संगीत की अधिष्ठात्री हो जाए।''

इन अर्थों में राधातत्व ही रस तत्व है तथा यह रस तत्व ही ब्रह्मानंद है और कला इसी ब्रह्मानंद की अनुकृति है या यों कहें पर्याय है। श्रीकृष्ण परमब्रह्म हैं और राधा रस। दोनों के नाम भिन्न हैं लेकिन दोनों का एकात्म ही दोनों का पर्याय है जो चिदानंद की पराकाष्ठा है, वही ब्रह्म है और वही कला जो बाँकेबिहारी के स्वरूप में वृन्दावन जगत के आंगन में विराज गई है।

– लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद् है।
85, इन्दिरा गांधी नगर, पुराने आर.टी.ओ. ऑफिस के पास,
केसरबाग रोड, इन्दौर-9 (म.प्र.), मो.: 9425092893

## स्वामी ब्रह्मविदानन्द सरस्वती

स्वामी ब्रह्मविदानन्द सरस्वती जी वैदिक ज्ञान के शिक्षण को समर्पित ट्रस्ट, आर्ष विद्या फाउंडेशन के संस्थापक हैं। आपने वर्ष 1976 में ब्रह्मचर्य दीक्षा व 2003 में आर्ष विद्या गुरुकुलम् के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से ऋषिकेश में संन्यास दीक्षा ग्रहण की। स्वामी चिन्मयानंद जी से प्रेरित होकर आपने वर्ष 1976 से 1978 तक सांदीपनी साधनालय, मुंबई में प्रस्थानत्रयी (गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र) तथा शांकरभाष्य का गहन अध्ययन किया। स्वामीजी ने सात वर्षों तक ऋषिकेश में स्वामी तारानंद गिरि जी और स्वामी हरिहर तीर्थ जी के साथ वेदांत ग्रंथों का अध्ययन किया।

गत 35 वर्षों से आप वेदांत के छात्रों, साधकों, युवाओं और भारत तथा विदेशों में कॉर्पोरेट जगत आदि विभिन्न वर्गों के बीच वेदान्त का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। वेदान्त ग्रंथों के अलावा समकालीन वैश्विक विषयों पर भी स्वामीजी की गहन समझ है। आप देश-विदेश के अनेक कॉर्पोरेट्स और शैक्षणिक संस्थानों को भी मार्गदर्शित करते हैं। स्वामीजी कराटे, शाओलिन और ताई ची चुआन जैसी मार्शल आर्ट के एक सक्रिय अभ्यासी व प्रशिक्षक भी हैं।

# शंकराचार्य:अद्वैत और श्रीविद्या

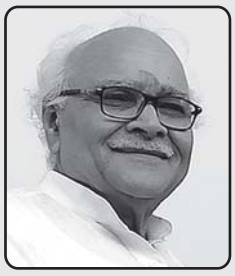

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

श्रीविद्या विश्वविद्या!! श्रीविद्या एक विश्वबोध !! श्रीविद्या एक दर्शन!! श्रीविद्या एक विश्वासप्रणाली!! श्रीविद्या भारत की उपासना के प्राचीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय! श्रीविद्या का आधार अद्वैत-दर्शन है! श्रीविद्या अद्वैत की उपासना है, श्रीविद्या अभेद की उपासना है ! इसमें तनिक भी संशय नहीं है कि श्रीविद्या-उपासना अद्वैतवाद का ही चरितार्थ रूप है! इस बात को हम यों भी समझ सकते हैं कि श्रीविद्या-उपासना अद्वैतवाद के रूप में व्यक्त हुई! जब अभेद दृष्टि है तो आगम और निगम में भी अभेद-दृष्टि है! वेदान्तसूत्र हैं, वेद और उपनिषद के वाक्य हैं तथा शंकराचार्य उनको आधार बना कर ईश्वर ,ब्रह्म , अनन्त-प्रकृति और जीवन की व्याख्या कर रहे हैं ,उस व्याख्या को अद्वैतवाद का नाम दे रहे हैं तो फिर आगम-परंपरा के प्रति द्वैत-भाव कहाँ से आ गया? क्यों आ गया? भेद या द्वैत-भाव तो अद्वैत के अर्थ को ही बदल देगा !

श्रीविद्या और अद्वैत के संबंध को जानने के लिए उस परम्परा को भी समझना होगा, जिस परम्परा में **आदिशंकराचार्य** की अद्वैत-दृष्टि का विकास हुआ! **आदिशंकराचार्य** के गुरु गोविंदपाद और गोविंदपाद के गुरु गौडपादाचार्य! गौडपादाचार्य **शंकराचार्य** के 'परमगुरु' हैं! मांडूक्य-कारिका,श्रीविद्यारत्नसूत्र और सुभगोदयस्तुति **आदिशंकराचार्य** के 'परमगुरु' गौडपादाचार्य की रचना हैं ! ये ग्रन्थ अद्वैत वेदान्त परंपरा की निरन्तरता के अन्तर्गत ही माने जाते हैं ! गौडपादाचार्य भी भारत के एक दार्शनिक थे। उन्होंने भी अपने देशकाल में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों की व्याख्या की थी। मांडूक्यकारिका अद्वैतवाद का एक प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है और आचार्य शंकर ने सर्वप्रथम मांडूक्यकारिका पर ही भाष्य लिखा था । श्री गौडपादाचार्य ने सप्तशती का एक भाष्य भी लिखा था -चिदानंद केलिविलास, सौंदर्यलहरी उसी परम्परा में है। **शंकराचार्य** का एक ग्रन्थ है - प्रपंचसार। यह आगम परम्परा का ग्रन्थ है । यहाँ आगम-परंपरा और निगम-परंपरा की भेद-दृष्टि नहीं है ! इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि सभी शंकर-पीठों में राजराजेश्वरी और श्रीयंत्र की उपासना की परम्परा आज भी विद्यमान है। श्री:ज्ञेया विश्वरूपिणी ! विश्वशक्ति , विश्वमानस की शक्ति ! समग्र विश्व श्रीरूप ही है ! श्रीविद्या की उपासना विश्वचेतना के साक्षात्कार की साधना है ! अपने में विश्व को और विश्व में अपने को व्याप्त देखने की साधना ! विश्वप्राण की शक्ति का साक्षात्कार !

**अद्वैतवाद**

निश्चित ही अद्वैतवाद का एक धार्मिक और दार्शनिक पक्ष है किन्तु अद्वैत की विचारधारा कोई सीमित विचार नहीं है उसका विस्तार उतना ही व्यापक है,जितना विस्तार मनुष्य के जीवन का है! विभिन्न लोकवार्ता-शास्त्रियों और मानवशास्त्रियों ने संसार के असंख्य सांस्कृतिक-समूहों के जीवन का अध्ययन किया है! उन्होंने असंख्य सांस्कृतिक-समूहों के देव मंडल को भी देखा है! उन्होंने यह भी देखा है कि विभिन्न सांस्कृतिक-समूह जब निकट आते हैं तो उनके देव मंडल भी निकट आते हैं और धीरे-धीरे उनकी अन्तर्भुक्ति हो जाती है! कबीले के युग से चल कर आज विश्वसमाज तक का विकास हुआ है! वह जमाना था,जब प्रत्येक कबीले का एक अलग देवमंडल था! उत्तरपूर्व के आदिवासियों के विभिन्न समूहों के देवमंडल आज भी भिन्न-भिन्न हैं। मनुष्य जीवन की इस युगयात्रा की दिशा बहुदेववाद से एकेश्वरवाद की ओर अग्रसर होती रही है! विभिन्न देशों में, विभिन्न युगों में,विभिन्न सन्तों और पैगंबरों ने विभिन्न विधियों से एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा की है! भारत में **आदिशंकराचार्य** से पहले भी विविधता में एकता का प्रबल स्वर सुनाई देता है -**एकं सद्विप्रा:बहुधा वदन्ति** ! यह द्वैत का निषेध ही तो है !

प्रत्येक कुल का एक देवता होता है! प्रत्येक ग्राम का एक देवता होता है! इस देवमंडल की पहचान ग्रामदेवता, स्थानदेवता, कुलदेवता और क्षेत्रपाल आदि के रूप में की जाती है, इनका एक सीमित उपासक-मंडल भी होता है! लेकिन जैसे-जैसे हम

वृहत्तरसमाज की ओर बढ़ते हैं , वैसे-वैसे ये सीमाएं टूटती चली जाती हैं और हम एक व्यापक ईश्वरभाव की ओर बढते चले जाते हैं! द्वैत से अद्वैत की ओर! सर्वं खल्विदं बह्म! जो सब में व्याप्त है और जिसमें सब व्याप्त हैं! अद्वैतवाद अर्थात् विश्व में एक ही तत्त्व की सत्ता है भले ही वह नाना रूपों में प्रतिभासित होता है! इस प्रकार अद्वैतवाद मानवीय एकता का आधारभूत दर्शन है। हालाँकि जहाँ आत्मा और परमात्मा अथवा जीव और ब्रह्म की एकता के सिद्धांत की प्रतिष्ठा है, वहाँ मानवीय-एकता की बात बहुत पीछे छूट जाती है।

**बौद्ध-मत और शंकराचार्य**

''बौद्ध-मत को पराजित करने के लिए अद्वैतवाद का जन्म हुआ'' यह बहुत संकीर्ण और विकृत सोच है! जो लोग यह सोचते हैं कि **शंकराचार्य** बुद्ध को खंडित करने में ही लगे रहे, आदि। उन्हें शायद मालूम नहीं कि आचार्य शंकर को उस समय के शैवों ने प्रच्छन्न-बौद्ध कहा था, आप सोच सकते हैं - क्यों? अद्वैतवाद कोरा शास्त्रार्थ नहीं है, अद्वैतवाद उसका प्रयोजन बहुत व्यापक है, कोई किताबी या बहस का विषय नहीं है! अद्वैतवाद मूर्ति बना कर रोली-चावल चढा कर भोग लगाने और आरती उतारने वाली बात भी नहीं है! वह समष्टि-जीवन की आवश्यकता है! **आदिशंकराचार्य** के जमाने में भी और आज भी! हमें समग्र पृष्ठभूमि के साथ शंकर को समझना होगा। समष्टिजीवन के प्रयोजन के रूप में भी अद्वैतवाद की आवश्यकता है! **आदिशंकराचार्य** काशी में गंगास्नान करके आगे बढे तब चार कुत्तों से घिरा एक चांडाल उनके मार्ग में आ कर खडा हो गया। आचार्य ने उसे दूर हटने को कहा। चांडाल हटा नहीं, मुसकाने लगा। आचार्य ने कहा > तेरी छाया भी पाप है! चांडाल ने कहा - यह तो सभी कह देते हैं, लेकिन मैं तो बहुत दूर से आपके दर्शन करने आया हूं, मैने तो अपने पिता से सुना था कि सब भेदभाव के समर्थक हैं किन्तु काशी में एक ही ब्राह्मण है, जो भेदभाव के विरुद्ध बडी ताकत के साथ खडा हो गया है। वह अद्वैत की बात कहता है। अब आप ही बतायें कि जब सब में ही बह्म है ,तो मैं अपवित्र क्यों हूं और आप पवित्र क्यों हैं? स्वयं शिव भी चांडाल और किरात के वेश में रहते हैं। चांडाल बोला > समस्त जगत में सच्चिदानन्द व्याप्त है, आश्चर्य है कि अद्वैतवादी स्पर्शास्पर्श का विचार कर रहे हैं? आचार्य गंभीर हो गये! वे बोले >> तुम ठीक कहते हो चांडाल! जो उस चैतन्य को ही अपना स्वरूप मानता है ,वह दृढमति चांडाल भी हो तो मेरा गुरु है। **आदिशंकराचार्य** ने सोचा और संकल्प किया कि चांडाल के रूप में स्वयं विश्वानाथ ने ही मुझे यह तत्वबोध दिया है। आचार्य ने जिन श्लोकों से चांडाल वेशधारी भगवान् विश्वानाथ की स्तुति की वे श्लोक ''**मनीषा पंचकम्**'' के नाम से प्रसिद्ध हैं -जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते,या ब्रहमादि पिपीलिकान्त तनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी, सैवाहं न च दृश्य वस्त्विति दृढ प्रज्ञापि यस्यास्तिचेच्चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ! जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में जो चेतना अपने को अभिव्यक्त कर रही है , जो चेतना ब्रह्मा -विष्णु-शिव आदि देवताओं से लेकर चींटी आदि में भी स्फुरित हो रही है। मैं स्वयं उसी चेतना में ओतप्रोत हूँ ,जिस दृढबुद्धि पुरुष की दृष्टि में सम्पूर्ण विश्व आत्मरूप से प्रकाशित हो रहा है ,वह चाहे ब्राह्मण हो अथवा चांडाल हो मेरे लिए वह वन्दनीय है यह मेरी दृढ निष्ठा है ।

पेंटिंग : विजय शर्मा

**ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितं,**
**सर्वं चैतदविद्याया त्रिगुणया शेषं मया कल्पितम्।**
**इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले,**
**चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम।**

मैं ब्रह्म ही हूँ चेतन मात्र से व्याप्त यह समस्त जगत भी ब्रह्मरूप ही है। समस्त दृश्यप्रपंच मेरे द्वारा ही त्रिगुणमय अविद्या से कल्पित है। मैं सुखी, सत्य, निर्मल, नित्य, परब्रह्म रूप में हूँ , जिसकी ऐसी दृढ बुद्धि है वह चांडाल हो अथवा द्विज हो, वह मेरा गुरु है!

**शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा**
**गुरोर्नित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमृशता निर्व्याजशान्तात्मना।**
**भूतं भाति च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके**
**प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपुरित्येषा मनीषा मम।**

जिसने गुरु के साथ निरन्तर विमर्श करते हुए यह निश्चित रूप से जान लिया है कि ब्रह्म सत्य है और संसार नाशवान् है ,

परिवर्तनशील जगत अनित्य है । जो यह जानते हुए आत्मतत्त्व में स्थित और प्रशान्त है , जिसने भूत और भविष्य के दुष्कृतों को जिसने परमात्म रूपी अग्नि में अपनी सभी भूत और भविष्य की वासनाओं का दहन कर लिया है और जिसने अपने प्रारब्ध का क्षय करके देह को समर्पित कर दिया है । वह चांडाल हो अथवा द्विज हो, वह मेरा गुरु है। ऐसी मेरी मनीषा है !

अद्वैतवाद मानवीय-एकता का आधारभूत दर्शन है! द्वैत का निषेध है,दूसरा कोई तत्त्व ही नहीं है ,एक तत्त्व की ही सत्ता है ,तब पराया कौन हो सकता है ? यदि **शंकराचार्य** के जीवन-परिवेश को देखें तो **शंकराचार्य** का युग विषमताओं से आकुल-व्याकुल था। एक ओर अवैदिक-शैव थे,दूसरी ओर तिब्बत और चीन की ओर से आने- वाले दलों का आतंक था। मन्दिरों की प्रतिमाओं को उनके भय से गंगा में छिपाया गया था। संप्रदायों का जंगल था -पाशुपत, कापालिक, कौल, कालमुख, शाक्त, तान्त्रिक, चार्वाक, पांचरात्रिक, बौद्ध, जैन, सौर, गाणपत्य, शाब्दिक आदि। नरबलि भी चल रही थी। **शंकराचार्य** भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक पैदल-पैदल भ्रमण करते रहे थे ,जब कापालिक ने उन पर शराब पी कर प्रहार के लिये हाथ बढाया था और पद्मपाद ने पीछे से उसे पकड लिया। वह दृश्य, जब एक आदमी बलि के लिये हाथ बांधे हुए खडा था ,शंकर ने देखा तो कापालिक से कहा कि इसे मारने से पहले मुझसे शास्त्रार्थ करो ! **शंकराचार्य** ने सांस्कृतिकएकता के लिये ,मानवीय-एकता के लिए अद्वैतवेदान्त का आधार स्थापित किया।

**आचार्य शंकर का नारी-विषयक दृष्टिकोण**

नारी के प्रति आचार्य शंकर के आचरण से बडी उनके नारी-विषयक दृष्टिकोण की व्याख्या और क्या हो सकती है ? दो नारियां हैं, उनके जीवन में, एक जननी, जिसके सम्मान के लिये उन्होंने कुलाचार और यतिधर्म की मर्यादा को तोड़ दिया। दूसरी उभय भारती शारदा, जिसके नाम पर शारदा-पीठ का नामकरण किया। जब मंडनमिश्र से शास्त्रार्थ का प्रसंग आया तब यह भी प्रश्न उठा था कि शास्त्रार्थ में जय-पराजय का निर्णायक कौन होगा ? आचार्य शंकर ने तुरन्त ही कह दिया -विद्वद्वर मंडनमिश्र की पत्नी उभय भारती शारदा !

मंडनमिश्र चकित रह गये। जब **आचार्यशंकर** ने जैमिनि के मत की व्याख्या करते हुए कहा कि जैमिनि ने तर्क और अनुमान का खंडन किया है , श्रुतिसिद्ध ईश्वर का नहीं । बाद में भारती ने कहा कि आपने पंडितों में श्रेष्ठ मेरे पति को पूरी तरह पराजित नहीं किया है क्योंकि उनकी अर्द्धांगिनी तो मैं हूं ,अब आप मुझसे शास्त्रार्थ करें। जब आचार्यशंकर ने भारती के सवाल का उत्तर भी दे दिया ,तो उसने आचार्य के साथ पति से भी कहा कि >>> आप दोनों भिक्षा ग्रहण करें। उभयभारती शारदा के द्वारा यह पति को संन्यास लेने की अनुमति थी >>>> भिक्षा ग्रहण करें। इस निर्णय के लिये उस नारी को अपना हृदय कितना कठोर करना पड़ा होगा ,इसकी कल्पना भी नहीं कर पा रहा। किन्तु आचार्य का नारी पर यह कैसा अटल विश्वास था। उन्होंने महात्रिपुरसुन्दरी की ही वन्दना की थी, इससे अधिक **आचार्यशंकर** के नारी-विषयक दृष्टिकोण की व्याख्या और क्या हो सकती है ?

- 1828, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, सेक्टर 13-17
पानीपत-132203 (हरियाणा), मो.: 9996007186

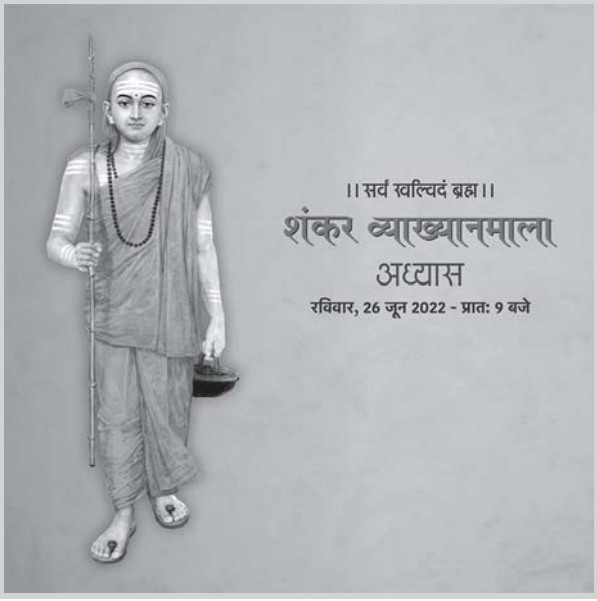

आलेख

# सत-चित-आनंद का विस्तार हैं हमारी सारी कलाएँ

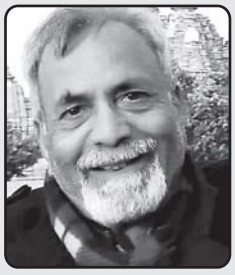

अशोक आत्रेय

भारतीय संस्कृति, साहित्य व कलाओं में सगुण और निर्गुण दोनों ही धाराओं का व्यापक समन्वय, विस्तार एवं महत्व रहा है। यहां तक कि **जगद्गुरु शंकराचार्य** ने चाहे अपने दार्शनिक चिंतन में ब्रह्म को निर्गुण निराकार कहते हुए अद्वैतवाद को मान्यता दी है लेकिन व्यावहारिक रूप से सभी धर्मों के समभाव, सत्संग व साकार भक्ति को भी स्वीकार किया है। **आचार्य शंकर** के अद्वैतवाद को मायावाद या अध्यासवाद भी कहते हैं। उनका स्पष्ट मत था कि ब्रह्म और जीव दोनों एक ही हैं। वस्तुत: समुद्र, सरिता या सरोवर सभी प्रकृति से एक ही हैं क्योंकि सभी जल को ही धारण करते हैं, भले ही जलधारण क्षमता आकार में भिन्न प्रतीत होती है। यही बात ब्रह्म और जीव के संदर्भ में भी मान्य है। ब्रह्म और जीव (आत्मा) दोनों की प्रकृति एक सी है। ये दोनों ही तात्विक रूप से उसी तरह ब्रह्म का स्वरूप हैं, चाहे ब्रह्म प्रकृति से एक होते हुए भी असीम है। उसी प्रकार सूक्ष्म कारण और स्थूल शरीर की जीवात्मा भी एक ही होती है। **आदिगुरु शंकराचार्य** ने 'ब्रह्मसूत्र' पर अपने भाष्य में सकल बह्म के सम्पूर्ण प्रपंच को दो भागों में विभक्त किया है-द्रष्टा और दृश्य। दृष्टा वह है, जो सम्पूर्ण प्रतीतियों को अनुभव करता है और दृश्य वह है, जो अनुभव का विषय है। दृष्टा और दृश्य का सम्बन्ध सापेक्ष है। अंतिम द्रष्टा, जो समस्त प्रतीतियों का चरम साक्षी है, का नाम 'आत्मा' है तथा जो कुछ उसका विषय है वह सब 'अनात्मा' है। आत्मा नित्य, निर्विकार, असंग, कूटस्थ, अक्षय, अक्षत, निश्चल, एक और निर्विशेष है। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार सहित समस्त कर्मेन्द्रिय युक्त इस स्थूलभूत पर्यन्त जितने भी प्रपंच हैं उसका आत्मा से जो भी सम्बंध है, वह आरोपित है अर्थात् सच्चे अर्थों में कुछ भी सम्बंध नहीं है। इस प्रकार बुद्धि के आत्मा के साथ इस तादात्म्य को ही आचार्य ने 'अध्यास' शब्द से निर्दिष्ट किया है। आचार्य के अनुसार सम्पूर्ण प्रपंच, जो ज्ञानाभाव के चलते सत्य प्रतीत होता है। इसका कारण यह अध्यास या माया ही है; इसीलिए अद्वैतवाद को अध्यासवाद या मायावाद भी कहते हैं। **आचार्य शंकर** ने अभेद-बोध को ही ज्ञान कहा। यहां हम कह सकते हैं कि जैसे कोई स्वर्णकार भी नाना प्रकार के स्वर्णाभूषणों का निर्माण करता है लेकिन सभी आभूषण स्वर्ण ही होते हैं उसी प्रकार ज्ञानसम्पन्न मोक्ष का आकांक्षी भी संसार में अपने अर्जित ज्ञान से ही इस विविधताओं से भरे विश्व-प्रपंच, माया व मोह से परे भेद संकुलित संसार में केवल शुद्ध परब्रह्म का ही दर्शन करता है। उससे भिन्न कहीं कोई वस्तु उसे मोक्षसाधन रूप में दृष्टिगोचर नहीं होती। हालांकि आचार्य शंकर ज्ञानोत्पत्ति के लिए भक्ति को भी एक प्रधान साधन मानते हैं। यह प्रचलित धारणा के भले विपरीत लगे किन्तु आचार्य भक्ति को ज्ञान का अमोघ साधन मानते थे। उन्होंने ज्ञानान्वेषण में, जैसी कि प्रचलित धारणा है, कहीं से भी सगुणोपासना की उपेक्षा नहीं की है। **आचार्य शंकर** के द्वारा रचित शिव, विष्णु, एवं शक्ति के निमित्त अनेक भक्तिस्तोत्र मिलते हैं, जिसे सगुणोपासक श्रद्धा-विश्वास के साथ भजते हैं।

**संगीत व अन्य कलाओं के रिश्तों पर क्षण भर...**

उपरोक्त संदर्भ में हम नाद व ब्रह्म की विश्वव्यापी अवधारणा का भी सूक्ष्म अवलोकन करना चाहते हैं। आधुनिक अर्थ में हमें भारतीय प्रज्ञा को उसके वैश्विक विकसित स्वरूप में ही इसे देखना होगा। इसके साथ हमें वेद, मीमांसा, उपनिषद, नाट्यशास्त्र (भरतमुनि), काव्यशास्त्र (मम्मट) एवं ध्वनिशास्त्र (आनंदवर्धन) के अतिरिक्त काव्य व संगीत की विविध धाराओं के समन्वित प्रभावों का भी विश्लेषण करना होगा। भारत में शब्द, रस एवं ध्वनि से जुड़े अलंकारों का व्यापक प्रभाव संस्कृति व संगीत सहित सभी कलाओं पर पड़ा है। इसकी पूरी तरह से तार्किक विवेचना के बिना हम ब्रह्म और नाद के दर्शन को समझ नहीं सकते।

भारतीय तंत्रशास्त्र के अनुसार निष्कल ब्रह्म या परावाक अवस्था को सच्चिदानंद ब्रह्म भी कहते हैं। 'बृ' धातु से निर्मित बह्म विस्तार का सूचक है। यह 'सत्यं ग्यानंमनंतं ब्रह्म' की अनिर्वचनीय अवस्था है। इसके ईक्षण के बाद जो प्रकाश (शिव) व विमर्श (शक्ति) के संयोग से होता है, उससे नाद की उत्पत्ति होती है।

शिव व शक्ति की संयुक्तावस्था ही नाद कहलाती है। नाद (शब्द ब्रह्म) रुप के ऊंकार के अ, उ एवं म् की असंख्य कलाएं होती हैं। यह सत, चित एवं आनंद का वैभव-विस्तार है।

**'सच्चिदानंद विभवात्सकलात्परमेश्वरात्**
**आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भवः ।।'**

सामान्यतौर पर हम भारत की भौगोलिक–सांस्कृतिक सीमाओं के सन्दर्भ में यहाँ के जन जीवन से जुडी आस्थाओं और विश्वासों और जीवन– प्रणालियों को विश्व के अन्य मानव–समुदायों की सभ्यताओं और संस्कृतियों के परोक्ष–अपरोक्ष प्रभावों और बदलावों को कला के विभिन्न आयामों से जोड़कर देखते है और उनके तुलनात्मक अध्ययन से देश–विदेश की सामाजिक–सांस्कृतिक धाराओं को परखने की चेष्टा करते हैं। विश्व स्तर पर जहां प्लेटो, अरस्तू, कांट एवं हीगेल से लेकर आज के उत्तर आधुनिकतावाद तक के पश्चिमी जीवन–मूल्यों व दर्शन का प्रभाव सर्वत्र व्याप्त है, उसी तरह भारत, चीन एवं जापान व दूसरे देशों ने भी विश्व–चिंतन को प्रभावित व परिमार्जित किया है।

सीधे तौर पर भारतीय परंपरा के सन्दर्भ में हम वैदिक पूर्व, वैदिक, उत्तर वैदिक और आधुनिक समाजों में आए बदलाव व सांस्कृतिक मूल्यों को अपने स्वायत्तता या अस्मिता के परिप्रेक्ष्य में देखने–समझने की कोशिश भी करते हैं। यहाँ हमें यह बात साफ़ हो जाती है कि जहां भारतीय जीवन–मूल्यों में भी यहाँ विकसित विविध धार्मिक–सांप्रदायिक धाराओं का सीधा असर देखने को मिलता हैं वहीं बाहरी देशों जैसे पश्चिमी एशिया, यूरोप, चीन, जापान व् अन्य देशों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का प्रभाव भी देखने को मिलता है। उपरोक्त सन्दर्भ में भारत में संगीत, नाट्य, नृत्य, चित्रकला, मूर्ति–कला व अन्य हस्तकलाओं में भी बाहर के देशों का असर हुआ और यहाँ भी बहु–आयामी प्रादेशिक कलाओं के पारस्परिक अंतर्संबंधों के कारण भी कलाओं में परिवर्तन देखने को मिले। मुगलों से पूर्व बौद्ध व जैन सम्प्रदायों का भी असर हुआ, जिन्हें बाद में धर्म भी कहा जाने लगा। यहाँ तक कि सिख समुदाय भी जो सनातन हिन्दू घर्म का रक्षा–कवच बनकर सुदृढ़ रूप में सामने आया, उसे भी धर्म कहा जाने लगा। इस सबके कारण देश की एकता और अखंडता के साथ–साथ जीवन–मूल्यों पर भी सीधा असर आया और देश मानसिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से विभिन्न समाजों में छिन्न–भिन्न हो गया। उसकी एकरूपता को जबरदस्त क्षति हुई। एक समय विशेष में **जगद्गुरु शंकराचार्य** ने भारत में व्याप्त ''साम्प्रदायिक विद्वेष'' और विरोध के ज़हर को राष्ट्रीय–समन्वय के कच्चे धागों में बांधने का महान् कार्य किया और पुनः भारत के वैदिक धर्म को संगठित किया। कश्मीर से कन्या कुमारी तक और अफगानिस्तान से नेपाल तक इसका प्रभाव देखने को मिला और भारत की चारों दिशाओं में हिन्दू–धर्म से जुड़े वैदिक विश्वासों व आस्थाओं को सबल आधार दिया। दुर्भाग्य से बाद में मुस्लिम आक्रान्ताओं और उसके बाद अंग्रेजों ने पुनः राष्ट्रीय, सांस्कृतिक–सामाजिक आस्थाओं को कमज़ोर किया और देश का विभाजन करने के लगातार प्रयास किये गए।

लेकिन यहां हम कलाओं की अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा में एक सकारात्मक मानवीय चेतना का व्यापक स्वरूप भी समानांतर स्तर पर देख सकते हैं ।

आप देखिये पिकासो की गुएर्निका पेंटिंग, जो युद्ध के वीभत्स दृश्य को अभिव्यक्त करती है और बिल्कुल कुछ वैसा ही विपरीत प्यार के सन्दर्भ में, जो हमें 'जौक' की शायरी दिखाती है, कितनी समानता है। 'तस्वीर उनकी हजरते दिल खींच लाए गर/रख देंगे हम भी पाँव पर आँखे निकालकर...' कैसा लगा आपको यह साम्य ? जबकि सन्दर्भ बिल्कुल अलग हैं एवं विपरीत भी। यह संगीत में भी होता है। शब्द–रचना रागों के प्रभाव और उसके रस को भी बदल देती है। एक ही राग में विरह और श्रृंगार के भाव पैदा होते हैं, अन्य भाव भी। ध्रुवपद और ख़याल–गायन–परंपरा में आप यह गहराई महसूस कर सकते है। वाद्य–संगीत में शब्दों के अभाव के कारण कुछ कम। अभिप्राय यह है कि रंग और रेखाओं तथा स्वरों के वर्णों में सौन्दर्य–बोध के विविध आयामों की प्रस्तुति संभव है, सन्दर्भ चाहे अलग–अलग हों। अब यहाँ भी यह बात उठ सकती है कि 'भारतीय ध्रुवपद गायन–शैली में स्वरों या शब्दों की विविधता पर जितना अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया जाता है, उससे अधिक खयाल–शैली में दिया जाता है। वहां स्वरों का अतिक्रमण सहज ही स्वीकार्य है, जो बड़े से बड़े गायक आसानी से कर लेते हैं, ध्रुवपद में ऐसा नहीं होता। वहां स्वरों और श्रुतियों की विविधता व शुद्धता को 'ध्रुव' या अटल मानकर साधा जाता है जैसा कि पेंटिंग्स में रंगों या रेखाओं की परतों को लेकर भी कहा जा सकता है – 'एक पर एक पोत दिए जाते हैं ? वैसा अतिक्रमण रागों के विस्तार में ध्रुवपद–गायन या वादन शैली में वर्जित है। रंगों, रेखाओं व स्वरों की भी जाति, उपजातियां और वर्ण होते है, उनके देवी–देवता पशु–पक्षी आदि होते है। संगीत के अलंकारों और पेंटिंग्स के सौंदर्यशास्त्र को लेकर रागमाला– पेंटिंग्स की सीरीज़ बनी है। हमारे यहाँ बारहमासा के माध्यम से विविध ऋतुओं के भाव–बोध का असर संगीत पर भी पड़ा है। 'हवेली संगीत' में ज़रा प्रवेश करिए आपको मालूम हो जाएगा और इसी तरह से बड़े संगीतकारों को सुनिए मैं इधर कुछ नए अंदाज में नवरसों के व्यापक प्रभाव का अध्ययन संगीत, पेंटिंग, नृत्य और नाटक के माध्यम से करने का प्रयास कर रहा हूँ अपनी अल्प बुद्धि से इटली और इंडोनेशिया के दो अंतर्राष्ट्रीय रंग–थियेटरों से मेरा संवाद भी चल रहा। अगर आप इस संवाद में रूचि लें तो यह एक नवाचार होगा। इधर विगत वर्षों से भारतीय ख्यातनाम ध्रुवपद–

विदुषी डॉ. मधु भट्ट संगीत के वैदिक स्वरूप को लेकर राग और काव्य के कई आधुनिक प्रयोग कर चुकी हैं, जिसे राष्ट्रीय स्तर पर सराहा भी गया है।

इस दिशा में हिन्दू-मुग़ल व ईसाई संस्कृतियों व सभ्यताओं को हमें नए हिंदुस्थानी या इन्डियन या राष्ट्रीय समन्वित नज़रिये से देखना होगा। सुनिश्चित रूप से बदलते सन्दर्भों में यही हमारी दिशा होनी भी चाहिए। हम अब केवल राष्ट्रवाद के एकांगी दृष्टिकोण से विकास के सहज सुकोमल सांस्कृतिक धागों को नहीं खोज सकते। यहाँ कला को अन्तर्राष्ट्रीय (ग्लोबल) वसुधैव-कुटुम्बकम के चक्रीय (cyclik) आधार से देखना होगा? यह एक समन्वित और सम्पूर्ण भारतीय दृष्टि है। कला और अन्य कलाअनुशासनों से उपजे भारतीय व पश्चिमी जीवन-मूल्यों से जुड़े व मौलिक सवालों का जवाब भी आज हमें मिलना चाहिए। आज कला सार्वभौमिक है, लेकिन इसकी जडें बहुत गहरी हैं। 'जीवन का उत्सर्ग कला है। शिल्प-ज्ञान का योग सम्यक् गति से होता संभव जल-अग्नि संयोग।

बहुत गहराई में जाने से पहले हम यही सोच लें कि प्राणीमात्र के जीवन में हवा, पानी, प्रकाश, मिट्टी और अग्नि का क्या महत्व है। यह अपने आप में आश्चर्य की बात है कि जहां पहली चार जीवनी-शक्तियां हमें प्रकृति से प्रचुर मात्रा में मिल जाती हैं वहां मनुष्य को केवल अग्नि (प्रकृति में अदृश्य या दृश्य रूप में उपस्थित है किन्तु उसका संचयन भी करना पड़ता है और अग्नि के बिना हमारा जीवन भी अधूरा है। पशु-पक्षियों को अग्नि की बिल्कुल ज़रूरत नहीं होती लेकिन मनुष्य को होती है। हमारी संस्कृति और सभ्यता के विकास का आधार ही अग्नि है। अग्नि का अर्थ है जो आगे चले और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि हम प्रकृति के प्रमुख अन्य चार तत्वों के साथ अग्नि को भी देवता के रूप में स्वीकार करते है। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में हम अग्नि को ईश्वर के भौतिक रूप में भी पूजते हैं। 'अग्निमीले (मीडे) (जो 'डमरू जैसा अक्षर' है वह टंकण से संभव नहीं है) **पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम/होतारं रत्नधांतुमम।**' ऋग्वेद के इस प्रथम मन्त्र में हमें सृष्टि-विज्ञान या विद्या के कुछ सूत्र मिलते हैं। महर्षि दयानंद इस सम्बन्ध में यह कहते हैं कि परमार्थ और व्यवहार सिद्धि के लिए 'अग्नि' शब्द से परमेश्वर और भौतिक दोनों अर्थ लिए जाते हैं। महत्वपूर्ण बात ये है कि अग्नि से दाह और प्रकाश के साथ रूप की भी सिद्धि होती है और इसमें आगे बढ़ने वाले में वेग एवं छेदन आदि गुण भी आ जाते हैं, जो 'अश्वविद्या' अश्वत्थ विद्या या शिल्प-विद्या के आधारभूत तत्व हैं। संक्षेप में वास्तुकला का जन्म भी हमें ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र से ही मान लेने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। कला तो अनिवार्यत: सृजन का अंग है ही और सृजन अग्नि के बिना असंभव है। इसलिए प्रथम पूज्य अग्निदेवता को ही हमें सृष्टि का कारक मानना चाहिए। वास्तु तो उसका बहुत ही लघुरूप है, आगे हम अन्य तत्वों पर भी विचार करेंगे। यहाँ पौराणिक देवता शिवपुत्र गणेश को हम कुछ आगे ले जाते हैं और अग्नि में ही 'गणों के ईश' के भी दर्शन कर लेते है। गणेश भी सृजन और संहार के देवता हैं। वस्तुत: गणपति से जुड़ी संस्कृति ही आगे चलकर व्यापकरूप में देव-मानव-सृष्टि का रूप लेती है, जिसमें सभी देवता भी सहज रूप में स्थापित हो जाते हैं। आदि देव महादेव या शिव की सृजन और संहार-शक्ति के साथ वैदिक देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु और महेश को भी हम शामिल करके पूजनीय मानते हैं, उनके बिना भौतिक या आध्यामिक सृष्टि की रचना संभव नहीं है। हमारी सारी कलाओं और वास्तुकला का आधार त्रिदेव और उनकी शक्तियां ही हैं। भारतीय संस्कृति में समय की अवधारणा चक्रीय है, जिसमें इसके केन्द्र में ब्रह्मा रेडियस में, महेश और परिधि में विष्णु परिभ्रमण करते हैं। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माडे' के सिद्धांत पर यह सृष्टि कार्य करती है। नाद और ब्रह्म के आधार में भी आहत (लोक) व लोकेत्तर (अनाहत) का यज्ञ हृदयपटल पर नियमबद्ध तरीके से शाश्वत चलता रहता है। चरैवेति-चरैवेति!

**नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदु:।**
**जात: प्राणाग्नि संयोगात्तेन नादोऽभिधीयते।।**

– संगीत रत्नाकर – शारंगदेव

**आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते।**
**सोऽयं प्रकाशते पिण्डे, तस्मात् पिण्डोऽभिधीयते।।**
**न नादेन बिना गीतं, न नादेन बिना स्वर:।**
**न नादेन बिना नृत्तं तस्मान्नादात्मकं जगत्।।**
**स नादस्त्वाहतो लोके, रंजको भवभंजक:।**
**श्रुत्यादि द्वारत: तस्मात् तदुत्पत्तिर्निरुप्यते।।**

– 'सं. दर्पण' – दामोदर

1/1 नकारं नकार शब्द में 'न' प्राणतत्व है और 'द' अग्नि तत्व है, प्राण और अग्नि के संयोग से ही इसे नाद कहा गया है।

2/1 आहत और अनाहत इसके दो प्रकार है क्योकि यह पिण्ड मे प्रकाशित होता है इसलिए इसे पिण्ड भी कहा गया है।

3/1 नाद के बिना न तो गीत संभव है और न स्वर तथा इसके बिना नृत्त भी संभव नहीं है इसलिए सम्पूर्ण जगत ही नादात्मक है।

4/1 वह नाद लोक मे प्रयुक्त होने से आहत कहलाता है और श्रुति आदि के माध्यम से नाद की उत्पत्ति बताई गई है।

निष्कर्षत: संगीत के मीमांसकों एवं शास्त्रकारों ने नाद का बहुत विविधतापूर्ण वर्णन विविध ग्रंथों में विश्लेषित किया है जो कि हमें ब्रह्म तक पहुंचाता है।

लेखक-वरिष्ठ सांस्कृतिक-समीक्षक, चित्रकार एवं फिल्म-निर्देशक हैं

आलेख

# ध्रुवपद गायकी के मूर्धन्य संत साधक - पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग

वर्तमान युग के कला-क्षेत्र के साधक जब व्यावसायिकता, प्रतिद्वंद्विता, यश-लिप्सा एवं नाम कमाने की ओर प्रवृत्त हैं ऐसे युग में भी ध्रुवपद के एक वरिष्ठतम साधक इस सबसे दूर नि:स्वार्थ साधना में लीन एवं अपनी धुन में मगन ध्रुवपद की सेवा में अपना जीवन समर्पित करता रहा है, आप संत साधक हैं-जयपुर राजस्थान की ध्रुवपद परम्परा के प्रतिनिधि एवं विश्व के सबसे वरिष्ठ मूर्धन्य ध्रुवपद-गायक पं.लक्ष्मण भट्ट तैलंग। आपने वाराणसी के महाराजा द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय ध्रुवपद मेले में अपनी लगभग 90 वर्ष की उम्र में अंतिम सार्वजनिक प्रस्तुति के रूप में महाराजा द्वारा **लाइफ टाइम अचीवमेंट** सम्मान लेने वाराणसी के गंगा घाट पर पहुंच कर स्वनिर्मित गंगा-स्तुति प्रस्तुत की। इस संत साधक ने ध्रुपद मेले में अपनी इस हाज़िरी को मात्र बाबा विश्वानाथ एवं गंगा मैया की हाज़िरी के अलावा कुछ नहीं माना। इस संत साधक के जीवन-परिचय को देखा जाए तो उनकी अथक एवं समर्पित साधना को ही हम पायेंगे।

वर्तमान में देश के सबसे वरिष्ठ ध्रुवपद-गायक के रूप में बहुख्यात हैं। गुणीजन खाने टूटने के बाद जब राजस्थान ध्रुवपद-गायकों से रीता होने लगा गया तब 50 के दशक के मध्य आप एक ऐसे सुदृढ़ प्रतिनिधि के रूप में उभर कर आये कि पिछले लगभग 75 वर्षों से वर्तमान तक आपने राजस्थान के स्थाई निवासी के रूप में यहां की ध्रुवपद-परम्परा को जीवित रखा और उसके अनवरत प्रचार-प्रसार द्वारा उसे पुन: विश्व के मानचित्र पर खड़ा कर दिया। आपके देश-विदेश में लगभग 500 शिष्य हैं जो विभिन्न शिक्षण-संस्थानों,आकाशवाणी-दूरदर्शन,सरकारी-गैर सरकारी प्रतिष्ठानों एवं देश-विदेश के मंचों आदि में अपनी संगीत-सेवाओं द्वारा भारतीय शास्त्रीय संगीत का चहुं ओर परचम लहरा रहे हैं। ध्रुवपद में परम्परा और प्रगतिशील एवं प्रयोगशील विचारधारा के ठोस पक्षधर आपने ध्रुवपद के कई प्रयोगात्मक नवाचारों से अपनी एक अलग प हचान बनाई है।

भारतीय संगीत के ऐसे साधक विरले हैं, जिन्होंने भारतीय संगीत के हर फन यथा गायन, वादन, रचनाकार, लेखन, संगीतकार, गुरु एवं शोधक आदि रूपों पर अपना प्रभुत्व जमाया हो। ध्रुवपद की विशेषज्ञता के साथ शास्त्रीय संगीत की अन्य गायकियों, उपशास्त्रीय, सुगम संगीत आदि के अतिरिक्त सितार, बांसुरी, रूद्रवीणा, जलतरंग, वॉयलिन, पखावज एवं तबला आदि विविध वाद्यों के भी आप सुविज्ञ वादक रहे हैं।

सुप्रसिद्ध सांगीतिक भट्ट परिवार में जन्में आपको अपने बाबा पं.गोपाल जी भट्ट एवं अपने पिता पं. गोकुलचन्द्र भट्ट से सांगीतिक विरासत प्राप्त हुई, जो कि स्वयं ध्रुवपद-संकीर्तन पुष्टिमार्गीय हवेली

संगीत के उद्भट गायक थे। तदनन्तर ग्वालियर घराने के पं. राजाभैया पूछवाले, नाथू साहेब, पंचाक्षरी साहेब, गुणे साहब, अग्निहोत्री साहेब, तिखे साहब आदि से ध्रुवपद-ख्याल की तालीम के अतिरिक्त भारत सरकार की विशिष्ट छात्रवृत्ति के तहत आपको दो वर्षों 1956 से 58 तक विख्यात ध्रुवपद-गायकों उ.नसीर मोइनुददीन एवं उ. नसीर अमीनुद्दीन खां डागर से भारतीय कला केन्द्र, नई दिल्ली में ध्रुवपद की गहन तालीम प्राप्त हुई इसके अतिरिक्त उ. हाफिज अली खां से रूद्रवीणा एवं श्री पर्वतसिंह जी, माधोसिंह जी, विजय सिंह जी एवं पं. पुरुषोत्तमदास जी से पखावज

की भी गंडाबन्ध तालीम प्राप्त हुई। माधव संगीत महाविद्यालय, ग्वालियर से प्रथम श्रेणी संगीत स्नातकोत्तर आपने 1956 से निरन्तर आकाशवाणी के ख्याल एवं 1963 से ध्रुवपद के प्रतिष्ठित गायक होने के अलावा केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी एवं उस्ताद अलाउद्दीन खां संगीत अकादमी, भोपाल द्वारा आयोजित अनेकों ध्रुवपद समारोहों में आमंत्रित होकर गायन करने के अलावा मध्य प्रदेश कला परिषद द्वारा रीवा और ग्वालियर के तानसेन समारोहों एवं वृन्दावन के हरिदास समारोह सहित देशभर के सभी प्रतिष्ठित बृहद् समारोंहों में आपने सफल प्रदर्शन कियें। देश-विदेश के समाचार पत्रों, विविध दूरदर्शन के चैनलों पर आपके व्यक्तित्व व कृतित्व पर विविध समीक्षाएं, आलेख एवं वृत्त फि ल्में आदि प्रकाशित होती रहती हैं। वर्ल्ड स्पेस रेडियोगंधर्व सहित दूरदर्शन-आकाशवाणी के विविध देशी-विदेशी केन्द्रों में आपके गायन निरन्तर प्रसारित होते रहते हैं। देशभर के विविध शिक्षण एवं सांस्कृतिक प्रतिष्ठानों में आयोजित सेमिनारों, गोष्ठियों एवं वर्कशॉपों में आपने अपने विद्वतापूर्ण व्याख्यान, प्रदर्शनों एवं प्रशिक्षणो ं से ज्ञानवर्द्धन किया है। देश की विविध पत्र-पत्रिकाओं में लगभग 70 वर्षों से आपके संगीत एवं विविध विषयक आलेख निरन्तर प्रकाशित हो रहे हैं।

**व्यक्तित्व-कृतित्त्व पर शोध**- राजस्थान विश्वविद्यालय से सन् 2014 में पंडित जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर किये कार्य पर एक विद्यार्थी को पीएच.डी. अथवा डॉक्टरेट उपाधि भी दी गई है।

हरफनमौला व्यक्तित्व आपको महामहिम पूर्व राष्ट्रपति अबुल कलाम द्वारा एक लाख रूपये द्वारा पुरस्कृत, भारतीय कला केन्द्र, दिल्ली में 'संगीत वारिधि', वाराणसी के महाराजा द्वारा 'स्वाति तिरून्नाल' एवं दो बार 'तुलसी पुरस्कार', उदयपुर महाराणा द्वारा डागर घराना अवार्ड, जयपुर महाराजा द्वारा 'ईश्वरी सिंह सम्मान' एवं 'रागरत्नाकर सम्मान', राजस्थान संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, समाज कल्याण विभाग, राजस्थान सरकार,

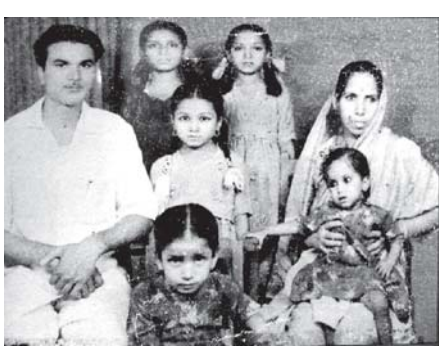

मुम्बई की सुरसिंगार संस्था द्वारा गुणीजन एवं श्रेष्ठगुरु सम्मान, अभिनव कला परिषद, भोपाल द्वारा श्रेष्ठ आचार्य श्री गोपाल पुरोहित

सम्मान, समाज सम्पदा सम्मान, ध्रुवपद कौस्तुभ, संगीत रत्नाकर, स्वर-रत्न, संस्कार भारती सम्मान, राज्यपाल एवं मुख्यमंत्री, राजस्थान एवं महामहिम राष्ट्रपति द्वारा सम्मानों आदि के अतिरिक्त अनेक महाविद्यालयों एवं संस्थाओं द्वारा अनेकानेक सम्मान प्राप्त हुए हैं। दिनाकं 6 अप्रैल, 2013 को **लाईफ टाईम अचिवमेंट अवार्ड** से आपको पिंकसिटी प्रेस क्लब, जयपुर में सम्मानित किया गया। 2017 में आपको अन्तर्राष्ट्रीय ध्रुवपद मेला में वाराणसी महाराजा अनन्त विभूति नारायण जी द्वारा 'लाइफटाईम अचीवमेंट' अवार्ड प्रदान किया गया। 7 अगस्त, 2018 को डागर ब्रदर्स म्यूजिक एण्ड आर्ट फाउण्डेशन द्वारा जयपुर स्थित जवाहर कला केन्द्र में 'संगीत सर्वज्ञ उस्ताद एच. सईउद्दीन डागर अवार्ड द्वारा पुरस्कृत किया गया। यह अवार्ड उन्हें राजस्थान संगीत नाटक अकादमी के अध्यक्ष श्री अशोक पाण्ड्या, पद्मश्री उ. वासिफुद्दीन डागर, पद्मश्री शाकिर अली एवं उ. वहाउद्दीन डागर आदि द्वारा प्रदान किया गया। 2020 में भट्ट राजा सदाशिव फाउण्डेशन द्वारा **भट्ट राजासदाशिव विद्वज्जन सम्मान** प्रदान किया गया।

ऐसा किसी ही विरले परिवार में संभव होता है कि राजस्थान की शास्त्रीय परम्परा के कर्णधार आपकी छः पुत्रियां व एक पुत्र सभी शास्त्रीय संगीत के गायक-वादक हैं। यह शास्त्रीय संगीत की विरासत के संरक्षण में आपका महत् योगदान कहा जा सकता है। आपने सैंकड़ों ध्रुवपद-धमार, ख्याल, तराना, चतुंरग, गीतों, भजनों, राग-घाट मालाओं एवं बाल गीतों आदि की शब्द-स्वर रचना की। प्रचलित के अलावा स्वयं सृजित रागों जैसे-मेवाड़ा-दरबारी, जौन-तोडी, जोगश्री, जोगेश्वरी, केदार-कल्याणम्, हरिकौंस एवं कुछ अप्रचलित रागों में भी अनेकों बंदिशें बनाईं। सन् 1956 से 1958 तक भारतीय कला केन्द्र में शंभु महाराज, बिरजू महाराज, नरेन्द्र शर्मा आदि द्वारा निर्देशित नृत्य नाटिका, रामलीला, बैले डांस एवं पपेट शो आदि में गायन एवं सितार-वॉयलिन वादन किया। संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली की सचिव निर्मला जोशी द्वारा संगीत-निर्देशन में बेगम जैदी द्वारा लिखित एवं निर्देशित नाटक 'शकुन्तला' में भी संगीत-गायन किया।

आपने प्रचलित कवियों के अतिरिक्त कबीर, मीरा, तुलसी, रवीन्द्र नाथ टैगोर,नानक, बुल्लेशाह, महादेवी वर्मा, निराला, आदि के

पद्यों को भी ध्रुवपद में ढ़ाला। इकबाल की रचना ''सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' एवं बंकिमचंद्र चटटोपाध्याय रचित राष्ट्रगीत वन्दे मातरम् आदि को ध्रुवपद में ढ़ालने के अतिरिक्त अन्य भाषाओं बगांली, पजांबी एवं राजस्थानी आदि में भी ध्रुवपद-रचनाएँ की। राजस्थानी मांड की धुन पर आधारित ध्रुवपद-रचना का नवाचार भी प्रस्तुत किया। आपने दादरा ताल के छंद पर एक ध्रुवपद में प्रयुक्त छः मात्रा की नवीन ताल 'अद्धा चौताल' की रचना की है। हाल ही में आपके गायन की रिकॉर्डिंग को दो फ्रांसीसी संगीतज्ञों श्री गिलीस मोनफोर्ट एवं फ्रेडरिच ग्लोरियन द्वारा डिजीटल कर रिलीज़ किया गया। आपकी सन् 2003 में 'रसमंजरी शतक' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें आपकी रचित 101 बन्दिशों का संग्रह है। आपकी सृजित दिसम्बर, 2018 में 51 बदिशों की पुस्तक ''**पंचाशिका विमल मंजरी**'' राज बुक्स प्रकाशन,जयपुर से प्रकाशित हुई है। आपकी सन् 2008 में स्वरचित 200 से अधिक बन्दिशों की 'संगीत-रसमंजरी' नामक पुस्तक कनिष्का पब्लिकेशन, दिल्ली से प्रकाशित हुई। आपके गायन के 'ध्रुवपद-रसमंजरी' एवं 'गुरुनमन' नामक दो एलबम प्रकाशित हो चुके हैं एवं विहान कम्पनी कलकत्ता द्वारा 2017 में ''**ध्रुवपद रसमंजरी**'' नामक सी.डी. रिलीज हुई है।

दिल्ली के महर्षि गांधर्व वेद विद्यालय द्वारा आपके गाये गये राग दीपक एवं मेघ के आलापों का विविध रोगों के उपचार में सफल प्रयोग किया गया। विदेशों में भी योगा के लिए आपके विविध रिकॉर्डिंग्स किये गये। 8 प्रहर के रागों की सीरीज़ भी जर्मनी एवं फ्रांस में रिकॉर्डेड है।

आप वनस्थली विद्यापीठ माध्यमिक शिक्षा विभाग, राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर,राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर, उ. अलाउद्दीन खां अकादमी भोपाल, उ. मध्य सांस्कृतिक केन्द्र इलाहबाद की गवर्निंग बॉडी के सदस्य रहे हैं। वनस्थली विद्यापीठ में भरतनाट्यम एवं मणिपुर नृत्य के हायर सैकण्ड्री तक के पाठ्यक्रमों का निर्माण कर माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा स्वीकृत कराया।

सन् 1950 से 1992 तक वनस्थली विद्यापीठ एवं सन् 1991 से 1994 तक राजस्थान संगीत संस्थान, जयपुर में संगीत-व्याख्याता होने के अतिरिक्त 1985 में जयपुर में 'रसमजंरी संगीतोपासना केन्द्र' एवं सन् 2004 में जयपुर में 'इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट' नामक दो संस्थाओं के आप संस्थापक एवं संचालक हैं। ये राजस्थान में ऐसे अकेले केन्द्र हैं, जहां शास्त्रीय संगीत विशेषकर ध्रुवपद गायकी की नई पीढ़ी तैयार की जाती है। ये संस्थाएं वर्ष में विविध ध्रुवपद प्रशिक्षण कार्यशालाएं एवं एक अन्तर्राष्ट्रीय अथवा अखिल भारतीय हवेली संगीत एवं ध्रुवपद विरासत समारोह पंडित जी के द्वारा आयोजित करती हैं जहां स्थानीय से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कलाकार शिरकत करते हैं।

पंडितजी द्वारा वर्ष में एक स्मारिका 'ध्रुवावाणी'' का प्रकाशन भी किया जाता है। ध्रुवपद के प्रचार-प्रसार में निरन्तर संलग्न पंडित जी ने विविध नामों यथा - 'ध्रुवपद नवचेतना के स्वर', ध्रुवपद नाद-निनाद, ध्रुवपद अनुष्ठान, दि क्लासिक मेलॉडी ऑफ ध्रुवपद, ध्रुवपद विरासत प्रसार सीरीज विविध शास्त्रीय संगीत प्रतियोगिताओं एवं ध्रुवपद सभाओं-समारोहों के सफल-सचांलन द्वारा ध्रुवपद का परचम कोने-कोने में फैला दिया है। वर्ष 2007-08 से प्रत्येक माह जयपुर के मंदिर, मंचों एवं शिक्षण केन्द्रों में इस गायकी के लगातार विविध प्रदर्शन किये गये, इस प्रकार आप समाज में इस पुरातन गायकी व भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में संलग्न एवं कृतसंकल्प हैं। आपकी माधुर्यपूर्ण, ओजपूर्ण, अत्यंत भावपूर्ण, भक्तिपूर्ण एवं स्वर-ताल एवं उत्कृष्ट साहित्य की अदायगी से परिपूर्ण गायकी परम्परा एवं विविध प्रयोगों से पूर्ण सार्थक्ता लिए श्रोता के हृदय में सीधा असर पैदा करने में पूर्णत: सफल है। वर्तमान में 93 वर्ष की उम्र में भी आप सक्रिय हैं एंव संगीत-रचनाओं के निर्माण के साथ आप अनेक शिष्यों को शास्त्रीय संगीत की घरानेदार तालीम देने में पूर्णत: संलग्न हैं।

- पं.लक्ष्मण भट्ट तैलंग, 118ए, रसमंजरी, गेटोर रोड़,
ब्रह्मपुरी, जयपुर (राज.)
मो.: 94143-36936, 99282-77833

■

# नादब्रह्म के परम् उपासक प्रेरक व्यक्तित्व
# ध्रुवपदाचार्य पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग 'संगीत-वारिधि'

- डॉ. श्याम सुन्दर शर्मा

**सृष्टि के आरम्भ से ही संगीत कला की अवतारणा ओम्कार से उत्पन्न नादात्मक अभिव्यक्ति है। भारतीय शास्त्रीय संगीत के वर्तमान स्वरूप में विद्यमान विविध नाद ब्रह्मरूपी नाद के निनाद रूप में हमारे समक्ष हैं। नादब्रह्म को ही संगीत की नादात्मक अभिव्यक्ति का मौलिक स्त्रोत माना गया है। आज भारतवर्ष अपनी आज़ादी की 75वीं वर्षगाँठ 'आज़ादी के अमृत महोत्सव ' के रूप में मना रहा है। ऐसे समय उन प्रकाश-स्तम्भ स्वरुप संगीत के वरिष्ठ गुणी कलाकारों का साक्षात्कार विशेष रुप से मूल्यवान हो जाता है, जिन्होंने आज़ादी से ज़्यादा आयुष्मान होते हुए भारतीय कलाओं के उतार-चढ़ाव एवं संघर्ष को खुद जिया एवं भारतीय कलाओं की विधाओं में अपना ऐतिहासिक योगदान देते हुए ऐसी इबारत लिखी हो, जो आने वाली पीढ़ी के लिए उदाहरण होगी, इसी के अन्तर्गत भारतीय शास्त्रीय संगीत के वर्तमान परिदृश्य में नादब्रह्म के परम उपासक एवं वर्तमान में ध्रुवपद के देश में सबसे वरिष्ठतम अग्रणी कलाकार संगीत-मनीषी 'ध्रुवपदाचार्य' वाग्गेयकार पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग 'संगीत वारिधि' से भारतीय शास्त्रीय संगीत की मूल आत्मा 'नाद ब्रह्म' के स्वरूप व विविध आयामों को लेकर विस्तृत चर्चा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, साथ ही इस चर्चा के माध्यम से पंडितजी की सांगीतिक पृष्ठभूमि, गहन-तालीम व निर्बाध दीर्घ संगीत-साधना के विभिन्न अनछुए पक्षों को हम जान पाए।**

- **पंडित जी जयपुर में आपका जन्म कहाँ हुआ, उस समय घर में कौन-कौन थे? बचपन की कोई याद हो तो बताएं?**

- मैं आपको प्रारंभ से ही हमारे पूर्वजों के जयपुर में आने और बसने के बारे में बताउंगा कि जयपुर के महाराजा ने जब जयपुर की स्थापना की तब उस समय अश्वमेध यज्ञ आदि पूजा एवं कर्मकांडों को सम्पादित करने हेतु दक्षिण भारत के तैलंगाना क्षेत्र से कला, साहित्य व संगीत के विद्वान पंडितों एवं कलाकारों को जयपुर में आमंत्रित कर यहाँ बसाया। आज से 93 वर्षों पूर्व 24 दिसम्बर 1928 को जयपुर में स्थित शिवदीन जी की हवेली, शिवदीन जी का रास्ता, चौड़ा रास्ता में मेरा जन्म हुआ। मेरे जन्म के समय परिवार में दादा-दादी एवं माता-पिता थे। शिवदीन जी की हवेली एक ऐतिहासिक जगह रही है। शिवदीन जी जयपुर महाराजा के दरबार में प्रमुख विद्वान रहे। जयपुर महाराजा ने साहित्य-कला-संगीत एवं संस्कृत के पंडितों को दरबारों एवं मंदिरों में राज्यकार्यों एवं धार्मिक आयोजनों हेतु नियुक्त किया था। हमारे बुज़ुर्गों ने संगीत को केवल भगवान की सेवा का ही माध्यम माना और इस भावना का उन्होंने सम्पूर्ण जीवन निर्वहन भी किया। जयपुर के सभी महाराजा भी कृष्ण एवं शिव भक्त रहे हैं अतएव जयपुर महाराजाओं द्वारा भी संगीत को

आराध्य की साधना के ही रूप में लिया जाने की वज़ह से हमारे परिवार के संत प्रकृति वाले बुज़ुर्गवार गुणीजन को भी जयपुर स्थित ब्रह्मपुरी में स्थायी निवास की जगह दी एवं जयपुर महाराजा द्वारा स्थापित मंदिर की सेवा के लिए नियुक्त किया गया, जहाँ वे मन्दिरों में पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की आठों प्रहर की ठाकुर जी सेवा में ही गायन प्रस्तुत किया करते थे। क्योंकि हमारे पूर्वज बाबा एवं पिताजी पं.

गोपाल जी एवं पं. गोकुल चन्द्र जी भट्ट ने कभी भी राजदरबारों की आधीनता स्वीकार नहीं की वे सिर्फ़ राजा-महाराजाओं द्वारा आयोजित धार्मिक आयोजनों में ही ठाकुर जी की सेवा में ही ससम्मान बुलाये जाने पर गायन प्रस्तुत करने जाते थे। हमारे बाबा एवं पिताजी 'रूक्मणी मंगल' का श्रेष्ठ गायन किया करते थे। जयपुर में पहाड़ पर स्थित गढ़ गणेश मन्दिर की नीचे से जाने वाली सीढ़ियों के पास स्थित कृष्ण मंदिर में आठों प्रहर की पुष्टिमार्गीय सेवा करते थे। जयपुर में महाराजाओं का समय ख़त्म हुआ और मिर्जा इस्माईल के राज्यत्व में हमारे बुज़ुर्ग कुछ समय के लिये आजीविकार्थ ग्वालियर स्थित 'गिरिराज मन्दिर' में पुष्टिमार्गीय सेवा के लिए चले गए, इसके बाद जबलपुर में सेठ गोविन्द दास के 'गोपाल मन्दिर' में ठाकुर जी की आठों प्रहर की सेवा की। सेठ गोविन्द दास साहित्य-क्षेत्र में सुप्रसिद्ध रहे हैं। इस प्रकार हमारे सभी बुज़ुर्गवार संगीत-साधना के माध्यम से अपने आराध्य कृष्ण (श्रीनाथ जी) की भक्ति में ही सेवारत रहे। जयपुर स्टेट में भी हमारे बाबा एवं पिताजी भक्ति-आयोजनों अथवा पूजा-पाठ आदि में बुलाये जाने पर सुरंग के रास्ते दरबार जाते तो लौटते समय इनका राजपरिवार द्वारा कलाकंद-मिष्ठान व भेंट इत्यादि से सम्मान किया जाता था। जब मैं युवावस्था में आया तो पिताजी के ही साथ ग्वालियर एवं तत्पश्चात जबलपुर भी चला गया। बचपन की यही कुछ स्मृतियाँ इतने लम्बे अरसे के बाद शेष रह गयी हैं।

- **आपकी संगीत में रूचि कैसे पैदा हुयी एवं आप इस क्षेत्र में कैसे आए ?**

– परिवार में भक्ति-संकीर्तन व पुष्टिमार्गीय संगीत की परम्परा रही है। परिवार में बाबा व पिताजी परिवार में लगभग 600 वर्षों से आगत इसी ध्रुवपद-संकीर्तन-परम्परा के सिद्ध गायक थे। माँ एवं दादी की भी संगीत में गहरी रूचि थी। घर के सांगीतिक-वातावरण से मुझे इस क्षेत्र में आने की प्रेरणा प्राप्त हुयी। घर में बाबा व पिताजी का गाना सुनता रहता था। अपनी बाल्यावस्था में मन्दिर में ठाकुर जी सेवा में पद-गायन के लिए बाबा व पिताजी के साथ जाता था। इसी वातावरण से उत्प्रेरित हो कर ही मैं संगीत-शिक्षा ग्रहण करने की ओर अग्रसर हुआ।

- **पंडित जी आप अपने पिताजी व बाबा के संगीत के बारे में बताइये एवं साथ ही अपनी सांगीतिक यात्रा के बारे में भी हमें बताइये।**

– मेरे बाबा एवं पिता जी ने सम्पूर्ण जीवन श्रीकृष्ण (श्रीनाथजी) की आठों प्रहर की सेवा में ही पद-गायन किया। उनके साथ कुदऊसिंह घराने के प्रसिद्ध पख़ावज पं.पर्वतसिंह जी संगत करते थे किन्तु जब वे किसी दिन नहीं आते थे तो उनकी अनुपस्थिति में उनके अन्य भाई पं. गोपाल सिंह जी, पं.विजय सिंह जी एवं पं.माधोसिंह जी संगत किया करते थे एवं मुझे पख़ावज का शौक होने के कारण मैंने विजयसिंह जी से पख़ावज पर हाथ रखना एवं थाप लगाना सीखा। बाबा व पिताजी के पास संस्कृत-साहित्य व संगीत का समृद्ध भंडार था। मैं बाबा व पिताजी का संकीर्तन ठाकुर जी की सेवा में जब वे गाते थे तो सुना करता एवं उसका अनुसरण करने का प्रयास किया करता था, इससे पुष्टिमार्गीय कीर्तन के पद जिन रागों व तालों में निबद्ध होते थे उनका मुझे हमारे पारिवारिक संगीत-वातावरण से सहज ही ज्ञान हो गया। ग्वालियर में 'गिरिराज मन्दिर' में पिताजी के साथ मैं भी उनके पीछे-पीछे पद-गायन में उनका अनुसरण करता था तो वहाँ पर ग्वालियर घराने के गुणी कलाकार पं.राजा भैया 'पूछवाले' भी आते थे। उन्होंने पिताजी से कहा कि यद्यपि आप की पुष्टिमार्गीय संगीत की समृद्ध परम्परा रही है किन्तु वर्तमान में संगीत-शिक्षा में अकादमिक डिग्री का भी महत्व है इसलिए इसे शिक्षण-संस्थानों में शिक्षा भी दिलाओ। तो पिताजी ने मुझे 'माधव संगीत महाविद्यालय' में प्रवेश दिलवाया। दिन में गोरखी विद्यालय में मिडिल क्लास की पढ़ाई व शाम में इसी जगह पर माधव संगीत महाविद्यालय में संगीत की शिक्षा प्राप्त करता था। यहाँ पर राजा भैया 'पूछवाले' का मेरे ऊपर विशेष आशीर्वाद रहा। मैं ही उन्हें प्रत्येक दिन घर तक छोड़ कर आता एवं उनकी पान आदि की सेवा किया करता था। मेरी प्रतिभा को देखते हुए मुझे सिंधिया परिवार से भी संगीत की उच्च शिक्षा के लिए वज़ीफा भी प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त मुझे गुणे साहब, पंचाक्षरी साहब, अग्निहोत्री साहेब जैसे गुणीजनों से भी सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पं. एस.एन. रातंजनकर साहब, लखनऊ में भातखण्डे विश्वविद्यालय के कुलपति रहे,वे भी हमारे कॉलेज में आया करते थे, उनसे भी सीखने का सुअवसर मुझे मिला। महाविद्यालय के पाठ्यक्रमों के कठिन रियाज़ के लिये मेरे पिता रातभर स्वयं मेरे साथ तबले पर संगत करते एवं मेरे में संशोधन आदि कार्य भी करते परिणामस्वरूप माधव

संगीत महाविद्यालय से मैंने संगीत में एम.ए. की डिग्री प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् राजस्थान के प्रथम मुख्यमंत्री पं.हीरालाल शास्त्री के आग्रह पर वनस्थली विद्यापीठ में मैंने संगीत-व्याख्याता के पद पर अपनी सेवाएं प्रारंभ की। वनस्थली विद्यापीठ में मुझे सदैव माननीय हीरालाल शास्त्री का स्नेह व सम्मान प्राप्त हुआ। वनस्थली विद्यापीठ में उस समय में जितने भी विशिष्ट अतिथि राष्ट्रपति, राज्यपाल, मुख्यमंत्री एवं प्रधानमंत्री आदि आते थे तो उनके समक्ष शास्त्री जी मेरी शास्त्रीय संगीत गायन की प्रस्तुति बहुत ही सम्मान के साथ अवश्य करवाते थे। प्रत्येक आगन्तुक अतिथि से मेरा विशेष परिचय करवाते थे। वनस्थली विद्यापीठ में मैंने लगभग 48 वर्षों तक विश्वविद्यालय स्तर तक अपनी शिक्षण-सेवाएं दीं, इसके पश्चात् जयपुर स्थित 'राजस्थान संगीत संस्थान' में भी कुछ समय तक संगीत-गुरु के पद पर अपनी सेवाएं दीं। वनस्थली विद्यापीठ में परीक्षा आदि कार्यों से जितने गुणी कलाकार आते थे, इनमें पं.विनायक राव पटवर्धन जी एवं पं. नारायण राव व्यास इत्यादि कलाकारों की मेरे घर में सेवा की जाती। कई के गायन-वादन की रात्रि में घर में बैठकें हुआ करती थीं, बाद में जयपुर में निवास-स्थान पर भी इस तरह की सम्पूर्ण रात्रिकालीन संगीत-बैठकों का आयोजन निरंतर होता रहा। इन संगीत-बैठकों में जयपुर के लगभग सभी संगीत के गुणी कलाकार अपनी प्रस्तुति दिया करते थे। सन् 1986 के पश्चात् मेरे ब्रह्मपुरी में स्थायी निवास पर कुछ वर्षों तक इस तरह की संगीत-बैठकों का आयोजन एवं ग्रीष्मकालीन संगीत प्रशिक्षण शिविर इत्यादि गतिविधियाँ औपचारिक रूप से मां 'रसमंजरी' के नाम से 'रसमंजरी संगीतोपासना केन्द्र' की स्थापना कर इसके अन्तर्गत प्रारंभ कीं। ध्रुवपद समारोह की अनौपचारिक शुरूआत भी इसी मकान की छतपर सम्पूर्ण रात्रिकालीन इन्हीं संगीत-बैठकों से प्रारंभ होकर बड़े मंचों तक पहुँची। भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्राचीन व आधारभूत गायकी ध्रुवपद-गायन के संरक्षण व संवर्द्धन के उद्देश्य से मैंने 1950 के लगभग 'रसमंजरी संगीतोपासना केन्द्र' व 2004 में 'इण्टरनेशनल ध्रुवपद धाम ट्रस्ट' दो संस्थाओं की स्थापना की। इन संस्थाओं के माध्यम से इनकी स्थापना से लेकर वर्तमान तक अनवरत रूप से ध्रुवपद-कार्यशालाओं,संगोष्ठियों, व्याख्यान-मालाओं एवं राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय नाद-निनाद ध्रुवपद विरासत समारोह का आयोजन किया जाता रहा है। मेरे मार्गदर्शन में इसके प्रतिवर्ष सतत् रूप से 27 समारोहों की सफल यात्रा सम्पन्न की जा चुकी है। इन समारोहों में अंतर्राष्ट्रीय ख़्याति प्राप्त कलाकारों से लेकर उदीयमान कलाकारों को

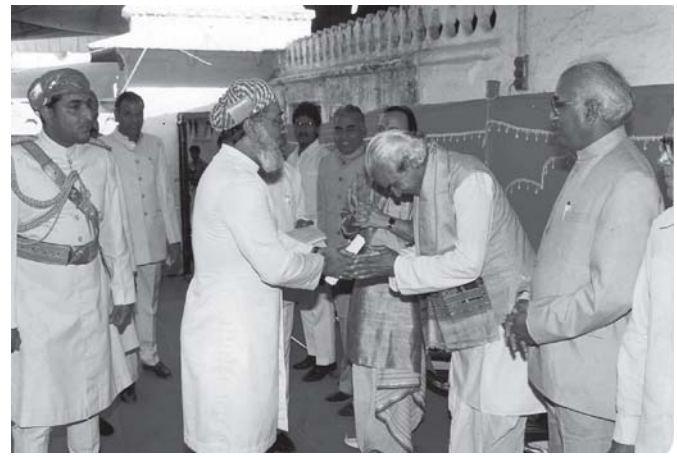

मंच प्रदान कर इस विधा के संरक्षण-संवर्द्धन का महती सफल प्रयास किया जा रहा है।

- **आपकी माँ व दादी के बारे में भी बताए,आपके कलाकार-व्यक्तित्व के निर्माण में इनका कितना योगदान रहा ?**

– मेरा बचपन बहुत ही संघर्षों से गुजरा है। आर्थिक रूप से विपन्नता के कारण आजीविका-निर्वहन, संगीत-शिक्षा एवं पढ़ाई को सुचारू रखने के लिए मैंने बचपन से ही कई छोटी-बड़ी मजदूरियां भी कीं, यहाँ तक कि घर में रियाज़ के लिए कमरा भी नहीं होने के कारण श्मशान के एक मंदिर के एकान्त में भी साधना करनी पड़ी किन्तु मेरी दादी व माँ का मेरे ऊपर विशेष स्नेह-आशीर्वाद रहा। माँ व दादी सदैव मेरे को संगीत-अभ्यास के लिए प्रोत्साहित करती थीं। मेरी माँ की संगीत में गहरी रूचि थी। माँ व दादी के आशीर्वाद-प्रोत्साहन ने भी निरंतर तालीम एवं अभ्यास के प्रति उत्साह व ऊर्जा प्रदान की।

- **संगीत की तालीम के दौरान कौन-कौन से गुरु रहे, जिनसे आपकी तालीम हुयी, एवं उनसे जुड़ी कुछ स्मृतियाँ हमें बताएं।**

– ग्वालियर में माधव संगीत महाविद्यालय में मैंने पं.भातखण्डे जी के सुयोग्य शिष्य पं.राजा भैया 'पूछवाले', पं. एस.एन. रातंजनकर, पं. अग्निहोत्री, पं.एन.एल. गुणे एवं पं.पंचाक्षरी साहेब आदि गुणीजनों से भी संगीत की तालीम प्राप्त की। ग्वालियर घराने की गायकी अष्टांग गायकी होने के कारण मेरे इन गुरुओं ने मुझे ध्रुवपद एवं ख़्याल के साथ संगीत की अन्य शैलियों की भी तालीम प्रदान की। सन् 1955-56 में भारत सरकार की 'साइंटिफिक रिसर्च स्कॉलरशिप' के तहत श्री राम भारतीय कला केन्द्र, नई दिल्ली में अखिल भारतीय स्तर पर मेरा चयन बड़े डागर बंधु उस्ताद नसीर

मोईनुद्दीन व उस्ताद नसीर अमीनुद्दीन खाँ डागर से ध्रुवपद की गहन तालीम के लिए 2 वर्षों के लिए हुआ। हालांकि मुझे परिवार की अपनी संगीत-विरासत पुष्टिमार्गीय संगीत-गायन-परम्परा के अन्तर्गत पद-गायन, जो कि ध्रुवपद-गायन का ही मूल स्वरूप है, प्राप्त हुआ, जिसे पुष्टिमार्गीय परम्परा के अतिरिक्त अन्य डागर आदि घरानें के कलाकार भी अपनी परम्परा में पुष्टिमार्गीय परम्परा के अष्ट छाप, रसखान एवं तानसेन आदि के पदों का गायन भी करते हैं अतएव अपनी पारिवारिक संगीत-परम्परा का गायन तो मैं पहले से ही करता था किन्तु अपनी अकादमिक शिक्षा व भविष्य में अपनी नौकरी में पदोन्नति की दृष्टि से मैंने भारत सरकार की इस छात्रवृत्ति के तहत ध्रुवपद की गहन तालीम प्राप्त की। इसके पश्चात् मैंने उ. हाफिज़ अली खां से रूद्रवीणा की गंडाबंध तालीम भी प्राप्त की, साथ ही पं. पुरूषोत्तम दास जी महाराज से पखावज़ की घरानेदार शिक्षा भी प्राप्त की। दिल्ली में बड़े डागर बंधु, पं. पुरूषोत्तम दास जी एवं मैं एक साथ ही एक बहुमंजिले मकान में रहते थे, जहां मुझे अपने सभी गुरुजनों का खूब स्नेह एवं आशीर्वाद मिला।

- **ध्रुवपद से क्या तात्पर्य है एवं इसकी किस तरह की प्रकृति है?**

– ध्रुवपद का मूल उद्देश्य आध्यात्मिक व भक्ति प्रधान ही है। ध्रुवपद में 'पद' का तात्पर्य भक्ति से ही है, इस संदर्भ में पद का तात्पर्य कविता अथवा गीत नहीं हो सकता। ध्रुवपद-गायन की मूल आत्मा इसकी आध्यात्मिकता एवं भक्ति में ही निहित है। तानसेन व अन्य रचनाकारों द्वारा बादशाह व राजा-महाराजाओं की प्रशंसा में रचे व गाए गए ध्रुवपद मेरी दृष्टि में ध्रुवपद-गायन की मूल आत्मा से हटकर हैं। मेरा मानना है कि तत्कालीन परिस्थितियोंवश इस तरह की ध्रुवपद-रचनाओं को रचा गया होगा किन्तु इसे ध्रुवपद का मूल स्वरूप व उद्देश्य नहीं कहा जा सकता। नादबह्म की इसी उपासना की उत्प्रेरणा से ही मैंने भक्त कवियों मीरा, रसखान, तुलसी, सूरदास, नानक, बुल्लेशाह एवं कबीर यहां तक कि रवीन्दनाथ टैगोर की बंगला रचनाओं को भी संगीतबद्ध किया एवं गाया। भक्त कवियों में कबीर की रचनाओं ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया क्योंकि कबीर की रचनाओं में जीवन के वास्तविक दर्शन को अनुभूत करते हैं। जब मैं बरेली में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने गया तो वहाँ रात भर सूरदास की रचना ''मेरो गोपाल तनक सो कहा करि जाने दधि की चोरी'' श्रोताओं ने सुना। पद्मभूषण पं. गोकुलोत्सव महाराज जी ने भी इसी भजन का रिकॉर्ड मेरी पुत्री मधु से विशेष आग्रह कर मंगवाया। उन्होंने कहा था कि आप यह भजन बहुत ही भाव-विभोर होकर गाते हैं। इस प्रकार सूरदास एवं कबीर मेरे विशेष प्रिय भक्त कवियों में से हैं।

- **पंडित जी आपका कार्यक्रम-प्रस्तुतिकरण का काफी लम्बा अनुभव रहा है। ऐसे कुछ संस्मरण जो आपकी स्मृति में आज भी विद्यमान हैं, कृपया बताइये।**

– कार्यक्रम-प्रस्तुतीकरण का लम्बा सिलसिला रहा मगर कुछ कार्यक्रम ऐसे रहे, जिनकी स्मृतियाँ आज भी ताज़ा हैं। ग्वालियर में एक ध्रुवपद-समारोह हुआ, जिसके संयोजक तत्कालीन विदेश मंत्री एवं हमारे पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा थे। उस कार्यक्रम में मैंने आयोजकों द्वारा अपने लिये निर्धारित किये गये समय के अनुसार अपने गायन की प्रस्तुति को समय पर ही समाप्त कर दिया तो उसी समय श्रोताओं में उपस्थित डॉ.शंकर दयाल शर्मा ने कहा कि आपका गायन अभी और सुनना है तो उनके आग्रह पर मैंने उनको अपना और गायन सुनाया। बाद में एक बार डॉ.शंकर दयाल शर्मा जयपुर-यात्रा पर आये तो उन्होंने विशेष रूप से मुझे मिलने के लिये राजभवन बुलाया, ये डॉ.शंकर दयाल शर्मा जी का मेरे प्रति विशेष स्नेह व सम्मान था। ऐसा ही एक कार्यक्रम सुप्रसिद्ध संगीत-इतिहासकार एवं शास्त्रकार श्री शरद चंद्र परांजपे के गाँव में हुआ,उन्होंने रात भर मेरा गायन सुना। कार्यक्रम-समाप्ति पर उन्होंने मेरे से विशेष आग्रह किया कि आपके गायन से अभी तृप्ति नहीं हुयी है अतएव आज दूसरे दिन के कार्यक्रम में भी आप रूकिये एवं आपको आज और सुनना है किन्तु मैंने कहा कि मुझे आज वनस्थली विद्यापीठ नौकरीवश जाना ही पड़ेगा एवं मेरा आगे का अवकाश स्वीकृत नहीं है। इस पर परांजपे जी ने कहा कि आपको आज के कार्यक्रम का भी पहले दिन के बराबर ही मानदेय भेंट करेंगे, ये हम सभी का आपसे विशेष अनुरोध है। परांजपे जी के विशेष आग्रह पर मैं कार्यक्रम में रुका एवं अपना गायन प्रस्तुत किया। द्वितीय दिन के कार्यक्रम की समाप्ति पर विशिष्ट रूप से उन्होंने उल्लेख किया कि मुझे आपका रात को गाना तसल्ली से सुनना था इसलिए मैं अपनी पत्नी-बच्चों को बाहर ताला लगा कर आया हूँ ताकि यदि कार्यक्रम देर तक चला तो बाहर का गेट खोलने की चिन्ता में उनकी नींद में बाधा उत्पन्न ना हो सके। एक और कार्यक्रम का संस्मरण मेरे को हो रहा कि एक बार वृंदावन में 'जयसिंह घेरा' स्थान पर आचार्य पुरूषोत्तम गोस्वामी एवं आचार्य श्रीवत्स गोस्वामी के सानिध्य में एक ध्रुवपद समारोह का आयोजन हुआ। इस समारोह में लगभग सभी नामचीन ध्रुवपदियों को आमंत्रित किया गया। समारोह में ख़्याल-गायन के एक ख्यातनाम कलाकार, जो ध्रुवपद अंग से ही पुष्टिमार्गीय पदों का

गायन करते थे, उनका ध्रुवपद-गायन से प्रारंभ हुआ। संगीत में एक प्रचलित किंवदंती है कि ''राग, रसोई, पागडी कभी-कभी ही जमती है ''जो इस कार्यक्रम में भी चरितार्थ हुई कि कार्यक्रम के प्रति श्रोताओं का ज़्यादा रूझान नहीं हो पाया एवं धीरे-धीरे सभागार से श्रोता उठकर चले गए। ऐसे में प्रस्तुति देने वाले आगे के बाकी कलाकार श्रोताओं के अभाव में अपनी प्रस्तुति को टालने लगे किन्तु मैं इसके लिए तुरन्त तैयार इसलिए हुआ कि मैं तो कृष्ण नगरी वृन्दावन में अपना गायन ठाकुर जी को सुनाने गया था। कुछ भक्ति में ऐसी शक्ति हुई कि जैसे ही मैंने अपने आराध्य का ध्यान कर राग भैरवी में आलाप शुरू किये तो ठाकुर जी कृपा एवं राग के प्रभाव से सारा सभागार श्रोताओं से खचाखच भर गया। उस कार्यक्रम में पखावज पर बनारस के पं. श्रीकांत मिश्रा की संगत थी। इस कार्यक्रम की रिकॉर्डिंग मेरे पास उपलब्ध है। वृंदावन में ही आयोजित एक और कार्यक्रम का यहाँ मैं उल्लेख करना चाहूंगा कि एक बार मैं अपने परिवार के साथ एक संगीत-कार्यक्रम में वृंदावन गया किन्तु वहाँ पहुँचने पर वो कार्यक्रम ही किसी कारणवश निरस्त हो गया। ऐसे में मथुरा के सुप्रसिद्ध पखावज-वादक एवं मन्दिर के आचार्य गो. ब्रजरमण लाल जी महाराज ने मेरे से आग्रह किया कि आप तो यहाँ मन्दिर में पधारिये और ठाकुर जी की सेवा में ही अपने गायन की हाज़िरी लगाइये। मन्दिर में पहुँच कर आचार्य जी द्वारा राग मियां मल्हार सुनाने के अनुरोध पर मैंने अपनी पुत्री ध्रुवपद-गायिका डॉ. मधु भट्ट के साथ ठाकुर जी के दरबार में राग मियाँ मल्हार में आलाप शुरू किए। जब कार्यक्रम शुरू हुआ तो मौसम बिल्कुल साफ था एवं वर्षा ऋतु भी नहीं थी किन्तु जब मियाँ मल्हार के आलाप शुरू किये तो देखते-देखते ही आसमान में घनघोर बादल छा गए और इतनी ज़ोरदार बारिश शुरु हो गयी कि पूरे वृन्दावन की सड़के पानी में डूब गयीं। उस कार्यक्रम में पखावज पर आचार्य गो. ब्रजरमण लालजी ही स्वयं संगत कर रहे थे। प्रस्तुति के बाद ब्रजरमण लालजी ने कहा कि यह ठाकुर जी कृपा का ही प्रसाद है कि ऐसी बारिश मथुरा में आज तक नहीं हुई। मेरा भी यही मानना है कि पहले ज़माने में संगीत के प्रभाव से जो चमत्कार होते थे -जैसे बारिश होना एवं हिरण आ जाना इत्यादि मात्र किंवदंतियां ही नहीं हैं अपितु यह नादब्रह्म की विशुद्ध एवं आत्मिक साधना से अभी भी संभव है।

- **पंडित जी आप वर्तमान में भारतीय शास्त्रीय संगीत की पुरातन ध्रुवपद गायकी के वरिष्ठतम कलाकार हैं। आपको संगीत के क्षेत्र में अनेकानेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है किन्तु अभी तक आपको केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी एवं पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित नहीं किया गया जबकि आपसे छोटे कई कनिष्ठ कलाकारों को यह पुरस्कार दिया जा चुका है, आपका इस बारे में क्या कहना है ?**

– इस विषय में मेरा यही कहना है कि मैं ज़िन्दगी भर नादब्रह्म की साधना में ही लीन रहा हूँ। उसी साधना का सुफल रहा कि भारत के लगभग सभी प्रतिष्ठित संगीत-समारोहों में मेरी प्रस्तुतियाँ होती रहीं और काफी इज्ज़त भी मिली। समाज के अलग-अलग क्षेत्र की विभिन्न प्रतिष्ठित हस्तियों से भी मेरे प्रगाढ़ घनिष्ठ सम्बन्ध रहे किन्तु मैंने सदैव ईश्वर व संगीत-साधना में ही भरोसा रखा, किसी के आगे कभी हाथ नहीं फैलाया। संगीत के कई बड़े प्रतिष्ठित पुरस्कार मुझे प्राप्त हुए, वो सभी ईश्वर की कृपा व साधना से स्वयं ही मिले हैं। इन प्रतिष्ठित सम्मानों में उल्लेखनीय है जयपुर महाराजा, उदयपुर महाराजा एवं बनारस महाराजा द्वारा मुझे सम्मानित किया गया। राजस्थान संगीत नाटक अकादमी अवार्ड से सम्मानित किया गया। अन्य स्वातितिरून्नाल, तुलसी अवार्ड, डागर घराना अवार्ड, श्रेष्ठकला आचार्य एवं 'संगीत वारिधि' इत्यादि प्रमुख हैं। पद्म भूषण पं. गोकुलोत्सव महाराज जी द्वारा भी मुझे दिल्ली में सम्मानित किया गया। बनारस महाराजा द्वारा मुझे दो वर्ष पूर्व ही अंतर्राष्ट्रीय ध्रुवपद मेला में मेरे योगदान हेतु प्रथम 'लाईफटाईम अचीवमेंट अवार्ड' से सम्मानित किया गया। इस तरह से मुझे अनेकानेक राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित किया गया। पद एवं प्रतिष्ठा के लिए मैंने कभी भी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया और शायद यही कारण रहा कि मुझे उक्त पुरस्कार नहीं मिल पाए परन्तु इस चीज़ का मुझे कोई भी मलाल नहीं है। इस सन्दर्भ में मुझे एक प्रसंग याद आता है कि अकबर का राज था और यह प्रचलित था कि अकबर के दरबार में उनसे कोई भी जो भी मांगने जाता है उसे वो अवश्य मिलता है तो वहाँ पर कुछ ज़रूरतमंद लोग अपनी मांग लेकर बादशाह के दरबार में जाते हैं तो वहाँ देखते हैं कि बादशाह ही नमाज़ के दौरान ऊपर हाथ उठाकर के कुछ मांग रहा है, तो वो लोग कहते हैं कि बादशाह ही ईश्वर से मांग रहा है अतएव हमें भी सीधे प्रभु से ही मांगना चाहिये। उसी प्रकार मुझे भी अपने आराध्य व संगीत-साधना पर पूरा भरोसा है बाक़ी मेरी किसी से भी कोई अपेक्षाएं नहीं हैं एवं न ही मैं कभी पुरस्कारों की दौड़ में रहा-''आवत जात पनैया टूटी, बिसर गयो हरिनाम''। सन् 2015 में मेरे व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर राजस्थान विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में पीएच.डी. (डॉक्टरेट) भी की जा चुकी है।

- **पंडित जी आपकी संगीत-साधना में सबसे अधिक**

**किसका योगदान रहा ?**

– निश्चित तौर पर ही मेरी जीवन भर की संगीत–साधना में मेरी जीवनसंगिनी श्रीमती विमला भट्ट तैलंग का विशेष एवं महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मैं सदैव अपनी संगीत–साधना व संगीत–कार्यक्रमों के लिए यात्रा में व्यस्त रहता था तो ऐसे में मेरी सारी घरेलू ज़रूरतों का वे सदैव ज़िम्मेदारी से ध्यान रखती थीं। मैं कई बार रात–रात भर रियाज़ करता एवं नित सुबह 4 बजे उठकर रियाज़ करता एवं अपने सभी बच्चों–शिष्यों को ब्रह्ममुहूर्त में ही उठाकर संगीत सिखाता तो चाय व अन्य ज़रूरतों इत्यादि का सजगता से ध्यान रखतीं। पारिवारिक ज़िम्मेदारियों का निर्वहन भी उन्होंने बहुत समर्पण भाव से पूरा किया। वो एक तपस्वी थीं। उन्होंने मेरे माता–पिता की बहुत सेवा की। घर आने वाले मेहमानों एवं कलाकारों का उन्होंने सदैव आदर–सत्कार किया। 13 सितम्बर 2017 को वो प्रभु–शरणागत हो गईं। उनके जाने के बाद उनकी कमी सदैव मुझे इसी प्रकार महसूस होती है जैसे दीपक की पूरी रोशनी के लिए तेल होना ज़रूरी है वैसे ही उनकी कमी से आज मेरे दीपक रूपी जीवन में आधी रोशनी महसूस होती है। फिर भी वो मेरे साथ मेरे बच्चों के रूप में मौजूद हैं।

- **आपके सभी बच्चे संगीत से जुड़े हैं, उनके बारे में बताएं। इस विषय में आपको कैसा लगता है ?**

– मेरे सभी पुत्र–पुत्रियां संगीत के गायन–वादन की लगभग सभी विधाओं ध्रुवपद, ख़्याल, सितार एवं वॉयलिन आदि से जुड़े हुए हैं। सभी जाने–पहचाने कलाकार हैं और शिक्षण से भी जुड़े हुए हैं। इनमें शोभा एवं ऊषा गायन; डॉ. निशाभट्ट तैलंग प्रिंसिपल कॉलेज शिक्षा, ख्याल–गायन; प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग ध्रुवपद–गायन एवं विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहीं, साथ ही पूनम भी गायन एवं प्रो.आरती भट्ट तैलंग ख्याल–गायन एवं विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। मेरा सुपुत्र रविशंकर भट्ट तैलंग गायन–वादन दोनों विधाओं के सुविज्ञ कलाकार होने के साथ–साथ पंचतंत्री बेला का सुप्रसिद्ध कलाकार है एवं जयपुर में सुबोध शिक्षण संस्थान में संगीत–शिक्षण का कार्य कर रहे हैं। मेरा यह मानना है कि कलाकार के कार्यक्रम एक निश्चित उम्र तक ही होते हैं किन्तु संगीत–साधना एवं शिक्षण का कार्य तो जीवन भर ही करना होता है। कलाकार के जीवन का यही सत्य है कि वो एक निश्चित उम्र के बाद जब मंच पर नहीं होता तो अपनी आने वाले पीढ़ी में संगीत–संस्कार देकर उनको तैयार करता है। मेरे पौत्र चि. मुदित एवं पौत्री मुदिता भी संगीत में वॉयलिन वादन एवं शास्त्रीय गायन की विधिवत् तालीम ले रहे हैं। मेरे परिवार के सभी बच्चे संस्कारित हैं एवं मेरी परम्परा का अनुसरण कर रहे हैं साथ ही सम्मान एवं सेवा भी कर रहे हैं, यह मेरे लिए बड़े संतोष का विषय है।

- **पंडित जी आपके बहुत सारे शिष्यों ने संगीत की शिक्षा ग्रहण की और आज वो देश–विदेश में प्रतिष्ठित पदों पर संगीत की सेवा कर रहे हैं, उनके बारे में बताएं।**

– संगीत–शिक्षण का मेरा लगभग 7 दशकों का दीर्घ अनुभव रहा है। इस दौरान बहुत सारे शिष्यों को मैंने घरानेदार व अकादमिक स्तर पर संगीत की विधिवत् तालीम दी है जो देश–विदेश में संगीत के प्रतिष्ठित पदों पर आसीन हैं और संगीत की सेवा कर रहे हैं। संगीत–शिक्षण में शिष्यों के प्रति मेरा सदैव पुत्रवत् भाव रहा है। मैंने सदैव नि:स्वार्थ भाव से ही संगीत–शिक्षण किया। मेरे शिष्यों में रविन्द्र देव तैलंग ने सितार की, जो आकाशवाणी केन्द्र, रोहतक में कार्यरत रहे। डॉ. वियजेन्द्र गौतम, ने ख़्याल–गायन जो कोटा विश्वविद्यालय से संबद्ध बूंदी राजकीय महाविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर पद पर संगीत सेवाएं दे रहे हैं। दिल्ली की श्रीमती संतोष माथुर आकाशवाणी की ए ग्रेड ख्याल गायन की कलाकार रही हैं। मेरे सुयोग्य शिष्य डॉ. श्याम सुन्दर शर्मा, जो ध्रुवपद–गायक एवं जयपुर के एक प्रतिष्ठित महाविद्यालय में सहायक प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं। इस तरह लगभग देश और विदेश में भी जर्मनी, फ्रांस, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, यू.एस.ए. में भी में 500 से भी ज़्यादा शिष्य मैंने तैयार किए हैं। आजकल सोशियल मीडिया, फेसबुक, इंस्टाग्राम एवं व्हाट्सअप आदि के माध्यम से बहुत सारे शिष्य जो सम्पर्क में नहीं थे वो भी अब बताते हैं कि आपके आशीर्वाद से आज हम आज उच्च पदों पर संगीत की सेवा कर पा रहे हैं, यह भी मेरे लिए बहुत ही आत्म संतोष का विषय है।

- **आप स्वयं बहुत अच्छे शिक्षक व कलाकार दोनों ही रहे हैं। आप एक अच्छा शिक्षक एवं एक अच्छा कलाकार किसे मानते हैं ?**

– मेरा इस विषय में यह मानना है कि एक अच्छा कलाकार व अच्छा शिक्षक होने से पूर्व उसका चरित्रवान होना बहुत आवश्यक है क्योंकि कलाकार की नैतिकता एवं व्यक्तित्व के गुणों का प्रभाव उसकी कला में भी प्रतिबिम्बित होता है। एक चरित्रवान कलाकार एवं शिक्षक ही अपनी आगामी पीढ़ी को अच्छे कला–संस्कार दे सकता है। साथ ही एक महत्वपूर्ण बात मैं यहाँ जोड़ना चाहूँगा कि गुरु नि:स्वार्थ भाव से शिक्षा दे एवं शिष्य नि:स्वार्थ भाव से शिक्षा ग्रहण करें क्योंकि जहाँ पर पैसा या कोई भी स्वार्थ इत्यादि जुड़ जाता है वहाँ वो भाव ही पैदा नहीं हो सकता। मेरा शिष्यों के प्रति नि:स्वार्थ

भाव रहा। एक अच्छा गुरु अपने शिष्यों का सदैव विकास चाहता है। एक अच्छा शिष्य वो है जो अपने गुरु के प्रति श्रद्धा भाव रखे, संयम रखे, विश्वास एवं समर्पण रखे। दोनों के आपसी समन्वय से ही कला का विकास संभव है यहां तक कि आज के दौर में अधिक धन कमाने एवं यश-लोलुपता के चक्कर में शिष्य अपने गुरु ही बदलते रहते हैं, सही मायने में इस भटकाव से उसका सही विकास ही अवरूद्ध हो जाता है इसलिए संगीत में श्रद्धा, समर्पण, एवं आशीर्वाद का किसी भी शिष्य की सफलता में बड़ा महत्व है। एक गुणी कलाकार एवं शिक्षक का चरित्रवान होना सोने पे सुहागा है जो समाज के समक्ष वह आदर्श प्रस्तुत कर पाता है, जिसका आने वाली पीढ़ी अनुसरण करती है।

- **आपने बहुत सारे वाद्य बजाए हैं व बहुत सी शास्त्रीय व सुगम संगीत की रचनाओं को सृजित किया, इसके बारे में कुछ बताएं।**

– मेरा वाद्य संगीत में भी गहरा लगाव रहा है। मैंने बहुत सारे वाद्ययंत्रों के वादन की साधना की। मैं बांसुरी, रूद्रवीणा, वॉयलिन, सरोद, पखावज, सितार, चेलो, तबला इत्यादि वाद्य का बखूबी वादन करता था। मैंने इन वाद्य यंत्रों के वादन की सफल मंचीय प्रस्तुतियाँ भी दी हैं। वनस्थली विद्यापीठ में संगीत-शिक्षण के दौरान वाद्यवृंद एवं वृंद गायन के अनेक कार्यक्रम तैयार करवा कर मैंने विद्यार्थियों से प्रस्तुत भी करवाए, जिन्हें राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित संगीत-प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत भी किया गया। जयपुर राजघराने के सवाई मानसिंह संगीत विद्यालय में प्राचार्य हेती सिंह जी के संयोजन में आयोजित ग्रीष्म कालीन शिविर में भी महारानी गायत्री देवी के समक्ष मैं सितार-वॉयलिन एवं तबला आदि वाद्ययंत्रों का वादन किया करता था। एक संगीत-रचनाकार के रूप में भी मैं सदैव सक्रिय रहा हूँ। मेरी संगीत की रचनाओं की रचनाधर्मिता अनवरत बनी रही। 'रसमंजरी शतक', 'संगीत रस मंजरी' व 'पंचाशिका संगीत विमल मंजरी' इन तीन संगीत-ग्रंथों का मैंने सृजन किया है, जिनका प्रतिष्ठित प्रकाशकों द्वारा प्रकाशन भी हो चुका है। इसके अनतर्गत लगभग 500 रचनाओं का मैंने सृजन किया है, जो गायन की विविध विधाओं ध्रुवपद, धमार, ख़्याल, तराना, त्रिवट, चतुरंग, पंचरंग, गीत, भजन, रागमाला एवं थाटमाला इत्यादि रूपों में सृजित हैं। इन रचनाओं का मंचीय प्रस्तुतीकरण भी हो रहा है। विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर संगीत-शिक्षण एवं पाठ्यक्रम में भी इन रचनाओं को सिखाया जा रहा है। मैंने ध्रुवपद में अप्रयुक्त प्रचलित आधुनिक रागों व ध्रुवपद में अप्रयुक्त इतर रचनाकारों की रचनाओं को भी ध्रुवपद में ढाला। कुछ अपने ढंग की नई रागों को भी सृजित किया, जैसे जोगेश्वरी, जोगश्री, हरिकौंस, जौन तोड़ी, मेवाड़ा दरबारी, केदार कल्याणम् औडुव-कल्याणम् एवं धन्य भीम माधव आदि रागों में बंदिशों की रचनाएँ कीं। 50 के दशक में मध्य प्रदेश के एक कार्यक्रम में भाग लेने मुम्बई के एक कार्यक्रम में भाग लेने के बाद जा रहा था तो बम्बई से जोगेश्वर होता हुआ गुजर रहा था तो एक स्केल धुन के रुप में ज़ुबान पर चढ़ गया, जिसमें वर्तमान सुनी जाने वाली राग जोगकौंस में दोनों निषाद के स्थान पर सिर्फ एक कोमलनी का ही प्रयोग था। मैंने उस कार्यक्रम में भाग लेने आये पं.निखिल बैनर्जी को भी इस स्केल को सुनाया तो वह उन्हें इतना पसन्द आया कि उन्होंने, उसे उस कार्यक्रम में बजा डाला। मैंने इस राग को 'जोगेश्वरी' नाम रखते हुये कई कार्यक्रमों में गाया एवं मेरी पुत्री डॉ.मधु भट्ट ने भी इसे कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगीत-समारोह में भी गाया, जिनकी रिकार्डिंग भी मौजूद हैं, इसे बाद में रेडियोगन्धर्व एवं अन्य कम्पनियों द्वारा मेरी रिलीज सी.डी. में भी सुना जा सकता है।

मैंने ध्रुवपद के विषयेतर कई देशभक्ति एवं अधुना लोकप्रिय एवं समसामयिक रचनाएं जैसे 'सारे जहां से अच्छा', वन्दे मातरम् बापू की रामधुन 'रघपुतिराघव' आदि को भी ध्रुवपद में ढालने का नवाचार किया, ये रचनाएं मेरे द्वारा वर्तमान में भारत की आज़ादी के मनाये जा रहे 'अमृत महोत्सव' के अवसर पर राष्ट्र को समर्पित हैं। मेरा मानना है कि ध्रुवपद को भक्ति की किसी भावना विशेष तक सीमित नहीं किया जा सकता अपितु उसका प्रारूप विकसित भी हो सकता है जैसे माता-पिता भक्ति एवं राष्ट्र भक्ति आदि-आदि।

सन् 1956-57 के दशक में शम्भु महाराज एवं बिरजू महाराज जी द्वारा निर्देशित कई पपेट शो एवं बैलों में भी श्रीराम भारतीय कला केन्द्र, दिल्ली में मैंने पार्श्व स्वर दिया एवं अनेक वाद्यों पर भी संगत दी।

- **पंडित जी आप वर्तमान में 93 वर्ष की आयु में भी चुस्त-दुरूस्त दिखाई पड़ते हैं। इस समय आपकी दिनचर्या क्या रहती है?**

– मेरी दिनचर्या पूर्व की भाँति लगभग अभी भी उसी क्रम में रहती है। मैं समय का बहुत ही पाबंद हूँ। सुबह ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर अपने नित्य कर्म से निवृत्त होकर अपने को चुस्त, सक्रिय एवं ऊर्जावान रखने के लिए व्यायाम करता हूँ। इसके पश्चात् सुबह से ही अपने बच्चों व शिष्यों के साथ संगीत की चर्चा करता रहता हूँ। इसके माध्यम से संगीत के अनुभव एवं ज्ञान को बाँटने का कार्य करता हूँ। अपनी संगीत-रचनाओं को शिष्यों-प्रशिष्यों को सिखाने

का भी कार्य करता रहता हूँ। मैं स्वाध्याय का क्रम भी निरंतर जारी रखता हूँ। अपनी पुस्तकों के संग्रह में से एवं अन्य समसामयिक नई एवं पुरानी पुस्तकों को भी पढ़ता रहता हूँ। मैं सदैव से देश की समसामयिक घटनाओं के प्रति जागरूक रहा हूँ तो मैं आज भी दूरदर्शन के समाचार सुनने के माध्यम से अपने को देश के घटनाक्रम से जोड़े रखता हूँ। मेरा परिवार एवं मैं शाखा (आर.एस.एस.) में सक्रिय रहा है, जिसके कारण अंग्रेजों के ज़माने में मुझे जेल भी जाना पड़ा। स्वतंत्रता-आंदोलन में भी सक्रिय रहा। संसाधनों के अभाव होते हुये भी मैंने संस्कृत आदि अध्ययन को भी जारी रखा क्यों कि मेरा मानना है कि भारतीय संस्कृति को जानने के लिये संस्कृत भाषा का अध्ययन ज़रूरी है। घर में घड़ी नहीं थी एवं गुरुजी घर से बहुत दूर रहते थे एवं मुझे संस्कृत पढ़ने के लिए घर से अलसुबह पैदल ही जाना पड़ता था। अंग्रेजों के ज़माने में घड़ी के अभाव में मुझे समय का अंदाज़ नहीं रहा एवं मैं रात को 3 बजे ही गुरूजी के घर चल पड़ा एवं सड़क पर घण्टाघर में समय देख रहा था तो पुलिस ने इतनी रात को सड़क पर मुझे चोर समझ कर जेल में बंद कर दिया, मैंने उन्हें अपने पढ़ने का हवाला भी दिया किन्तु उन्होंने विश्वास नहीं किया। मैं रोज़ की भांति सुबह जेल में ही संगीत-साधना करने लगा तब उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ आदि अनेक रोचक संस्मरण हैं किन्तु मेरा विश्वास है कि यह नई पीढ़ी के लिये कुछ प्रेरणादायी हो सकते हैं।

- **आप हमारे लिए और आगे की पीढ़ी के लिए क्या कोई संदेश देना चाहेंगे ?**

– आने वाली पीढ़ी से सिर्फ़ मैं एक ही बात कहूंगा कि अपने समय का ज्यादा से ज़्यादा सदुपयोग करें। परिश्रमी बनें, अपनी धरती (मातृभूमि) से जुड़े रहें। सच्चाई एवं ईमानदारी अपनायें, अपने माता-पिता व गुरु का सम्मान करें। संयम, धैर्य, लगन व समर्पण के साथ नि:स्वार्थ साधना करें। सबसे ऊपर मैं एक बात युवाओं एवं बच्चों से फिर कहना चाहूंगा कि आप अपना चरित्र अच्छा रखें, संस्कारवान बनें, जिससे हम घर-परिवार, समाज व राष्ट्र के लिए योगदान कर सकेंगे। अच्छे नागरिक बन कर राष्ट्र, समाज व आगामी पीढ़ियों के लिए आदर्श व अनुकरणीय बनें, यही भारत की सच्ची राष्ट्र-भक्ति व देश-सेवा होगी।

साक्षात्कार कर्ता: –
वरिष्ठ ध्रुवपद- गायक विभागाध्यक्ष संगीत विभाग,
सैंट विल्फ्रेड कॉलेज, जयपुर हैं।

■

आलेख

# भारतीय ध्रुवपद गायकी में नादब्रह्म की अवतारणा: एक विश्लेषण

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग

**नादरूपो स्मृतो ब्रह्मा, नादरूपो जनार्दनः**
**नाद रूपा पराशक्तिः, नाद रूपो महेश्वरः।**

**मतंग ''बृहद्देशी''**

भारतीय संगीत और आध्यात्म एक दूसरे के पर्याय हैं। अधि+आत्म दो शब्दों की संधि से बने इस 'आध्यात्म' शब्द की व्याख्या है – आत्मा के समीप बैठना, अर्थात् परमात्मांश आत्मायुक्त मानव अपने एवं स्वस्थित सत्वगुण को पहचाने और साधनारत होकर नादोपासना द्वारा जीवन के चारों पुरूषार्थों की श्रेष्ठ क्रमिक साधना से मोक्ष रूप परमात्मा तक पहुंचे। संगीत की उत्तम साधना मानवीय गुणों के विकास द्वारा उसे ईश्वरीय विशेषणों से शोभायमान करती है।

भारतीय संगीत की उत्पत्ति से लेकर इसकी प्रस्तुति के विस्तृत आयामों अथवा प्रमुख अवयवों में स्वर, शब्द, व्यंजन, राग-रागिनियां, जाति, छन्द, ताल, बन्दिशों एवं उनकी विविध संरचनाओं से निर्मित गायन, वादन और नृत्य की विविध संरचनाएँ, सौन्दर्य एवं रसनिरुपण एवं उसके उद्देश्य के पीछे सिर्फ़ और सिर्फ़ आध्यात्मिक अवधारणा का ही वर्चस्व दिखाई देता है और उसके बिना वह अधूरा एवं अकल्पनीय भी लगता है इसीलिए ही 'रसो वै सः', शब्दब्रह्म एवं नादब्रह्म के प्रति हमारी धारणएं एवं आस्थाएं हमारे जीवन एवं सांगीतिक संस्कारों में रक्त की भांति घुल-मिल गयी हैं। प्रत्येक सीखने और सिखाने वाला साधक अपनी साधना की यात्रा इसी श्रद्धा भाव से प्रारम्भ कर उसी पर ही समर्पित हो जाता है। ''गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः''एवं एक बंदिश के शब्द ''सुर साध ले मन, गुरु पद सेवे तब ज्ञान आवे,'' यानि गुरु को परब्रह्म का स्वरुप मानते हुए संगीत-साधना की सम्पूर्ण यात्रा ही उसके बिना असम्भव है। संगीत के जन्म के पीछे विश्व के किसी भी संगीत के इतिहास में यह आध्यात्मिक संबद्धता भारतीय संगीत जितने बड़े अनुपात में कहीं भी प्राप्त नहीं होती, चाहे उसके पीछे कितने भी मत-मतान्तर हों किन्तु फिर भी अधिकांश साधक उसे ब्रह्म एवं सरस्वती युगल का ही वरदान मानते हैं।

उदाहरणस्वरूप बेतिया-नरेश स्वयं ध्रुवपद-गायक श्री आनन्द किशोर अपनी राग कौशिकी कान्हड़ा की ध्रुवपद-रचना में लिखते हैं –

**विधुवदनी हंसवाहिनी वदति वाकवाणी**
**जगत व्यापिनी ब्रह्माणी सरस्वती सारदावाणी,**
**ब्रह्मवादिनी ब्राह्मी बेधसी सृष्टि,**
**भारतीय ब्रह्म प्रिया कमलासिनी,**
**ब्रह्मशक्ति ब्रह्ममयी विधाताजाया**
**विद्याधरी बुद्धिप्रकासिनी,**
**आनन्दकिशोर की स्वामिनी तू ही,**
**वीणापुस्तक धारिणी।**

भारतीय संगीत के साधक पुरातन काल से ही राग-गायन द्वारा विविध देवी-देवताओं की सिद्धि करते आये हैं। हमारे यहाँ आदि राग भैरव यानि शंकर के मुख से निःसृत मानी जाती है। हमारे यहाँ पहले प्रचलित राग-रागिनी के विभिन्न मतों के अन्तर्गत ही 'शिवमत' एवं 'हनुमतमत' आदि भी ईश्वरसंबद्ध हैं। अन्य विविध रागों के नाम यथा श्री, सरस्वती, शंकरा, कलावती, दुर्गा एवं भैरवी आदि भी देवी-देवताओं के नाम पर रखे गये हैं। ब्रह्म, रुद्र, लक्ष्मी एवं गणेश आदि तालों का प्रयोग भी ध्रुवपद में प्रारम्भ से चला आ रहा है। यहाँ तक 'मनुस्मृति' में तो समस्त प्रकृति, जो हमारे संगीत की प्राण है, उसको भी ब्रह्माधारित बताया गया है। 'नारदीय शिक्षा' में तो स्वरों की उत्पत्ति एवं रंग के अलावा स्वरों के देवता भी बताये गये हैं। षडज का अग्नि, रिषभ का ब्रह्मा, गंधार का सरस्वती, मध्यम का महादेव, पंचम का लक्ष्मी, धैवत का गणेश एवं निषाद को सूर्य देवता का परिचायक माना है।

हमारे यहां आदिनाद को 'ब्रह्मनाद' के रूप में मानने की पुरातन काल से अवधारणा रही है। राग शंकरा के प्रचलित ध्रुवपद में भी स्वर की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा होने का बखान किया गया है –

**आदि नाद ब्रह्म नाद,**
**सुर को ही उदय होत,**
**वे ही विस्तार जानें,**
**सब गुनियन जाने।**
**विद्या है ब्रह्मबीज**
**और सब ही अविद्या**
**इस कारण ब्रह्मरंध्र,**
**सुरभिनावे।।**

नाद और योग का संबंध भारतीय संगीत-साधना का मूलाधार रहा है। शरीर में मूल रूप से व्याप्त 114 चक्रों में से प्रमुख 7 चक्र, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत्, विशुद्ध, आज्ञा एवं सहस्रार, जो कि नाड़ियों के संगम का आधार होते हैं। **आदि शंकराचार्य** ने '**सौन्दर्यलहरी**' में कहा –

**महीं मूलाधार कमपि मणिपूरेहुतवहं**
**स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि**
**मनोऽपि भूमध्ये सकलमपिभित्वा कुलपथं**
**सहस्रारे पद्मे सहरहसि पत्या विहरसे।**

ब्रह्मा एवं सरस्वती के मानव-शरीर के पंचभूतों में वास के प्रमाण स्वरूप इस श्लोक का तात्पर्य है कि ''पृथ्वी तत्व को मूलाधार में, जल को भी मूलाधार, अग्नितत्व मणिपूर (स्वाधिष्ठान), हृदय में वायु तत्व और ऊपर विशुद्धि चक्र में आकाशतत्व, मन को भी भूमध्य में, इस प्रकार सकल कुलपथ (शक्ति मार्ग) को पार कर आप सहस्रार पद्म (ब्रह्मरंध्र) में पति के साथ एकान्त वास करती हो।'' इन चक्रों की शरीर में स्थिति देखें तो मूलाधार (रीढ़ की हड्डी में सबसे नीचे कुण्डलिनी), कमल दल, जिसमें ब्रह्मा एवं सरस्वती का वास माना जाता है, स्वाधिष्ठान (जननांग के पास) मणिपूर (नाभि के पीछे, ऊर्जा स्रोत), अनाहत हृदय के बीच सौरमंडल, विशुद्ध (कंठ के पीछे ईड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना खुलती है, स्वर की सारी सिद्धियाँ दायक है। सहस्रार (मस्तिष्क) के सबसे ऊपर 1000 सफेद पंखुडियां, कुंडलिनी यहां पहुंचकर मुक्ति दिलाती है अतएव समस्त प्रकृति अथवा पृथ्वी नादाधीन है।

नाद को ब्रह्मरूप माना जाने के कारण नाद युक्त स्वर, वाद्य और नृत्य सभी ब्रह्ममय हैं। मनुष्य के शरीर में स्थित नाड़ियों व चक्रों से ब्रह्मनाद की साधना फलीभूत होने के कारण ही उसे 'वीणा' की उपाधि दी गई है। देखा जाये तो शरीर में स्थित पंच तत्वों की समानता नाद के विशेषणों से भी साम्य रखती है। नाद में भी पंच तत्वीय गुण हैं जैसे पृथ्वी का घनत्व, अग्नि का ओज, जल की स्विग्धता, वायु की गति, आकाश स्वयं नाद है। इस प्रकार 'तस्मान्नादात्मकं जगत' अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृति अथवा जगत ही नादाधीन है।

बैजू ने भी अपने ध्रुवपद में स्वरोत्पत्ति की यौगिक क्रिया को समक्ष रखा है, जो निम्नानुसार दृष्टव्य है –

स्थाई – स्वर तत्व ज्ञान जीवन मुक्ति को रूप साधे,
तब पावे ज्ञान को मरम, सुनो है गुनीजन।
अन्तरा – ये विचित्र फिरै तब चित्तपावक में प्रवेश करे
देह वायु को ले जाये ब्रह्मग्रंथि करे संधान।।
संचारी – ताते उरज होवे नाभि निकट सूक्ष्म ध्वनि,
तब आवै हृदय स्थान, तब कंठ मध्य पूरण होवे।
आभोग– सुर पान, अपान, वियान उदान समान
या विध नाद प्रकट होवे, नायक बैजू गुरु-ज्ञान।।

अर्थात्- नकारं प्राणनामानम् द्कारमनलं विदुः, जातप्राणाग्नि संयोगात्तेन नादोमिधीयते, नादोत्पत्ति का आधार प्राणवायु एवं अग्नि (ऊर्जा) के संयोग से माने जाने वाले वैज्ञानिकाधार की पुष्टि उपरोक्त ध्रुवपद में परिलक्षित होती हैं। योग में भी इसी प्राणवायु एवं ऊर्जा का उद्गम सप्त चक्रों में नाभि से निःसृत होकर सहस्त्रार, जिसे 'ब्रह्मरंध्र' भी कहा गया वहां जाकर शक्ति सन्निपात होने पर जड़ शरीर में चेतना के समावेश होने का वर्णन प्राप्त होता है, इसे ही ब्रह्म की शरीर में स्थिति माना गया है एवं वायु के संयोग से जिस ध्वनि की उत्पत्ति होती है, वही 'ब्रह्म नाद' का स्वरूप माना गया है।

भक्तियुग में भी अनेक कवियों एवं सन्त गायकों ने इन चक्रिक साधना को प्रमुखता से अपने पदों में स्थान दिया है।

कबीरदास ने भी अपने लोकप्रिय पद 'झीनीरे झीनी चदरिया' में भी ''ईड़ा पिंगला ताना भरनी सुषमन (सुषुम्ना) तार से बीनी चदरिया, आठ कँवल दल चरखा डोले, पांचतत्व गुन तीनी चदरिया'' में इसी भाव को प्रस्तुत किया है। नाड़ियों व चक्रों के माध्यम से जिस ब्रह्मनाद की उत्पत्ति 'नादयोग' में बताई गई है उसे ही कबीर अपने एक और लोकप्रिय भजन ''साधो ये तन ठाठ तम्बूरे का'' में इसी नाद की ओर संकेत करते हुए कहते हैं ''खेंचत तार मरोरत खूंटी, निकला राग हजूरे का'' ये हजूरे का राग 'ब्रह्मनाद' की ओर ही संकेत करता है अतएव शरीर में ब्रह्मा और प्राण वायु के रूप में जो आत्मतत्व की बात **आदि शंकराचार्य** जैसे महान् साधकों ने अपने अद्वैतवाद के माध्यम से समक्ष रखी है ये सभी भक्त –साधकों

ने ''मोको कहां ढूंडे रे बंदे मैं तो तेरे पास में'' आदि सांगीतिक पदों में स्पष्ट किया है –

**''घट-घट में पंछी बोलता,**
**आप ही डांडी, आप तराजू,**
**आप ही बैठा तोलता।**
**आप ही माली आप बगीचा,**
**आप ही कलियां तोड़ता,**
**सब में सब पर आप विराजे**
**जड़ चेतन में डोलता**
**कहत कबीर सुनो भई साधो**
**मन की कुंडी खोलता।।**

नादोत्पत्ति और उसके संचरण, जिससे भारतीय संगीत की त्रिसप्तकीय साधना परिणति प्राप्त करती है वह भी इन्हीं यौगिक नाड़ी व चक्रीय साधना द्वारा कृत आहत-अनाहत-साधना को ईश्वर से जोड़ती है। कहते हैं आत्मा को भी इच्छा हुई कि मैं ध्वनि करूं, इस कारण मन को प्रेरित किया, मन ने देह की अग्नि को जागृत किया एवं जिसने वायु को प्रेरित किया तब ब्रह्म ग्रंथि स्थित वायु ने क्रम से उठकर नाभि, हृदय, कंठ, मूर्धा, मुख में पांच प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न कीं। अतिसूक्ष्म (नाभि), सूक्ष्म (हृदय), अपुष्ट (तालु), पुष्ट (कंठ) एवं कृत्रिम (मुख से) इस प्रकार से नाद की उत्पत्ति बतायी गई है –

**आत्मा विवक्षमाणोऽयं मनः प्रेरयते मनः,**
**ब्रह्म ग्रन्थि स्थितः सोऽथ क्रमादूर्ध्व पथे चरन्,**
**देहस्थं वन्हि माहन्ति स प्रेरयते मारुतम्,**
**नाभिहृत्कंठमूर्धास्येष्वाविर्भावयते ध्वनिम्।।**

ध्रुवपद-गायकों में प्रसिद्ध राग कल्याण के एक ध्रुवपद – ''प्रथम शरीर ज्ञान, नाद भेद तीन स्थान'' (पं. भातखण्डे प्रणीत ग्रंथ ''क्रमिक पुस्तक माला'' के भाग 2, पृष्ठ 709 में लिपिबद्ध) में यही कथ्य उजागर होता है अतएव नादरुप शरीरात्मा में व्याप्त प्राणतत्व ही ब्रह्मवाचक है–

**''मयोपवृहितं भूम्ना ब्रह्मणानन्त शक्ति नां,**
**भूतेषु घोषरुपेण विशेषूर्णेव लक्ष्यते।।**

स्वर की सूक्ष्मतम स्वरूप 22 श्रुतियों की स्थापना शरीरस्थ 22 नाड़ियों में मानी गई है –

**तस्य द्वाविंशतिर्भेदाः श्रवणात् श्रुतयोमताः**
**हृद्यभ्यन्तर संलग्ना नाड्योद्वाविंशतिर्मताः।।**

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'अहम् ब्रह्मास्मि' यानि ब्रह्म के अवतरण द्वारा यह आत्मायुक्त शरीर नाद का एक साधक मात्र है और ब्रह्म उसका साध्य और संगीत की उत्कृष्ट साधना द्वारा जिस सत्, चित् अनुक्रम द्वारा आनन्द की ओर उद्धत होता है, वही 'रसो वैः सः' स्वयं ब्रह्ममय है इसलिए कहा गया है ''शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम्'' ये मानव शरीर ही मानव जीवन के चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की साधना द्वारा परमानन्द, जिसे 'ब्रह्मा नन्द सहोदर' के रूप में भी विश्लेषित किया गया है, संगीत उसका उत्कृष्ट साधन अथवा माध्यम है –

**वीणावादन तत्वज्ञः श्रुति जाति विशारदः**
**तालज्ञश्चप्रयासेन मोक्ष मार्ग निगच्छति।**

मनोवैज्ञानिकों ने संगीत-प्रेम मानव का जन्मजात स्वाभाविक गुण माना है इसीलिए व्याख्याकारों ने संगीत को मूलरूप में कला से अधिक भाव, संवेग एवं संवेदनाओं की भाषा बोला है। इसे वैश्विक भाषा माना गया। इसका सर्वोत्कृष्ट प्रमाण यह है कि संगीत जो ध्वनि अथवा नाद द्वारा उद्भूत एवं निर्मित है, आदिमकाल में जब मानव के पास भाषा नहीं थी तो हृदयगत भावों को सिर्फ हाहू ध्वनियों द्वारा व्यक्त करता था इन्हीं ध्वनियों ने वेदों में 'हिंकार' एवं 'स्तोभाक्षरों' के रूप में संगीताकृतियाँ लेनी शुरु कीं। सामवेद उसका उत्कृष्ट उदाहरण है, इन स्तोभाक्षरों का ही कालान्तर में 'उपोहन' यानि 'त न री न' आदि शब्दों द्वारा भी विस्तार होने लगा, जो कि ध्रुवपद की 'नोमतोम् आलापचारी के भी उत्कृष्ट अवयव बने। हमारे यहां यह उक्ति प्रसिद्ध है –

**आदि नाद अनहद भयो, तासे उपज्यो वेद**
**मुनि पायो या वेद से, सकल सृष्टि को भेद।**

मीरा बाई ने भी इसकी अपने पद में इस प्रकार सांगीतिक व्याख्या की है – बिन कर ताल मृदंग बाजे, अणहद की झनकार रे, बिन सुरराग छत्तीसी गाउं, रोम-रोम रणकार रे।

ध्रुवपद का महत्वपूर्ण अंग आलापचारी, जिसे वर्तमान में 'नोमतोम्' के रूप में बहुतायक रूप से सभी घराने के लोग गाते है। इसे 'तेनक' के रूप में प्रबन्ध के छः अंगों में शारंगदेव ने समाविष्ट भी किया है। यह प्राच्य रूप में 'हरिः ऊं अनन्त नारायण तरण तारण तोम् (त्वम्) ईश्वर सम्बोधक रूप में प्रयुक्त होते थे। इनका प्रयोग 'झण्टुं जगतिय, वलकित कुछझल तितिझल, पशुपति दिगिदिगि दिग्रे गणपति तितिझा इन स्तोभाक्षरों के रूप में भी प्रयुक्त हुआ, जो 'तेनक' के ही तिरोहित स्वरूप के साथ आलापों में प्रयुक्त हुआ। हमारे यहां 'तेन' तत् शब्द की तृतीया विभक्ति भी है। 'हरि ॐ तत्सत्' या 'तत्वमसि' में तेन का तात्पर्य मंगल अथवा कल्याणकारी

रूप में ब्रह्मवाचक है एवं प्रबन्ध पुरुष का एक नेत्र है –

**ओं तत्सत्दिति निर्देशस्तत्वमस्यादिवाक्यतः**
**तदिति ब्रह्म तेनाऽयं ब्रह्मणात्मना लक्षितस्तेन तेनेति।**

विद्वान् शास्त्रकार ठाकुर जयदेवसिंह जी के ग्रंथ ''भारतीय संगीत का इतिहास'' में उनकी विचारोक्ति में इसका निष्कर्ष निकाला जा सकता है – ''यद्यपि मानव के लिए संगीत नैसर्गिक है तथापि संगीत का प्रादुर्भाव एक कला के रूप में आरम्भ से ही नहीं हुआ। भारतीय, चिन्तकों, ऋषियों, महर्षियों ने वर्षों तपस्या और साधना करके संगीत की ध्वनि और गति का अनुभव किया और निष्कर्ष निकाले कि भारतीय संगीत कला के उद्‌गम और विकास में पूर्णत: 'नाद् ब्रह्म' का चमत्कार है, जिसे हमारे आचार्यों ने 'ओंकार ध्वनि' कहा है यह सर्वकालिक, सनातन और शाश्वत है।'' ''शिवंपचाक्षर स्तोत्रम्' में **आदि शंकराचार्य** भी इसी भाव को व्यक्त करते हैं ''ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यंध्यायन्ति योगिनः, कामदं मोक्षंदं चैव ओंकाराय नमो नमः''। डॉ. अरूण आप्टे भी लिखते हैं'' The Omkar is beginning of Music and this very reason music has been a universal language.'' ''विद्या है ब्रह्म बीज'' मतानुसार संगीत को ब्रह्मविद्या ही माना गया है, जिसके विकास में त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश, जिन्हें अकार, उकार एवं मकार का ही वाचक माना गया, आदि दैवीय शक्तियाँ काम करती हैं। डागर घराने के एक ध्रुवपद में भी यह दृष्टिगत होता है –

स्थाई – शिव आदि मध्य अन्त, जो गात जोगी शिव,
कनक विष अमियादि विष भोगी,
अन्तरा – नाभि के कमल ते, तीन मूरत भई
भिन्न जाने सो ही, नरक भोगी।

ध्रुवपद गायकी, जिसमें आवाज़-लगाव एवं उसके उदात्ततापूर्ण लगाव में भी नाभि का विशेष समावेश रहता है। उपरोक्त ध्रुवपद में इसी देवाह्वान एवं मूलाधार चक्र-साधना की बात कही गई है, जहां से कुंडलिनी जागृत होकर रससृष्टि में सफल होती है।

'सरस्वती' शब्द संस्कृत भाषा की 'सृ' धातु, जिसका तात्पर्य 'गतिमान' होने से हैं। ब्रह्मा की पत्नी 'ब्रह्माणी' कहलाने वाली सरस्वती से प्राप्त शक्ति से ही ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड रचा। 'नाद रूपो स्मृतो ब्रह्मा', नाद और उसकी गति की शक्ति से आपूरित इस ब्रह्मांड से ही देवी-देवता,गन्धर्व एवं किन्नर आदि के द्वारा इस लोक में संगीत का आगमन हुआ। आविष्कार और परिष्कार के सतत् अनुक्रम एवं उपक्रम में आज भारतीय संगीत की वैश्विक महिमा सर्वत्र व्याप्त है। 'संगीत' के लिए यूनानी, लेटिन, फ्रान्सीसी, पुर्तगीज़, जर्मन, अंग्रेजी, अरबी एवं फारसी आदि भाषाओं में मौसिकि, मुसिका, मुसीक, मूसिक, म्यूजिक, मौसीकी जो भी शब्द प्रयुक्त हुए, उसके मूल में भी किसी आध्यात्मिक शक्ति की प्रेरक शक्ति का होने की अवधारणा ही रही है। भौतिक शास्त्र के अनुसार भी 'ध्वनि' या नाद का अस्तित्व भी कम्पन या आन्दोलन पर ही निर्भर होता है, जो स्वत: गति का ही सूचक है, जिसके नियत एवं अनियत होने से ही संगीत के लिए उसका उपयोगी और निरपयोगी होना निर्धारित किया जाता है। कुल मिलाकर भारतीय संगीत की यह आस्था प्रगाढ़ है कि भारतीय संगीत ब्रह्मलोक से शिव, सरस्वती, नारद, गंधर्व, किन्नरों व भरत आदि ऋषियों द्वारा परस्पर संचारित होकर इस भूलोक में विद्यमान एवं विकसित हुआ।

इस ब्रह्म वाचक 'प्रणव' अथवा 'ओंकार' से ही भारतीय संगीत के साध्य अवयव अकार, इकार, उकार, मकार (स्वर-व्यंजन), नासिक, अनुनासिक, निरनुनासिक, सभी के प्रयोग ने भारतीय संगीत को समृद्ध किया, जिसे सर्वप्रथम भारतीय शास्त्रीय संगीत की आधारभूत ध्रुवपद गायकी ने सर्वप्रथम ब्रह्मा द्वारा रचे चतुर्वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद में से मुख्यत: सामवेद के ''सप्त स्वरास्तु गीयन्ते सामभि: सामगै: बुधै:'' के अनुसार सृजित सात स्वरों यानि सप्तक एवं स्वरोच्चार विधि उदात्त, अनुदात्त व स्वरित आदि को छन्द व तालों से अलंकृत कर वह ध्रुवीय स्वरुप रचा, जो अटल होकर कालान्तर की सभी गायकियों के व्याकरण रूप अथवा जनक रूप में स्थापित हुआ।

ज्ञात रहे कि वैदिक त्रिस्वरों आर्चिक, गाथिक एवं सामिक से विकसित सप्त स्वरूपों क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र एवं अतिस्वार्य ही तिरोहित होकर आधुनिक प्रयुक्त सप्त स्वरों षडज, रिषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद (स रे ग म प ध नी) जो उदात्त, अनुदात, स्वरित से ही विकसित हुए, जिनसे राग-रागिनियों का निर्माण हुआ जो प्रथमत: ध्रुवपद गायकी द्वारा पूर्ण शास्त्रीय स्वरूप में प्रयुक्त एवं स्थापित हुई, जो आधुनिक संगीत की रीढ़ भी कही जा सकती है। ब्रह्मा के इसी प्रकाशित विस्तार को डागर घराने में प्रचलित राग चन्द्रकौंस की ध्रुवपद-रचना में ''निरंजन, निराकार, पर ब्रह्म परमेश्वर एक ते अनेक होत ..... अलख ज्योति अविनाशी बताते हुए जगजीवन बताया है। यानि शरीर में ज्योति (ऊर्जा) एवं तदुत्पन्न नाद के ख़त्म होते ही जीवन भी समाप्त, इसीलिए इस शरीर को ब्रह्मवीणा भी माना गया है। 13 वीं शती में शारंगदेव ने भी कहा –

**नादेन व्यंजते वर्णः, वर्णात् पदाद्वचः**

**वचसा व्यवहारोऽयं, नादाधीनं नमतोजगत्।**

अतएव ''वेदानाम् सामवेदोऽस्मि'' कृष्ण ने भी समस्त वेदों में सिर्फ सामवेद को उसकी गेयता अथवा सांगीतिकता के कारण उसमें अपनी स्थिति होना बताया है।

**जगद्गुरु शंकराचार्य** ने उपनिषदों की बहुत सार्थक टीकाएं लिखते हुए वेदान्त, ब्रह्म, आत्मा, मन, जगत, माया आदि की बहुत सुन्दर व्याख्याएं प्रस्तुत कीं। गौडपाद 300 ई. तथा उनके अनुयायी **आदि शंकराचार्य** 700 ई. ने ब्रह्म को सत्य बताते हुए प्रधानता दी है एवं जीव-जगत को मिथ्या बताते हुए भी उससे अभिन्न माना है। उपनिषद् भारतीय मनीषा एवं चिन्तन के प्रमुख स्रोत हैं। भारतीयता की प्रवाहक ध्रुवपद गायकी में भी देखा जाये तो उक्त भारतीय दर्शन के दिग्दर्शन हम कर पाते हैं क्योंकि ध्रुवपद गायकी, जिसका मूल स्रोत सामवेद रहा। सामवेद की उपनिषदों में प्रचुर मात्रा में श्लाघा दृष्टिगत होती है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में वेदों को ईश्वर से उत्पन्न माना है। वेदान्त दर्शन के अनुसार वेद अनादि तथा अपौरुषेय हैं जैसे कि ईश्वर अनादि, अनन्त एवं अनश्वर। वर्तमान में भी ऋषि दयानन्द ने इसे अपौरुषेय एवं ईश्वरीय रचना माना और कहा कि सृष्टि प्रारम्भ में ईश्वर ने यह ज्ञान मानव कल्याण के लिए ऋषियों के अन्त:करण में प्रकाशित किया। 'श्वेताश्वतर उपनिषद' में कहा गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में परमेश्वर ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और उसके लिए वेदों को भेजा (6.8) 'वृहदारणयक उपनिषद' में वेदों को ईश्वर का नि:श्वास माना है।

''**यस्य नि:श्वसितं वेधयो वेदेभ्योऽअखिलं जगत्** (वेदों के भाष्यकार सायणाचार्य)। पं. दामोदर ने भी कहा ''**वेदोऽखिलम् धर्ममूलम, धर्मार्थकाममोक्षणमिदमेवैकसाधनम्**''। अर्थात् वेद धर्म के मूल में है एवं चारों पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के उत्कृष्ट साधन के रूप में 'नाद' को माना गया है। 'वृहदारण्यक' के अनुसार ऋग्वेद 'ब्रह्मरूप' परमपुरुष के वाग्रुप हैं, यजु मनोरुप, तथा सामवेद प्राणरुप (1,5,5,) अथर्ववेद में भी वेद और ब्रह्म के संबंध का उल्लेख शक्ति कामना एवं मनोकामनाओं की प्राप्ति हेतु दृष्टिगत होता है-

**ओं स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम्**
**पावमानी द्विजानाम**
**आयु: प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविनं ब्रह्मवर्चसं**
**मह्यं दत्त्वा वज्रत ब्रह्मलोकम्**
**ओं शान्ति:।शान्ति:।शान्ति:।**

**(अर्थवेद 19, 71-1)**

'छन्दोग्योपनिषद' के अनुसार साम का आधार 'स्वर' है एवं स्वर का आधार है - 'प्राण'। स्वर का महत्व सामगान में स्वर्ण की भांति माना गया है (3,26) उपनिषद के अनुसार ऋचाओं के सार 'साम' में निहित हैं, और साम का सार 'उद्गीथ' अथवा 'ओम्' ध्वनि में है। इस के सम्यक् गान से उपन्न रसानन्द को सर्वश्रेष्ठ रस माना गया है - ''स एष रसानाम् रसतम: परम: परार्ध्योष्टमो य उद्गीथ:। ''(वृहदारण्यक, 3,1,2) 'रसो वै स:। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति'।

**ते ये शतं मानुषा आनन्दा: स एको मनुष्य गंधर्वाणामानन्द:।**
**ते ये शतं मनुष्यगंधर्वाणामानन्द:।**
**स एको देवगन्धर्वाणामानन्द:।**

इस ओंकार 'ब्रह्मनाद' को **आदि शंकराचार्य** ने बिन्दु की परवर्ती अवस्था भी बताते हुए ज्योतिर्स्वरूप बताया है। इसे प्राणस्वरूप होने के कारण 'प्रणव' भी अभिहित किया गया एवं इसे 'ॐ नाद' ब्रह्म के रूप में साधते हैं -

**नादामयं तर्वर्ति ज्योतिर्यद्वर्ततेद्वि चिरम्**
**तत्र मनोलीनं चेन्न पुन: संसार बंधाय।**

निम्न प्रचलित श्लोक में इसी आत्मतत्व के प्रकाशन की बात कही गई है -

**'शुभं भवतु कल्याणमारोग्यं पुष्टिवर्धनम् आत्मतत्व प्रबोधाय दीप-ज्योतिर्नमस्तु ते'।**

छान्दोग्य के प्रथम अध्याय में सामगान में आलापगायन के लिए हाकार हाइकार, अथकार, इहकार, ईकार, ऊंकार, एकार, औहाइकार, हिंकार, स्वर या वाक् तथा हुंकार (1,13,4) प्रयुक्त हुए हैं। ध्रुवपद की आलापचारी के भी ये प्रमुख साध्य व साधन बने। 'संगीतरत्नाकर' के अड्डियार संस्करण, तालाध्याय, पृ. 131-132 में वैदिक साम के पांच अंग प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव व निधन की संज्ञा लौकिक साम में क्रमश: 'उद्ग्राह', अनुद्ग्राह, संबंध, ध्रुवक एवं आभोग रूप में प्रयुक्त हुई एवं जो परिणामस्वरूप वर्तमान प्रयुक्त ध्रुवपद में स्थाई, अन्तरा संचारी एवं आभोग के रूप में प्रतिस्थापित हुई।

एक और बात महत्वपूर्ण हैं कि वेदों में सूर्य को बहुत महत्व दिया गया है। ध्रुवपद में भी सूर्योपासना के पद परिलिक्षित होते है। साथ ही पंचभूतों से बने इस शरीर में गगन को नाद का परिचायक माना गया है एवं अग्नि को नादोत्पत्ति में प्रमुख सहायक तत्व के रूप में महत्व दिया गया है। ध्रुवपद की राग भूपाली की बन्दिश इस

वैदिक मान्यता को प्रमाणित करती है –

**तू ही सूर्य तू ही चन्द्र, तू ही पवन तू ही अगन,**
**तू ही आप तू आकाश, तू ही धरणी यजमान,**
**भव रुद्र उग्रसर्व, पशुपति समसमान,**
**ईशान भीम सकल तेरे ही अष्ट नाम।**

कुल मिलाकर भारतीय संगीत में साध्य नाद ही ब्रह्मनाद का मूल सात्विक ज्ञानस्त्रोत है। सिर्फभू लोक ही नहीं देव लोक के देवों के देव शंकर ने भी नादब्रह्म में ही लीन होकर ताण्डव नृत्य किया और ऋषि–मुनियों की कामना–पूर्ति हेतु आनन्दमग्न होकर 14 बार डमरु बजाया उससे निकले नाद ने ही 'महेश्वर सूत्र' के रूप में आधुनिक संगीत को व्यवहार एवं सिद्धान्त दोनों रूपों को समृद्ध किया, जो आज सम्पूर्ण भारतीय संगीत का आधार है, इसका आज संस्कृत व्याकरण में भी आधार के रूप में स्थान है। पाणिनी ने भी 'अष्टाध्यायी' के रूप में उसकी अनेक विशेषताओं के समावेश से 'व्याकरण शास्त्र' का निर्माण किया।

**नृत्यावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नव पंचवारम्**
**उद्धर्तुकामः सनकादि सिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।**

'प्रत्याहार विधायक' सूत्र के नाम से ज्ञात इन सूत्रों से ही 4 स्वर वर्णों व 10 व्यंजन वर्णों की सर्जना ही भारतीय शास्त्रीय संगीत की सर्वपुरातन ध्रुवपद गायकी के आलापों, प्रबन्धों (बंदिशों) एवं छन्द–ताल शास्त्र की प्रमुख आधार बनी, जिससे निर्मित ध्रुवपद के ध्रुवीय शास्त्रीय स्वरूप ने कालान्तर में सभी भारतीय शैलियों को भी आधार एवं सामग्री दी। कुल मिलाकर सम्पूर्ण जगत में चर–अचर एवं जड़–चेतन सभी में 'ब्रह्मनाद' की ज्योति जब तक व्याप्त है तब तक जीवन है।

इस ज्योति के शान्त होते ही नाद भी शान्त हो जाता है और मानव–शरीर भी, अतएव नाद की इसी संजीवनी–गुण और महत्ता के कारण इसे 'नाद ब्रह्म' के रूप में महिमामंडित किया गया है। उपरोक्त समस्त नाद–विवेचन से अलंकृत ध्रुवपद की निम्न कुछ बंदिशों का साहित्य उदाहरण स्वरूप दृष्टव्य है, जिससे यह सिद्ध होता है कि ध्रुवपद नादब्रह्म–साधना की उत्कृष्ट गायकी है –

स्वामी हरिदास कृत ध्रुवपद –

स्थाई – प्रथम आदनाद ब्रह्म, जो जासौ भयो है सब ही विस्तार
अंतरा – शब्द पवन अगनि पानि, धरती मायामाई सृष्टि रची करतार।

विलासखां कृत ध्रुवपद–

**अनहत शब्द उपज्यो मो घट में ताको करूं**
**ध्यान अष्ट जाम**
**खरज, रिखब, गंधार, मध्यम और पंचम धैवत**
**निषाद पाऊं, अति अभिराम अनहत।**

बैजू बावरा कृत ध्रुवपद –

**प्रथम आदि शिव शक्ति, नाद परमेश्वर,**
**नारदतुंबरु सरस्वती, भज ले रे।**
**अनहद आदि नाद, गुनी सागर स्वरूप,**
**अक्षर सुध–बुध मन गुनी जन रे।।**
**आदि धरती शेष आदि सूरज चन्द्र पवन पानी अनुमन रे,**
**आदि बैजू कवि गुन प्रसाद तीन लोकन के आवत गुनीजन रे।**

डागर घराने का ध्रुवपद –

**नादभेद सुन्यारो, कहत गाई जो सो गुनीजन जाने–माने,**
**नाद के अष्टादि के है नाद भेद दो ही भेद, एक अनहद नाद,**
**ताप है, तीतीजे अनहद नाद ताप हे, बाइस श्रुति प्रहर चार।**

मियां तानसेन कृत ध्रुवपद –

**तुम रब तुम साहिब तुम ही करतार,**
**घट–घट पूरण जल–थल भर भार ( भरतार )।**
**तुम ही पूरण ब्रह्म, तुम ही अटल,**
**तुम ही जगद्गुरु, तुम ही सरदार।**
**कहे ये तानसेन तुम ही आप,**
**तुम ही करत सकल, जग को भव पार।**

स्वामी विवेकानन्द कृत ध्रुवपद –

**खंडन भव बंधन, जगवंदन वंदि तोमार,**
**निरंजन नर रुपधर, निर्गुन गुणमय,**
**नमो नमो प्रभुवाक्य, मनातीत मनोवचनैकाधार**
**ज्योतिर्ज्योति उजल हृदि कंदर, तुमि तम भंजनहार।**

पं. एस.एन. रातान्जनकर कृत –

**सच्चिदानन्द रूप मुनिजन बखानत,**
**परब्रह्म ओम् तत्सत् अनादि अनंत अनूप।**
**अखिल जगत कारण, पूरण घट घट प्रमान,**
**निरंजन निराकार, प्रगट धरे नामरूप।**
**न सूरज चंदा तारे, दामिनी अरु अगन कहां।**
**कोइ न परकासत, ऐसा ही अनत देस।**
**स्वयं ज्योति परात्पर करत जगत उद्भासित।**
**परतीत जासो होत, सो ही मुक्त हंस रूप।।**

प्रो. सुमति मुटाटकर कृत ध्रुवपद –

**नाद ज्योत जनमगात, परम इस आनन्द स्तोत,**

**अनाहत आहत वाके दोउ भेद होत।**
**साधन कर सावधान, भुक्ति मुक्ति समाधान**
**जनरंजन भवभंजन, नाद वेद कहावत।।**
**महाकाल महामौन, तामें उठत मूल स्पंद**
**आद नाद ब्रह्म नाद, ओंकार प्रणव नाद।**

पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग कृत ताल ब्रह्म में रचित एवं शब्द-रचना (उत्तम कवि), उनके द्वारा प्रणीत ग्रंथ (रसमंजरी शतक) से उद्धृत तीन रचनाएँ –

**भज चतुरानन वेद गर्भ रट पितामह जगतकारन**
**रिक यजु साम अथरवण रचिरजगुन ते त्रिभुवन धारन।**
**उपजाये चार वरण जलथल नभ चर रचे देवगन,**
**ज्ञान ध्यान जप जोग बतायो तन की अति शक्ति दमन,**
**ब्रह्मदेव चरनन में नत उत्तम करत नित सिर नमन।**

पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग कृत –

**आदिनाद ब्रह्मनाद्**
**वीणानाद् वंशी नाद**
**डमरूनाद घंटा नाद**
**नादभेद को बखाने।**
**वीणानाद तत जान,**
**वंशी नाद सुषिर मान**
**डमरूनाद अवनद्ध**
**घंटानाद घनप्रमाणे।**

पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग कृत ध्रुवपद –

**प्रथम ओंकार, तुमको ध्याऊं,**
**सीस नवाऊं।**
**तू ही ब्रह्म, तू ही विष्णु**
**तू ही परम निरंकार।**
**जन-जन हेतु लियो,**
**जग में अवतार।**

उपरोक्त गुणीजन की उत्प्रेरणा से लेखिका ने भी कुछ रचनाएं विषयान्तर्गत रची हैं, उदाहरणार्थ –

**नादभेद अपार, गुणीजन,**
**कबहूँ न पायो पार,**
**गाय-गाय थके सब।**
**रच-पच हार डार,**
**ईडा पिंगला सुषुम्ना नाड़ी,**
**कमलदल ते होय सृष्टि।**
**सुरन शुद्ध, कोमल, तीवर,**
**मन्द्रमध्य झंकृत तार।**
**स्वस्थान चार,**
**आलाप विस्तार।**
**श्रुति मूर्च्छना,**
**लय-प्रस्तार।**
**गमक कण मींड शब्दाकार,**
**या ही कीजे राग ब्यौहार।**
**ध्रुवपद है ओंकार,**
**साधत मधु बार-बार।**
**गुरु कीजै मोहि पार,**
**नाद विद्या अप्रंपार।**

सूर्य वंदना –लेखिका कृत ध्रुवपद –

**आदित्यो नमस्कार, सूर्यो नमस्कार,**
**तुम हो जगद्देव, हरिये अन्धकार।**
**आदि मध्य अंत, पालक तुम भगवंत,**
**सृष्टि के सृजनहार, भव के प्रलयंकार।**
**तेरो मैं धरुँ ध्यान, प्रात उठ करूं गान,**
**नादब्रह्म मुहूर्त साध्य, सुर ताल अलंकार।**
**अरूण ये मधुमय देश का हो मंगल,**
**कष्ट हरे सिंह राशि गुरु का हो चमत्कार।।**

निष्कर्षत: इस समस्त जगत के प्राणवन्त प्रणव ओंकार रूप ब्रह्मा से शान्ति की कामना की है कि सभी संताप-ताप से दूर इस भूलोक में शान्ति का वास हो, अर्थात् नाद ही वायु है, नाद ही अग्नि, नाद ही परमशान्ति है, जो मनुष्य को परमात्मा से एकाकार कराता है। कृष्ण यजुर्वेद के इस सर्वत्र प्रयुक्त श्लोक को भी लेखिका ने ध्रुवपद में प्रयुक्त किया है जो इस आलेख के माध्यम से अन्तत: लोककल्याण हेतु मेरी प्रभु से प्रार्थना है इन मंगल-स्वरों के साथ –

**ॐ द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं, शान्ति: पृथ्वी: शान्तिराप:**
**शान्तिरौषधय: शान्ति:, वनस्पतय: शान्तिर्विश्वदेवा शान्ति:**
**ब्रह्मशान्ति: सर्वशान्ति:**
**शान्तिरेवशान्ति: सामाशान्तिरेधि: ।।**

''ऊँ नादब्रह्म''

– लेखिका : वरिष्ठ ध्रुवपद गायिका एवं पूर्व अधिष्ठाता ललित कला संकाय तथा पूर्व अध्यक्ष, संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.) है।

■

आलेख

# संगीत का परम उद्देश्य नादब्रह्म उपासना

प्रो.डॉ. सृष्टि माथुर

भारत एक साधन सम्पन्न राष्ट्र होने तथा जीवन यापन की सुविधाएं यहां सरलता से उपलब्ध होने के कारण यहां मनीषियों का ध्यान स्वत: परब्रह्म की प्राप्ति या मोक्ष प्राप्ति के मार्ग की ओर गया। यह अध्यात्म प्रधान देश है। यहां विभिन्न दार्शनिक मतों में संगीत को परब्रह्म की प्राप्ति का प्रमुख माध्यम माना गया है। विभिन्न धार्मिक परंपराओं में नाद ब्रह्म उपासना की सक्रिय भूमिका रही है। हमारा संगीत प्रारंभ से ही आध्यात्मिक भावना से परिपूरित रहा है।

हमारी विभिन्न धार्मिक परंपराओं और ज्ञान ग्रंथों में संगीत को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भारतीय परंपरा में नाद को ब्रह्म का स्थान दिया गया है। संगीत में नाद की उपासना परब्रह्म प्राप्ति का मार्ग है। प्रत्येक स्वर से उपजने वाले कंपन वायुमंडल में अपना प्रभाव डालते है। ये कुछ इसी प्रकार से देखा जा सकता है जैसा कि न्यूटन के गति का तीसरा नियम। इस नियम के अनुसार प्रत्येक क्रिया की उसके बराबर तथा उसके विरुद्ध दिशा में प्रतिक्रिया होती है ठीक इसी प्रकार स्वरों को जब हम गाते या बजाते हैं तो स्वरों का आन्दोलन, ध्वनि तथा कम्पन वायुमंडल में अपना प्रभाव डालते हैं और वायुमंडल अपना प्रभाव पुन: मनुष्यों पर डालता है।

नाद की महिमा का वर्णन सभी भारतीय शास्त्रों में वर्णित है। चाहे वह उपासना का विषय हो, भाषा, या संगीत का, सभी में नाद ही व्याप्त है। संपूर्ण संसार का व्यवहार नाद से ही चलता है। नाद से ही स्वरों की उत्पत्ति मानी गई है। प्रति सेकेण्ड आवृत्ति या आंदोलन संख्या जितनी अधिक होगी नाद उतना ही ऊँचा होगा इसी के विपरीत आंदोलन संख्या जितनी कम होगी नाद उतना ही नीचा होगा। उदहणार्थ हमारे संगीत के सातों स्वर सा रे ग म इत्यादि एक दूसरे से ऊँचे होते जाते हैं क्योंकि इनकी आन्दोलन संख्या भी एक दूसरे से अधिक होती जाती है। ऐसा कहा जाता है कि श्रवण हेतु मानव कार्ण के लिए कम से कम 16 आंदोलन प्रति सेकेंड की संख्या आवश्यक है इसकी अधिकतम सीमा में 38 हज़ार प्रति सेकेंड हैं। नाद की आंदोलन संख्या से प्रत्येक जीव जंतु और मनुष्य प्रभावित होता है और यह प्रभाव उसके सूक्ष्म शरीर पर भी होता है जो उसकी आध्यात्मिक उन्नति में सहायक हो जाता है। हमारा संगीत नादोपासना है और नाद साधना के माध्यम से विभिन्न प्रकार के स्वर समूह के द्वारा राग की निष्पत्ति होती है तथा प्रत्येक राग के गायन अथवा वादन का वातावरण पर प्रभाव पड़ता है। शास्त्रीय संगीत में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो तानसेन के नाम से परिचित न हो। ऐसा कहा जाता है कि तानसेन के गायन के प्रभाव से पशु-पक्षी भी मुड़ कर आ जाते थे तथा उनके दीपक राग गाने से दिए जल उठते थे उनके मल्हार गाने से वर्षा तक हो जाती थी। महर्षि नारद ने भी स्वरों की आंदोलन संख्याओं को दृष्टिगत रखते हुए प्रत्येक स्वर का रंग, स्वभाव व प्रकृति निर्धारित की है जिसका कही न कही वैज्ञानिक आधार माना जा सकता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह सिद्ध है कि एक सी आवृत्ति या आन्दोलन संख्या का मिलान होने पर गूंज उत्पन्न होती है या कभी शून्य कि ऐसी स्थिति हो जाती है। ऐसा होने पर कभी-कभी काँच भी चटक जाते हैं। कहने का अर्थ यह है कि यदि सच्चा स्वर उत्पन्न हो तो नाद की आवृत्ति हमारे नाड़ी तंत्र पर भी प्रभाव डालती है जो कुंडलिनी जाग्रत करनें में सहायक होती है। इन्ही कारणों से संगीत को मोक्ष प्राप्ति का साधन भी माना गया है।

हमारे यहां ब्रह्मा विष्णु महेश को साक्षात् नाद का ही रूप माना गया है।

**नाद रूपै: स्मृतौ: ब्रह्मा: नाद रूपौ: जनार्दन।**
**नाद रूपा: पराशक्ति: नाद रूपौ महेश्वर: ।।**

इसी प्रकार भारतीय दर्शन के आधारभूत ग्रंथ वेद सबसे प्राचीन माने जाते हैं। वेदों की उत्पत्ति भी नाद ब्रह्म से मानी गई है।

**आदि नाद अनहत भयो, ताते उपजे वेद।**
**पुनि पायो वा वेद में, सकल सृष्टि को भेद।।**

वैदिक काल में मौखिक परम्परा साम ऋचाओं द्वारा जीवित रही। गेय साहित्य गान द्वारा स्मृति पटल पर अधिक स्थिर रहता है इसी कारण यह परंपरा चिरकाल तक जीवित रही। सम्वेत् स्वरों में साम गायन का उल्लेख मिलता है जो यज्ञ आदि अवसरों पर किया जाता था और परब्रह्म की उपासना की जाती थी।

नादोपासना के माध्यम से परब्रह्म उपासना तथा मोक्ष प्राप्ति की कामना हमारी सभ्यता में आरम्भ से ही विद्यमान रही। सामगान परम

कल्याण का साधन माना जाता था। ऐसा माना जाता था कि जो मनीषी सामवेद के गूढ़ तत्वों को जानकर उसकी साधना करता है उसे सहज ही मोक्ष प्राप्ति हो जाती है। तैत्तरीय उपनिषद में संगीत से उत्पन्न रस को विशुद्ध आनंदमय तथा ब्रह्मानंद सहोदर बताया है। योग शिखोपनिषद में लिखा है कि परब्रह्म में लीन होने का परम साधन होने के कारण नाद को योग व हठ योग से भी श्रेष्ठ माना गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मन को केंद्रित करने की अद्भुत क्षमता के कारण नाद को परब्रह्म प्राप्ति का एक प्रमुख माध्यम माना जाता रहा है। श्रीमद्भगवत् गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है–

**नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।**
**मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद।।**

अर्थात् श्रीकृष्ण ने भी नाद साधना को परम स्थान देते हुए नादोपासना द्वारा मोक्ष प्राप्ति का सहज, सुंदर मार्ग का दर्शन कराया है। आध्यात्मिक साधना में प्रयुक्त संगीत मोक्ष दायक है तथा लौकिक व्यवसायिक संगीत बंधन का कारक भी है। धार्मिक उपासना करने, यज्ञादि में प्रयुक्त होने के कारण संगीत का प्रयोजन परमात्मा से संबंध स्थापित करना रहा है। भारत की प्राचीन सभ्यता व संस्कृति के उत्थान में भी संगीत का सक्रिय योगदान रहा है। धर्म प्रधान देश व लोक कल्याण के प्रयोजन हेतु युगों से इस भूमि पर सर्वशक्तिमान ईश्वर से साक्षात्कार हेतु उपासना की जाती रही है। किंतु मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बहुत ही कठिन होने के कारण मानव के चंचल मन को केंद्रित करने का कार्य संगीत के द्वारा सिद्ध हुआ। संगीत में वह दिव्य शक्ति है जिससे चंचल मन सहज ही एकाग्र हो जाता है। यही कारण है कि अति प्राचीन काल से ही विश्व के विभिन्न धर्मों में संगीत को महत्व दिया जाता रहा है। शिव से सरस्वती व सरस्वती से नारद, नारद से भरत और फिर सभी देवी, देवताओं, गंधर्व, किन्नरों, अप्सराओं को यह विद्या प्राप्त हुई। विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती को वीणापाणी और पार्वती को नृत्य विशारद बताया गया है। कृष्ण को वंशीधर, शिव के हाथ में डमरू यह बताते है कि हमारे सभी देवी–देवता संगीत से जुडे हुए हैं। याज्ञवल्क्य के अनुसार जो वीणा वादन के तत्व को जानने वाला है। श्रुति, जाति, ताल का अच्छा ज्ञाता हो, वह व्यक्ति बिना प्रयास के ही मोक्ष को प्राप्त करता है।

विश्व के सभी धर्मों ने, सभी संप्रदायों ने, सभी संतो ने संगीत को पवित्र, परम कल्याणकारी तथा मोक्ष प्राप्ति का साधन माना है। गिरजाघरों की प्रार्थना का माध्यम संगीत ही होता है ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती व दिल्ली में शेख निजामुद्दीन औलिया की दरगाह पर प्रतिवर्ष उर्स का आयोजन होता है जहां कव्वालियों के माध्यम से अपनी मुरादे मांगते हैं। मुहर्रम में सोज पढ़ा जाता है जो विभिन्न राग रागनियां में निबद्ध होते हैं। स्वामी वल्लभाचार्य के संप्रदाय के अष्टछाप के कवि और संगीतज्ञों ने तो अष्ट प्रहर की झांकी के साथ गायन कर श्री कृष्ण की भक्ति की। मेवाड़ की मीराबाई ने श्रीकृष्ण आराधना में अपना जीवन अर्पण कर दिया। संत कबीर, ज्ञानेश्वर, नामदेव, रामदास, नारायण स्वामी, त्याग राज, रैदास, सहजोबाई आदि अनेक भक्त कवि संगीतज्ञों ने संगीत के माध्यम से ही पदों का गान कर उपासना की। सबका उद्देश्य परब्रह्म की प्राप्ति था। भक्ति के यह पद घर–घर में प्रचलित हो गए। इनका प्रभाव इतना दीर्घव्यापी था कि यह आज भी जीवित हैं।

''संगीत रत्नाकर'' में पंडित शारंगदेव के अनुसार

**मार्गी देशीति तद् द्वेधा तत्र मार्गः सः उच्चयते।**
**यो मार्गितो विरिञ्चय्यायैः प्रयुक्तो भरतादिभिः।।**

(संगीत रत्नाकर भाग 1 श्लोक संख्या 22 पृ. संख्या 10)

इस श्लोक के अनुसार मार्ग संगीत का प्रयोग ब्रह्मा जी के बाद भरत ने किया। यह संगीत अत्यंत कड़े नियमों द्वारा जकड़ा हुआ था और आगे चलकर इसका प्रचार–प्रसार कम हो गया। मोक्ष प्राप्ति हेतु योगियों द्वारा कड़ी साधना व तपस्या की जाती है। मानव नाड़ी तंत्र या सूक्ष्म नाड़ी तंत्र में कुण्डलिनी शक्ति का जागरण कर योगी परब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं। योगियों ने भी शक्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाने में संगीत को सहायक माना है। इसलिए संगीत को नाद योग माना गया है। मूलाधार स्थित कुण्डलिनी नाद उपासना से विभिन्न चक्रों को भेदती हुई ऊर्ध्वगति को प्राप्त होती है। ओंकार साधना का विशेष महत्व बताया गया है। ॐ जो तीन वर्णों से मिलकर बना है – अ, ऊ और म, मानव नाड़ी तंत्र पर स्थित है। इसके उच्चारण से जीवशक्ति परमशक्ति से एकाकारित होते हुए परब्रह्म को प्राप्त करती है जो कि मोक्ष प्राप्ति का उत्तम साधन है। **आदि शंकराचार्य** कृत निम्न स्त्रोत नाद की ऊँकार साधना के द्वारा नाद के अनेक रूप से एक परम शक्ति से एकाकार होने की ओर इंगित करते हैं –

**ऊँकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः**
**कामदं मोक्षदं चैव ऊँकाराय नमो नमः।**
**एको देव इति श्रुत्या जगत्सर्व तदाकृति।**
**तद्भिन्नमन्यन्नास्तेव वेदान्तैकविनिश्चितम्।।57।।**

(शिव पंचाक्षर स्तोत्र से उद्धृत)

**संदर्भ –**


1. संगीत रत्नाकर–पंडित शारंगदेव।
2. भारतीय संगीत का दर्शन परक अनुशीलन–डॉ. विमला मुसलगांवकर, प्रथम संस्करण जुलाई 1995 संगीत रिसर्च अकादमी, कोलकाता
3. भारतीय संगीत का इतिहास–डॉ. शरदचंद्र श्रीधर परांजपे, चौखंबा भवन,, वाराणसी।
4. योग दर्शन महर्षि पतंजलि कृत हरि कृष्ण दास गोयंका – गोविंद भवन, गीता प्रेस, गोरखपुर।
5. चक्र एवं कुंडलिनी – रमेश चंद्र शुक्ल, पुस्तक महल, दिल्ली।



लेखक –प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष (गायन),
भातखण्डे राज्य संस्कृति विश्वविद्यालय लखनऊ है।

आलेख

# नाद ब्रह्म का संगीतिक महत्व

डॉ. राजेश शर्मा

भारतवर्ष जिसे सम्पूर्ण विश्व में जगद्गुरु होने का गौरव प्राप्त हुआ उसका आधार यहाँ का अध्यात्म एवं दर्शन है। अब अध्यात्म भी दो रूपों में विकसित हुआ एक साकार और दूसरे निराकार उपासना के रूप में, जहाँ तक निराकार की उपासना का विषय है वहाँ कोई मूर्ति, प्रतिमा एवं उपासना का माध्यम नहीं है। दोनों ही उपासना हेतु नाद का महत्व सर्वाधिक है। क्योंकि मनीषियों ने कहा है –

**''ना नादेन बिना गीतम्**
**ना नादेन बिना स्वरः, ना नादेन बिना नृत्यम,**
**तस्मान्नादात्मकं जगत्''**

अर्थात– नाद के बिना न स्वर है न गीत है न नृत्य है। बल्कि समस्त जगत का आधार नाद ही है। इसी नाद से स्वर, वर्ण शब्द, भाषा अस्तित्व में आये, जिस के आधार पर हम अपने मनोभाव विभिन्न भाषाओं के द्वारा व्यक्त कर पाते है। यह आलेख भी इसी नाद की कृपा का प्रतिपालन है।

हमारे सन्तों ने ही नही बल्कि वैज्ञानिकों ने भी यह स्वीकारा है कि समस्त ब्रह्माण्ड में एक विशेष ध्वनि सुनाई पड़ती है, जिसे प्रणव नाद के रूप में सुना व स्वीकारा गया है। यहाँ तक कि 'नासा' शोध केन्द्र के द्वारा सूर्य ध्वनि को 'ॐ' ध्वनि के रूप में रिकार्ड भी किया गया है। श्री मद्भागवत गीता में कहा गया है कि ''ॐ इति एकाक्षर ब्रह्म ''भाव ही ॐ की नादोत्पति का मूल दैविक स्त्रोत है

नाद अपने दो रूपों आहत और अनाहत में व्यवहरित होता है। अनाहत नाद तो पिण्ड में गुंजित सूक्ष्म ध्वनि है, जिसे यौगिक प्रक्रिया द्वारा सुना जा सकता है और ॐ आकाश एवं सूर्य मण्डल के भीतर में हो रही भीतरी ध्वनि तरंगों को विभिन्न वाद्यों जैसे – घंटा, शंख, वंशी एवं बादलों की गडगडाहट जैसी ध्वनियों के रूप में सुना जाता है। बाहरी जगत के व्यवहार में चाहे वाक्य रूप हो या गेय रूप हो, आहत नाद ही कार्य करता है।''योगशिखोपनिषद्'' में कहा गया है कि –

**''न नादेन बिना ज्ञानं, न नादेन बिना शिवः।**
**नादरूपं परम् ज्योतिर्नाद रूपी स्वयं हरिः।''**

अर्थात– नाद के बिना कोई ज्ञान नहीं। नाद ही शिव अथवा मंगलरूप है। नाद स्वयं ज्योति स्वरूप है नाद और हरि अभिन्न है। इसी नाद के विषय में **आदिशंकराचार्य जी** का कहना है –

**नादानुसंधान नमोस्तु तुभ्यं त्वां साधनं तत्त्वपदस्य जाने,**
**भवत्प्रसादात् पवनेन साकं, विलीयते विष्णुपदे मनो में**

अर्थात–हे नाद तुम्हे नमस्कार है मैं तुझे तत्व पद की प्राप्ति का आधार जान गया हूँ। तुम्हारे प्रसाद से मेरा मन सप्राण विष्णु पद में लीन हो जाता है। वास्तव में प्रत्येक युग में तत्वेत्ताओं ने नाद की महिमा को समझा और परमात्मा से एकाकार करने हेतु इसे माध्यम बनाया। योगियों का मानना है कि शरीर के जिस स्थान से सुषम्ना नाड़ी के साथ ईड़ा एवं पिंगला नाड़ी मिलती है उस स्थान को 'ब्रह्मग्रन्थि' कहते हैं, इसी स्थान से वायु द्वारा नाद की उत्पत्ति होती है। इसे ही सन्तों ने निगुर्ण ब्रह्म का सगुण रूप कहा है।'नाद' शब्द, जो कि अग्नि और प्राण का सूचक है वह इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है।

अलग–अलग मनीषियों ने लगभग नाद की पाँच अवस्थाएँ मानी है। जैसे – निश्वशब्द, परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी है। 'निश्वशब्द' अलगी अवस्थाओं का आधार सूत्र है। जिसे निराकार से साकार स्थिति में स्वीकारा गया है। 'परा' को निर्वाकार और अनाहत भी मानते है।

ये निराकार और साकार दोनों ही है। 'पश्यन्ती' को मनोगोचरी मानते है, इसे सुना नहीं जा सकता। इसका सम्बन्ध ज्ञान से है इन्द्रियों से नहीं, इसे गहन चिन्तन से अनुभव किया जा सकता है।'मध्यमा' यह पूर्णतया अनुभव की जाने की अवस्था है, जिसके लिए ध्यान अनिवार्य है।

संगीत में इसे 'सूक्ष्मनाद' कहते है।'वैखरी' इसका सम्बन्ध कण्ठ से है जो भाषा, संगीत का मूल केन्द्र है। यही से मध्यमा का श्रवणरूप, परश्रवणरूप में पहुँचता है। पं.ओंकारनाथ जी ने भी मध्यमा को ही संगीताधार माना हैं।

जिस प्रकार प्रकृति एवं मानव पर प्रकाश एवं गर्मी का प्रभाव पड़ता है और वह पोषित होते हैं उसी प्रकार नाद में विद्यमान तापीय और प्रकाशीय ऊर्जा भी सब प्राणियों पर साकारात्मक प्रभाव डालकर उनका पोषण इस प्रकार करती हैं जैसे – अन्न और जल। हमारे तत्त्वेत्ताओं ने तो संगीत को मानव की महती आवश्यकताओं में से एक माना है और कहते है

**''साहित्य संगीत कलाविहीनः।**
**साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः।।''**

अर्थात–संगीत, साहित्य और कला से रहित मनुष्य बिना पूंछ के साक्षातपशु है। संगीत मनुष्य की ही नहीं बल्कि समस्त प्राणधारियों की सम्पदा है, जिसे वह अपने–अपने ढंग से उपयोग करते हैं। 'नारद संहिता' में नारद जी कहते हैं कि पक्षी, भ्रमर, पतंगे एवं मृग आदि जीव जन्तु भी गायन करते रहते हैं एवं गीत ब्रह्माण्ड व्यापी है।

संगीतोपयोगी नाद, जिसे हम स्वर से सम्बोधित करते हैं ये मुख्यतः सप्त धाराओं को प्रवाहित होना है। जब भी कोई संगीतज्ञ स्वर उपासना की समाधि में बैठता है तो वास्तव में ये नाद ब्रह्म की उपासना का भी पर्याय है। इस नाद ब्रह्म की उपासना के द्वारा वह शक्तियों की उपासना का प्रसाद प्राकृतिक रूप से ही प्राप्त कर लेता है और जब ये नाद उपासना ऐसे साहित्य में परिपूर्ण हो, जिसमें कि 'नाद ब्रह्म' का स्पष्ट वर्णन हो तो साधक के लिए लक्ष्य तक गमन करना अति सरल हो जाता है। यहाँ लेखक के द्वारा ''कृष्णरंग'' उपनाम द्वारा स्वयं रचित ख्याल की दो बंदिशें प्रस्तुत की जा रही है, जिनके साहित्य में नाद ब्रह्म का महत्व एवं महिमा को श्रद्धेय भाव से व्यक्त किया गया है।

प्रथम बंदिश जो कि राग ''मधुवन्ती'' में ''ताल एक ताल'' में निबद्ध है, जिसकी स्थाई में नाद की आराधना करने का निर्देश किया गया है और साथ ही साथ ये भाव भी स्पष्ट किया गया है कि नाद ही समस्त जगत का आधार सूत्र है। अन्तरे में नाद को ब्रह्म और ब्रह्म को नाद का स्वरूप बताया गया है और साथ ही साथ नाद के आदि से अन्त और निराकार अस्तित्व को दर्शाया गया है।

दूसरी बंदिश जो कि 'रागेश्री' राग में 'ताल तीन ताल' में निबद्ध है, इसकी स्थाई में नाद की महिमा, जो कि अपरम्पार है और इतनी विशाल है कि जिस पर विचार करना जनसाधारण के लिए सम्भव नहीं है, का भाव दर्शाया गया है।

आगे अंतरे में अनाहत नाद की तरफ इशारा करते हुए बताया गया है कि ये नाद हर साधक के घट के भीतर निरन्तर बजता है और इसी नाद में ब्रह्म का स्वरूप विराजमान है, जिस कारण ये नाद अपार है।

उपरोक्त वर्णन से नाद के ब्रह्म स्वरूप का अस्तित्व स्वतः परिलक्षित होता है। कोई इसे अध्यात्मिक परिवेश में घट के भीतर कठिन साधना द्वारा सुनने का प्रयास करता है और मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, तो कोई इसके आहत स्वरूप की साधना द्वारा जप, तप, भजन, संगीत एवं उपासना के द्वारा उस पराशक्ति से एकाकार होने का प्रयास करता है।

भले कोई भी स्वरूप या अवस्था का चयन साधक करे, लक्ष्य तो एक ही है, जो नाद के ब्रह्म तत्व को उजागर कर उसके निहित पारब्रह्म परमेश्वर का दर्शन करना। आगे क्रमशः दोनों बंदिशों की स्वरलिपि संगीत–जिज्ञासुओं की पिपासा को तृप्त करने की चेष्टा से अपनी यथा क्षमता साहित्य सहित दी जा रही है –

**मधुवन्ती द्रुत एकताल**

| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 | 11 | 12 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | स्थाई | | | | | | |
| प | मं | प | (म)ग[ | – | (रे)स | रे | – | स | प | मं | मं |
| ना | ऽ | द | को | ऽ | अ | रा | ऽ | ध | रे | म | न |
| (रे)नि | – | स | (म)ग[ | मं | प | नि | – | सं | रेंसं | निध | पमं |
| नां | ऽ | द | ज | ग | ता | धा | ऽ | र | हैऽ | ऽऽ | ऽऽ |
| x | | 0 | | 2 | | 0 | | 3 | | 4 | |
| | | | | | अन्तरा | | | | | | |
| प | मं | प | (म)ग | – | मं | प | नि | नि | सं | – | – |
| ना | ऽ | द | ब्र | ऽ | ह्म | रु | ऽ | प | है | ऽ | ऽ |
| (रे)नि | नि | सं | (म)ग | – | रेंसं | रें | नि | सं | ध | – | प |
| ब्र | ऽ | ह्म | रु | ऽ | पऽ | ना | ऽ | द | है | ऽ | ऽ |
| प | मं | प | ग | – | रेस | रे | – | स | प | – | मं |
| कृ | ऽ | ष्ण | रं | ऽ | गऽ | ना | ऽ | द | आ | ऽ | दि |
| सं | – | नि | ध | मं | प | नि | – | सं | रेंसं | निध | पमं |
| अं | ऽ | त | नि | रा | ऽ | का | ऽ | र | हैऽ | ऽऽ | ऽऽ |
| x | | 0 | | 2 | | 0 | | 3 | | 4 | |

**साहित्य**

**स्थाई:** नाद को अराध रे मन
नाद जगताधार है
**अन्तरा:** नाद ब्रह्म रूप है
ब्रह्म रूप नाद है
'कृष्णरंग' नाद आदि अंत निराकार है।

**साहित्य**

स्थाई: नाद की महिमा अपरम्पार, कोई न साके जिसे बिचार,
अन्तरा: नाद निरंतर घट में बाजे, नाद में ब्रह्म स्वरूप बिराजै, कृष्णरंग है नाद अपार।

लेखक- संगीत विभाग गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर हैं।

**राग ( रागेश्री ) तीन ताल मध्यलय**

| 9 | 10 | 11 | 12 | 13 | 14 | 15 | 16 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | स्थाई | | | | | | | | | | |
| गुम | ध | ग | म | रे | रे | नी | सा | ग | ग | ग | ग | म | – | रे | सा |
| नाऽ | ऽ | द | की | म | हि | मा | ऽ | अ | प | र | म | पा | ऽ | र | ऽ |
| नी | सा | ध़ | नी | स | म | ग | ऽ | म | ध | – | नी | सां | – | नी | ध |
| को | ऽ | ई | न | सा | ऽ | के | ऽ | जि | से | ऽ | बि | चा | ऽ | र | ऽ |
| 0 | | | | 3 | | | | X | | | | 2 | | | |
| | | | | | अन्तरा | | | | | | | | | | |
| ग | म | ध | नी | सां | – | सां | सां | सां | सां | सां | रें | नी | ध | सां | – |
| ना | ऽ | द | नि | रं | ऽ | त | र | घ | ट | में | ऽ | बा | ऽ | जे | ऽ |
| ध | नी | सां | गं | गंमं | – | रें | सांसां | सां | – | सां | रें | नी | – | ध | – |
| ना | ऽ | द | में | ब्रह | ऽ | म | स्वऽ | रु | ऽ | प | बि | रा | ऽ | जे | ऽ |
| सां | – | नीनी | ध | – | नी | ध | म | ग | – | ग | म | रे | – | सा | सा |
| कृ | ऽ | ष्णऽ | रं | ऽ | ग | है | ऽ | ना | ऽ | द | अ | पा | ऽ | ऽ | र |
| 0 | | | | 3 | | | | X | | | | 2 | | | |


# पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

## पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

**'कला समय'** के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

**'कला समय' की एजेंसी के नियम-** ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

**स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें-** जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

**लेखकों/कलाकारों से** ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

**प्राथमिकता के साथ :** Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

**अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 120/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।**

**-संपादक**

आलेख

# नाद ब्रह्म और संगीत

डॉ.राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल

नाद-ब्रह्म की उपासना के दो मार्ग हैं - योग और संगीत। योगी जहां अनाहत (अनहद) नाद की साधना में निमग्न रहता है, वहीं संगीत-साधक आहत नाद की स्वर-लहरियों में डूबा रहता है। साधना के मार्ग भले ही दोनों के एक-दूसरे के विपरीत प्रतीत होते हैं किंतु दोनों का ही समान लक्ष्य ब्रह्मानंद की प्राप्ति होता है। नाद चाहे आहत हो अथवा अनाहत, ब्रह्म-रूप में ही उसे देखा जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि फिर 'ब्रह्म' क्या है। वह कैसा है। सगुण है या निर्गुण। इसका चिंतन करने पर हमारे ऋषि-मुनियों और विविध संप्रदायाचार्यों की अलग-अलग अवधारणाएं देखने में आती हैं। आदि शंकराचार्य जी के अद्वैत संप्रदाय में निर्गुण रूप की मान्यता है तो श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत संप्रदाय में उसे शंकर मत के उलट सगुण माना गया है। जीव और जगत् को उसके देह बताते हुए उसे दोनों से नित्य युक्त कहा गया है। श्री निंबार्काचार्य के द्वैताद्वैत मतानुसार ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों में है। ब्रह्म और जीव (अर्थात् चेतन) एवं जड़ (अर्थात् अचेतन) एक दूसरे से अत्यंत भिन्न भी हैं और अत्यंत अभिन्न भी। श्री मध्वाचार्य के द्वैत संप्रदाय में ब्रह्म और जीव सर्वथा पृथक् बताए गए हैं तो महाप्रभु वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत संप्रदाय में ब्रह्म को शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप बताते हुए उसे समस्त विरुद्ध धर्मों का आश्रय कहा है। ब्रह्म में परिमाण होता भी है और नहीं भी। कहने का आशय यही है कि ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा हर किसी की रही है। हम यहां केवल **आद्य शंकराचार्य जी** को उद्धृत करते हुए ही ब्रह्म को समझने की चेष्टा करेंगे। 'ब्रह्मसूत्र'के प्रारंभ में ही ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा या उत्कंठा व्यक्त की गई है.

**'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'**

(ब्रह्म-सूत्र-भाष्य,आदि शंकराचार्य,1/1/1)

**आद्य शंकराचार्य जी** वेदांत मीमांसा-शास्त्र के इस आदि सूत्र में 'अथ' शब्द का अर्थ 'क्रम' के रूप में लेते हैं, न कि 'आरम्भ' के रूप में: क्योंकि ब्रह्म-जिज्ञासा कोई वस्तु नहीं है, जिसका आरम्भ किया जा सके। आगे वे कहते हैं कि-

'जन्माद्यस्य यत:'

(वही, 1/1/2)

इसका अर्थ उसके जन्म, स्थिति और नाश से है।

ब्रह्म के प्रमाण के लिए शास्त्र-ज्ञान अति आवश्यक है।

**आद्य शंकराचार्य** द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप चिन्मय, एकरस, अखंड और अद्वितीय है। वह निर्विशेष है। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है और दृश्यमान जगत् मिथ्या है। यह माया का प्रपंच मात्र है। दृश्य का निषेध हो जाने पर निषेध की सीमा में जो अनुच्छिष्ट अवशिष्ट तत्त्व शेष रहता है, वही ब्रह्म है। इसीलिए पदावली आदि से ब्रह्म का निरूपण असंभव है। हां, अचिंत्य, अग्राह्य और अलक्षणादि निषेधात्मक पदावली से हो सकता है। पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म सगुण नहीं, निर्गुण है। श्रुतियों में भी केवल व्यवहारिक दृष्टि से उपासना की सिद्धि के हेतु ही सगुण ब्रह्म का निरूपण है।

आद्य शंकराचार्य कहते हैं कि -

**''अतश्चान्यतरलिंगपरिग्रहेऽपि समस्तविशेषरहितं निर्विकल्पकमेव ब्रह्म प्रतिपत्तव्यं न तद्विपरीतम्।**

**सर्वत्र हि ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनपरेषु वाक्येषु 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' इत्येवमादिषु अपास्त समस्तविशेषमेव ब्रह्मउपदिश्यते।''**

(शारीरिक भाष्य 3/2/11)

अर्थात्-ब्रह्म के सगुण व निर्गुण वर्णन प्राप्त होने पर भी समस्त विशेष रहित एवं विकल्प रहित ब्रह्म के निर्गुण या निराकार रूप को ही मानना चाहिए, इसके विपरीत रूप (सगुण) को नहीं क्योंकि श्रुतियों में ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले वाक्यों में सर्वत्र उसका उल्लेख अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय आदि निर्विशेष रूप में ही हुआ है।

नाद-विवेचन के संबंध में परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद्

**आद्य शंकराचार्य** विरचित 'योगतारावली' मात्र 29 श्लोकों में निबद्ध एक छोटा-सा ग्रंथ है, जिसके गुरु-वंदना रूपी प्रथम श्लोक के तुरंत बाद वे लिखते हैं कि-

**''सदाशिवोक्तानि सपादलक्ष -**
**लयावधानानि च संति लोके।**
**नादानुसंधानसमाधिमेकं**
**मन्यामहे मान्यतमं लयानाम्।।''**

सदाशिव द्वारा प्रोक्त एक लाख पच्चीस हजार लय योग इस लोक में हैं। इन सब लयों में एकमात्र नादानुसंधान-समाधि (नादानुसंधान-पूर्वक या नादानुसंधान से युक्त समाधि)को (हम) सर्वोच्च लय के रूप में समझते हैं।

नादानुसंधान के विषय में इसी ग्रंथ का चतुर्थ श्लोक इसकी महत्ता को सिद्ध कर देता है.

**''नादानुसंधान नमोस्तु तुभ्यं**
**त्वां मन्महे तत्त्वपदं लयानाम्**
**भवत्प्रसादात् पवनेन साकं**
**विलीयते विष्णुपदे मनो मे।।''**

अर्थात्- हे नादानुसंधान, तुम्हें नमस्कार है। लयों में तुम ही तत्त्व पद हो . ऐसा हम समझते हैं। तुम्हारी प्रसन्नता (स्वच्छता, निर्मलता) होने पर वायु (प्राणवायु) के साथ मेरा मन विष्णु पद में विलीन होता है।

चूंकि इस नाद की उपासना के दो मार्ग हैं -योग और संगीत। अत: योग के संबंध में कुछ चर्चा आवश्यक हो जाती है।

'श्वेताश्वतरोपनिषद्' के भाष्य में **आद्य शंकराचार्य जी** कपिल मुनि को सांख्य-शास्त्र का आदि प्रवर्तक कहते हैं। सांख्य-शास्त्र का ही क्रियात्मक स्वरूप योग है। जिस शास्त्र के सैद्धांतिक स्वरूप को हम सांख्य-शास्त्र के नाम से जानते हैं, उसी का क्रियात्मक स्वरूप योग है। बहुधा लोगों की यह भ्रांत धारणा है कि इसके प्रवर्तक महर्षि पतंजलि हैं, जबकि ऐसा नहीं है। सांख्य-शास्त्र एक तत्त्व-सिद्धांत है और योग इस तत्त्व तक पहुंचने का मार्ग। सांख्य ज्ञान-योग है और योग कर्म-योग है। महर्षि पतंजलि पूर्व से प्राप्त इसी ज्ञान को हमें क्रियात्मक रूप से सिखाते हैं। कहने का आशय यही है कि इन दोनों में अभेद है। दोनों के साधक पहुंचते एक ही जगह पर हैं।

योग की महत्ता बतलाते हुए ''श्रीमद्भगवद्गीता'' में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि बाकी सब छोड़कर योगी बन जाओ। उसका स्थान सर्वोच्च है। वह तपस्वियों, ज्ञानियों और यज्ञादि करने वालों से भी अधिक योग्य है।

यह हम सभी जानते हैं कि योग के अष्ट अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,धारणा, ध्यान और समाधि हैं। अष्टांग योग द्वारा इस समाधि अवस्था को पाने के लिए पहले पूर्व के सप्त सोपानों पर आरोहण करना आवश्यक है तभी सफलता संभव है।

यह भी सत्य है कि परमावतार श्रीकृष्ण को हम एक महानतम् योगी के रूप में भी देखते हैं और संगीत के त्रिविधात्मक स्वरूप को समेटे रासलीला के महानायक के रूप में भी। वह योगेश्वर भी हैं और रसेश्वर भी। एक ओर वह बाल्यावस्था में ही अत्याचारी मामा कंस सहित अनेकानेक असुरों का विनाश कर उनको मोक्ष प्रदान करते हैं। राक्षसी पूतना के स्तनपान करते हुए ही प्राण भी हर लेते हैं और मां जैसी सद्गति भी प्रदान कर देते हैं, कालिया नाग के शीश पर चढ़कर नृत्य करते हुए उसका मर्दन कर यमुना को प्रदूषण मुक्त करते हैं, देवराज इन्द्र का मान-मर्दन करने के लिए वह गिरिराज को ही अपनी (कनिष्ठिका) कन्नी उंगली पर धारण कर ब्रजवासियों की रक्षा करते हैं तो दूसरी ओर उनकी वेणु का मधुर निनाद सुन ब्रज-वनिताएं अपनी सुध-बुध बिसराकर, समस्त गृह-कार्यों का परित्याग कर और लोक-लाज का कवच उतारकर उनकी खोज में परकीया बन उनको पाकर महारास रचाती हैं, कालिंदी की कल-कल निनाद करती लहरें भी एकबारगी गतिशून्य हो जाती हैं। है न अद्भुत और आश्चर्यजनक! महारास में श्रीकृष्ण से जब श्रीराधा रानी अपने पांवों के थक जाने की कहती हैं तो वे उन्हें अपने कंधों पर बिठा लेने की बात कह तो देते हैंए किंतु जैसे ही वह बैठने का उपक्रम करती हैं, भगवान् अंतर्धान हो जाते हैं। मैं जब भी कभी इस पर चिंतन करता हूं तो यही पाता हूं कि श्रीकृष्ण का अंतर्धान होना यही सिद्ध करता है कि वह सगुण ही नहीं, निर्गुण भी हैं। कितना खोजती हैं गोपियां उन्हें।

सही मायने में देखा जाए तो श्रीकृष्ण का योगिराज वाला रूप भक्तों को उतना नहीं लुभा पाया, जितना रसेश्वर रूप। कारण कि अनाहत की साधना मुक्तिदायक तो है किंतु रंजक नहीं है। इसके विपरीत आहत नाद व्यावहारिक रूप से रंजक के साथ-साथ भव-भंजक भी बन जाता है। यही कारण है कि उनको संगीत इतना प्रिय है कि वह देवर्षि नारद द्वारा हर समय अपनी उपस्थिति के पूछने पर कह उठते हैं कि

**''नाहं वसामि वैकुंठे, योगिनां हृदये न च।**
**मद्भक्ता यत्र गायन्ति,तत्र तिष्ठामि नारद।''**

(पद्म पुराण उणं 14/23)

श्रीमद्भगवद्गीता में भी वह

**''वेदानां सामवेदोऽस्मि''**

(श्रीमद्भगवद्गीता अ.10/22)

'अर्थात्-वेदों में मैं सामवेद हूं' कहकर संगीत की महत्ता प्रतिपादित करते हैं।

चूंकि संगीत गायन, वादन और नृत्य का आधार अनाहत नाद न होकर आहत नाद है, अत :अब आहत नाद पर चिंतन करते हैं। आहत नाद स्वान्त: सुखाय तो है ही, जन-जन के चित्त का अनुरंजन करने की शक्ति भी उसमें निहित होने से वह परान्त: सुखाय भी बन जाता है। इसके संबंध में यह उक्ति भी प्रचलित है कि -

**''नंदति इति नाद:''**

श्रीकृष्ण का मुरली मनोहर अथवा रास-रसेश्वर रूप जन-जन को इसलिए भी अधिक आकर्षित कर पाया कि स्वर में ईश्वर का वास जो होता है। उनका ऐसा रूप न केवल उनकी जन्मस्थली मथुरा या ब्रज मंडल अथवा उत्तर भारत के भक्तों को रास आया बल्कि दक्षिण भारत सहित सम्पूर्ण भारतवर्ष की जनता के दिल में रच-बस गया। इसी कारण ब्रज-संस्कृति या कृष्ण-संस्कृति ही समूचे भारतवर्ष की संस्कृति बन गई और इतनी तेजी से चतुर्दिक प्रसारित हुई कि पूरा विश्व उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। और फिर कृष्ण ही क्या, सनातन धर्म में जितने भी देवी-देवताओं की हम पूजा या आराधना करते हैं, सभी के हाथों में कोई-न-कोई वाद्य-यंत्र सुशोभित है। संगीत की महत्ता का इससे बड़ा प्रमाण और हो भी क्या सकता है। स्वयं शिव के हस्त में डमरू सुशोभित है और वह नटराज भी हैं।

संगीत, काव्य और साहित्य का एक अकिंचन सेवक होने के नाते सगुण और निर्गुण का मैं जिस रूप में अनुभव कर पाया हूँ, उसके अनुसार सामने खड़े किसी व्यक्ति को हम जितना देख पा रहे हैं, वह उसका सगुण (साकार) रूप है और उसका न दिखने वाला पृष्ठ भाग निर्गुण (निराकार) रूप है, किंतु वह भाग भी है तो उस मनुष्य के शरीर का ही हिस्सा।

निष्कर्षत: यह समझा जा सकता है कि **''अगुनहिं-सगुनहिं नहिं कछु भेदा।''** ब्रह्म की सत्ता का अनुभव सभी मनुष्य अपने-अपने अनुभव के आधार पर करते हैं, पर करते सभी हैं। संगीत के स्वर भी दृष्टिगत् तो नहीं होते किंतु उनका प्रभाव मानव-मात्र ही क्या, चराचर प्राणियों और निर्जीव वस्तुओं पर भी सहज ही देखा जा सकता है। सच तो यह है कि नादब्रह्म की साधना से प्राप्त नादानंद ''ज्यों गूंगेहि मीठे फ ल कौ रस,अंतरगत ही भावै'' की भांति अनुभूतिजन्य तो है, उसकी अभिव्यक्ति सामर्थ्य से परे है।

-डॉ.राजेंद्र कृष्ण संगीत महाविद्यालय एवं शोध संस्थान
''संगीत सदन''94, महाविद्या कॉलोनी, द्वितीय चरण, मथुरा
(उ.प्र.) 281 001, मो.: 98972 47880 , 88514 02815

## 'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क की सूचना

प्रिय पाठकों,

सदस्यों से अनुरोध है कि अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन (15 वर्षीय) सदस्यों की सदस्यता अवधि के 15 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

**सदस्यता शुल्क**

| | | | |
|---|---|---|---|
| **वार्षिक** | : | 300 (व्यक्तिगत) | 350 (संस्थागत) |
| **द्वैवार्षिक** | : | 600 (व्यक्तिगत) | 700 (संस्थागत) |
| **चार वर्ष** | : | 1000 (व्यक्तिगत) | 1200 (संस्थागत) |
| **आजीवन** (15 वर्ष के लिए) | : | 10,000 (व्यक्तिगत) | 12,000 (संस्थागत) |

**( कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें )**

**विशेष :** 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

आलेख

# ईश्वरवाद एवं नाद-ब्रह्म : एक विवेचन

डॉ. रविदीन रामसमूज

हिन्दू धर्म के भीतर कई अलग-अलग दर्शन हैं, जो विविध प्रकार से ईश्वर की व्याख्या करते हैं। इन विभिन्न आस्तिक-प्रणालियों के कारण हिंदू ईश्वर की पूजा करने के विभिन्न तरीकों का पालन करते हैं। ईश्वर की अवधारणा से संबद्ध चार वाद या संप्रदाय हैं –

1. द्वैतवाद, 2. अद्वैतवाद, 3. त्रैतवाद, 4. विशिष्टाद्वैत

**द्वैतवाद :** मध्वाचार्य ने इस दर्शन का प्रतिपादन किया। यह दर्शन ईश्वर या ब्रह्म और आत्मा को दो अलग-अलग संस्थाओं और भक्ति को मोक्ष का मार्ग मानता है। द्वैत दर्शन के अनुसार सभी आत्माएं अनेक हैं और ईश्वर एक है। मध्वाचार्य ने कहा कि कोई भी दो आत्माएं एक जैसी नहीं होती हैं, उनमें से प्रत्येक की अलग-अलग विशेषताएं हैं। सुख और दुख की अलग-अलग अवस्थाएं हैं। मोक्ष प्राप्त करने पर आत्मा कुछ मायनों में ईश्वर के समान हो जाती है, फिर भी ईश्वर से कमतर होती है।

**अद्वैतवाद :** आदि शंकराचार्य को इस दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है। यह वेदांत का सबसे पुराना संप्रदाय है। इसमें कहा गया है कि ब्रह्म, ईश्वर, एकमात्र सत्य है और दुनिया एक भ्रम अथवा माया है। वास्तविकता का अज्ञान ही दुख का कारण बनता है और मोक्ष केवल सच्चे ज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है। यह दर्शन कहता है कि आत्मा और ब्रह्म अथवा ईश्वर दोनों एक ही हैं और इसे समझने से मोक्ष अथवा मुक्ति मिलती है। शंकर के दर्शन का सार ''ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या, जीव ब्रह्मैव न अपरा'' अर्थात् ब्रह्म या ईश्वर ही सत्य है, यह संसार असत्य है और आत्मा ब्रह्म से अलग नहीं है।

**त्रैतवाद :** इस दर्शन का समर्थन महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती ने किया है, जिसमें कहा गया है कि इस दुनिया में तीन अलग-अलग संस्थाएँ हैं: प्रकृति – सत्य होना, आत्मा-सत्य और चित्त (सत्य और चेतना) और परम-आत्मा, ईश्वर-सत्य, चित्त और आनंद (सत्य, चेतन और आनंद) होने के नाते यह दर्शन इस बात का समर्थन करता है कि आत्मा शरीर में आती है और इस दुनिया का आनंद लेते हुए मोक्ष से और दूर जा सकती है। यह जन्म और पुनर्जन्म के चक्र कारण बनता है।

**विशिष्टाद्वैत :** इस दर्शन का प्रतिपादन रामानुजाचार्य ने किया था। विशिष्टाद्वैत का शाब्दिक अर्थ है अद्वितीय अद्वैत, जो कुछ संशोधनों के साथ अद्वैत है, जबकि यह ब्रह्म, ईश्वर को एकीकृत पूर्ण के रूप में स्वीकार करता है। इसमें कहा गया है कि ईश्वर या भगवान कई रूपों से प्रभावित हैं। रामानुज का दर्शन वेदों और भागवत पुराण का सम्मिश्रण है। यह दर्शन अद्वैत और द्वैत के बीच में है जहाँ ईश्वर और आत्मा आग और चिंगारी की तरह अविभाज्य हैं। मुक्ति, मुक्ति में, आत्मा ईश्वर को समझती है लेकिन उसमें विलीन नहीं होती है।

मैं त्रैतवाद के संबंध में ईश्वर की अवधारणा का विश्लेषण करूंगा। ऋग्वेद इस दर्शन का समर्थन करता है –

**द्वा सपुर्णा सयुजा सस्वाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।**
**तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।।**
**( 1, 164, 20 )**

दो खूबसूरत पंखों वाले पक्षी जो एक दूसरे के दोस्त की तरह हैं। वे उसी वृक्ष की शरण में जाते हैं। एक पक्षी पेड़ के पके फलों को खाता है, दूसरा पक्षी फल नहीं खाता बल्कि देखता ही रह जाता है।

फल खाने वाला पक्षी व्यक्तिगत आत्मा है, जो पक्षी देख रहा है वह ईश्वर भगवान है। पके फल कर्म फल हैं और प्रकृति वृक्ष है।

गीता का श्लोक भी इस दर्शन का समर्थन करता है –

**उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।**
**परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः।।**

फिर भी इस शरीर में एक और सर्वोच्च भगवान है जो दर्शक है, जो अनुमति देता है, सहायक और व्यवस्थापक जो सुपर आत्मा, ईश्वर के रूप में जाने जाते हैं। यहाँ इस श्लोक में शरीर (पदार्थ) में आत्मा निवास करती है और इस शरीर में ईश्वर या भगवान भी निवास करते हैं इसलिए यह श्लोक त्रैत वाद का भी समर्थन करता है।

'तुलसी रामायण' के अरण्य कांड का निम्न दोहा संख्या 23 भी त्रैतवाद का समर्थन करता है –

**माया, ईश न आपुकहँ, जान कहिय सो जीव।**
**बन्धमोक्ष प्रद सर्वपर, माया प्रेरक सीवं।।**

जो माया (प्रकृति), ईश्वर (भगवान) और स्वयं को नहीं पहचान सकता, उसे आत्मा के रूप में जानें। जो बंधन और मुक्ति देता है, वह माया (प्रकृति) का स्वामी ईश्वर (भगवान) है।

**जीव रूप ईश्वर भिन्न है, भिन्न धर्म अरु रूप।**
**है अभिन्न साधर्मय से, व्यापक व्याप्या स्वरूप।।**

महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश', अध्याय 7 में ईश्वर और आत्मा की लंबी चर्चा की है। निम्नलिखित सिर्फ एक संदर्भ है।

ईश्वर और आत्मा अलग-अलग संस्थाएं हैं। भिन्न गुण उन्हें एक अविभाज्य संबंध का आनंद लेने के लिए प्रेरित करते हैं क्योंकि एक (ईश्वर) व्यापक है और दूसरा (आत्मा) व्याप्त है।

मैंने आपको त्रैतवाद के समर्थन में विभिन्न धार्मिक ग्रंथों से कई उद्धरण दिए हैं, अब हम ईश्वर (भगवान) की प्रकृति के बारे में अधिक विस्तार से देखेंगे। यजुर्वेद -

**तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।**
**तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापति।।( 32, 2 )**

1. तत् एव अग्नि - वह ईश्वर स्फूर्तिदायक शक्ति है।
2. तत् आदित्यः - वह ईश्वर अविनाशी है।
3. तत् वायुः - वह ईश्वर जो सभी चल और अचल प्राणियों को गति देता है, समर्थन देता है और नष्ट कर देता है और सबसे शक्तिशाली है।
4. तत् चंद्रमाः - वह ईश्वर सुख का स्रोत है और दूसरों को देता है।
5. तत् एव शुक्रम् - वह ईश्वर परम पवित्र है और जिसकी कृपा से या उसे जानने से आत्मा शुद्ध होती है।
6. तत् ब्रह्म - वह जो दुनिया को सुधारता है, विकसित करता है या इसे बनाने के बाद पूर्णता लाता है।
7. ताः आपः - वह जो सभी में व्याप्त है और ब्रह्माण्ड में सर्वव्यापी है।
8. प्रजा पतिः - प्रभु हैं, समस्त सृष्टि के स्वामी हैं।

ईशोपनिषद श्लोक सं. 8-

**स पर्यगाच्छुकमकायमव्रणमस्नाविरः**
**शुद्धमपापविद्धम् कविर्मनीषी परिभूः**
**स्वयंभूर्याथानथ्यतोऽर्थान्**
**व्यवदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।**

निर्माता, ईश्वर, इस ब्रह्माण्ड को हर दिशा से व्याप्त हैं। वह सर्वशक्तिमान है, अशरीरी, घाव रहित, स्नायु-तंत्र से मुक्त, शुद्ध और दोषरहित। वह एक कवि है; यह संसार उनकी कविता है। वह बुद्धि का स्वामी है। वह प्रत्येक अणु को अपने में समाहित करता है, ब्रह्माण्ड और अकारण है क्योंकि वह स्व-अस्तित्व में है। यह रचनाशीलता से गति में है अति पुरातन वह अद्वितीय प्राणी ब्रह्माण्ड के मामलों का प्रबंधन करता है और देखता है।

मुंडक उपनिषद

**न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।**
**ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।।**

उस ब्रह्मा या ईश्वर को न तो नेत्र, वाणी, अन्य इंद्रियों, तप या कर्मों के माध्यम से प्रसन्न किया जाता है। ज्ञान के वरदान से विद्वान अपने हृदय को नकारात्मक धारणाओं से मुक्त करता है और निराकार या कलाहीन परमात्मा को अपने गहन ध्यान के माध्यम से देखता है।

हिन्दुस्तानी संगीत में, ब्रह्म को नाद ब्रह्म भी कहा जाता है। नाद का अर्थ है ध्वनि जो कंपन से उत्पन्न होती है। पतंजलि अपने 'योग सूत्र' में अध्याय 1, श्लोक 27 में कहते हैं।

**तस्य वाचकः प्रणवः।**

ईश्वर की अभिव्यंजक शब्द एवं रहस्यवादी ध्वनि 'ओम' है।

इस रहस्यवादी कंपन को 'नाद ब्रह्म' के रूप में जाना जाता है। भारतीय संगीत में धर्म और दर्शन का प्रचुर प्रभाव है, जिसके बिना वह प्राणहीन लगता है। उपरोक्त विविध वादों या मतों का संगीत में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूप से प्रभाव पड़ता है, जो कलाकार की कला में भी परिलक्षित होता है।

प्राचीन काल में संगीत का उद्देश्य आत्मा को नादब्रह्म से जोड़ना था। यह सामवेद के जप के माध्यम से महसूस किया गया, जिसे साम गान कहा जाता है। शास्त्रीय भारतीय संगीत में आज कलाकार अपनी प्रस्तुति में अपना स्वर का पैमाना या आधार स्वर स्थापित करके शुरुआत करता है। कुछ कलाकार अपने आधार स्वर या टॉनिक नोट को स्थापित करने के लिए ध्वनि 'ओम' का भी उपयोग करते हैं। जैसे ही कलाकार अपनी प्रस्तुति देता है, वह राग को विकसित करने के विभिन्न तरीकों में डूब जाता है। ऐसा करने पर वह खुद को अस्तित्व के एक अलग दायरे में पाता है जहां उसे नादब्रह्म का अनुभव होता है। कुल मिलाकर हिन्दुस्तानी संगीत आत्मा को मोक्ष या 'नाद ब्रह्म' की प्राप्ति का उत्कृष्ट मार्ग है।

- 620 एनडब्ल्यू, 79वाँ रास्ता,
पार्कलैण्ड, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.

■

आलेख

# संगीत में 'नाद-ब्रह्म' की अवधारणा

डॉ. मोहन लाल

संगीत का अस्तित्व ब्रह्मांड के अस्तित्व के आरंभ से ही माना गया है। अर्थात् जबसे ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई होगी तथा मानव सभ्यता का विकास हुआ होगा तभी से ही संगीत भी अस्तित्व में आया होगा, ऐसी प्राचीनकाल से अवधारणा रही है। ऐसा कहा जाता रहा है कि सभ्यता के साथ-साथ संगीत भी परिष्कृत हुआ है। प्राचीन समय में ऋषि-मुनि ईश्वर की आराधना आध्यात्मिक रूप से पूजा-पाठ एवं मंत्रोचारण के साथ करते थे तथा 'ॐ' शब्द स्वर का उच्चारण दीर्घ एवं लंबी ध्वनि द्वारा नाद स्थापित कर किया जाता था। इसी उच्चारण को 'नाद-ब्रह्म' एवं आध्यात्मिक ज्ञान की वृद्धि और संगीतोपासना हेतु उचित एवं उपयोगी माना गया है।

'नाद-ब्रह्म' अथवा 'शब्द-ब्रह्म' का अभिप्राय उस अनाहत ध्वनि से है, जो प्रकृति एवं पुरूष के संयोग स्थल से निरन्तर प्रसृत और निनादित होती रहती है। 'ॐ' कार वही स्वयंभू ब्रह्मनाद है। उसी से सप्त स्वर प्रस्फुटित हुए। श्रुति-शास्त्र में प्रयुक्त होने वाले उदात्त-अनुदात्त स्वरूप उसी के आरोह-अवरोह हैं। संगीत शास्त्र में आगे चलकर वे ही सा, रे, ग, म, प, ध, नि के स्वर सप्तक बन गये। सूर्य रथ के सप्त अश्व उसके प्रभा किरणों में सन्निहित रंग हैं। उसी प्रकार ब्रह्मनाद का ध्वनि-गुंजन सप्तधा स्वर लहरी में निनादित होता है[1]।''

मानव जीवन में संगीत ही एक ऐसा माध्यम है जो कि आध्यात्मिकता को बनाए रखने में सहायक है अर्थात् जीवन में आध्यात्मिकता को स्थापित करने के लिए संगीत की अहम् भूमिका रहती है। भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व में जन्म-पुनर्जन्म, पाप-पुण्य, जीवन-मरण बोध, कर्म-विचार, मुक्ति-मार्ग, आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, सौन्दर्योपासना, कलात्मक लालित्य, स्थापत्य कला, चित्रकला, नृत्यकला एवं काव्य कला में संगीत का विशेष योगदान एवं महत्व माना गया है।

ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो प्राचीनकाल से ही विभिन्न मनीषियों ने सृष्टि की उत्पत्ति नाद से मानी है। ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण जड़-चेतन में नाद व्याप्त है तथा इसी के फ़लस्वरूप इसे 'नाद-ब्रह्म' भी कहते हैं।

''**अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतवायदक्षरम्।**
**विवर्तते अर्थभावेन प्रक्रिया जगतोयतः।।**

अर्थात्-शब्द रूपी ब्रह्म अनादि, विनाश रहित और अक्षर (नष्ट न होने वाला) है तथा उसकी विवर्त प्रक्रिया से ही यह जगत भासित होता है[2]।''

भारतीय विद्वानों के अनुसार शब्द को ब्रह्म अर्थात् ईश्वर का रूप कहते हैं। 'शब्दद्वैतवाद' के अनुसार शब्द ही ब्रह्म है। सम्पूर्ण जगत शब्दमय है। शब्द की ही प्रेरणा से समस्त संसार गतिशील है। ब्रह्म की अनुभूति 'शब्दब्रह्म' अथवा 'नादब्रह्म' के रूप में भी होती है। प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनियों ने सृष्टि की उत्पत्ति 'नाद-ब्रह्म' से मानी है। उनके अनुसार सृष्टि का आधारभूत तत्त्व नाद है, जो कि ॐ कार वाचक है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की प्रत्येक चल और अचल वस्तु में नाद विद्यमान है। संगीत-दर्पण के रचयिता 'दामोदर पण्डित' ने नाद की व्याख्या इस प्रकार की है -

''**नादेन व्यंजते वर्णः वर्णात् पदाद्वचः।**
**वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत्।।**

अर्थात् नाद के योग से वर्णों का उच्चार होता है और वर्ण से शब्दों की सिद्धि होती है। शब्द से भाषा की उत्पत्ति होती है और भाषा के होने से ही जगत् के सब व्यवहार चलते है[3]।''

**संगीत से आनन्द एवं नाद ब्रह्म की ओर :**

भारतीय कलाओं में संगीत कला को सर्वोत्तम माना गया है। संगीत भारतीय संस्कृति की आत्मा व कलाओं का आदर्श रूप है। संगीत समाज का दर्पण व संस्कृति का दर्पण हैं। संगीत का सम्बंध आत्मा से है। संगीत का प्रभाव प्राणी के अन्तर्मन पर पड़ता है जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है।

हीगल के अनुसार "Music directly addresses the soul"

मानव ही नहीं सम्पूर्ण प्रकृति भी संगीतमय है। प्रकृति के कण-कण में संगीत-सरिता का कलकल 'नाद' व्याप्त है। 'ओंकार' रूप सार्वभौम सत्ता को ही 'नाद-ब्रह्म' की संज्ञा दी गई है। संगीत एक ऐसा विश्व व्याप्त स्नेह-सूत्र है, जो हर समय विश्व की प्राकृतिक विविधता और मानवीय असंगति को एक मधुरतम और मौलिक एकता की अनुभूति से आबद्ध करता है।

संगीत की व्यापकता के बारे में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा है ''कभी मुझे ऐसा लगता है कि विधाता ने हम लोगों में संगीत के संयोग का ऐसा विधान कर दिया है कि उसके बिना न तो हम जीवित रह सकते हैं और न ही कोई काम कर सकते हैं।''

प्राचीन समय में संगीत का लक्ष्य था - ''आध्यात्मिकता'' अर्थात् अपने अस्तित्व के सौन्दर्य एवं आनन्द का बोध। उपनिषद् के मतानुसार आनन्द में जीव की सृष्टि है। आनन्द में उसकी स्थिति एवं आनन्द में उसकी लय है। आलौकिक आनन्द की जो चिन्तन-धारा प्रवाहित हुई उसकी अभिव्यंजना ही 'गान' है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो हम यह कह सकते हैं कि विश्व के प्रथम ग्रंथ ''ऋग्वेद'' में कई प्रकार के वाद्य, गायन तथा नृत्य का उल्लेख मिलता है। मध्यकाल के दरबारी गायकों ने अपने साथ ही अपने आश्रयदाताओं का नाम उज्ज्वल और अमर बना दिया।

आधुनिक युग में संगीत का महत्व उतना ही मिलता है। राष्ट्रीय रंग में रंगे कितने ही दीवानों ने 'राष्ट्रीय गान' गाकर अपने देशवासियों के हृदय में देश-प्रेम की ज्वालाएँ धधका दीं। परतन्त्र भारत के लिए ''स्वतन्त्रता का आह्वान'' ''वन्दे मातरम्'' की मन-प्राण को आन्दोलित कर देने वाली गुँजार से भारत का बच्चा-बच्चा परिचित है। इस 'राष्ट्रीय गीत को गाकर कितने ही भारतीयों ने स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की आहूति आनन्दपूर्वक हँसते हुए दे दी ''झण्डा ऊँचा रहे हमारा'' के गीत गाकर एक दिन भारतीय पताका को स्वतंत्रता के मुक्त आकाश में सचमुच फहरा दिया। गांधीजी की ''वैष्णव जन तो तैने कहिए'' तथा ''रघुपति राघव राजा राम'' की पंक्तियों ने कितने ही हृदयों में अपार शक्ति और शान्ति का संचार कर आनन्दित कर दिया।

स्व. पं. विष्णुदिगम्बर पलुष्कर जी के 'राम-नाम-कीर्तन' में मनुष्य मात्र को आत्मलीन व तन्मय कर देने की सामर्थ्य थी।

संगीत मानवता का पाठ पढ़ाता है, सभ्यता और विश्वबन्धुत्व का सन्देश देता है। शास्त्रों में संगीत के विषय में कहा है:-

**''ज्ञानात् कोटि गुणं ध्यानं, ध्यानात् कोटि गुणं स्तोत्रं।**
**स्तोत्रात् कोटि गुणं जपम्, जपात् कोटि गुणं गानं।।''**

अर्थात्-ज्ञान, ध्यान, स्तोत्र, जप-तप, इन सभी से बढ़कर 'गायन' है।

संगीत की इस दिव्य शक्ति पर हमारी श्रद्धा है और केवल मनोरंजन ही नहीं जबकि 'आत्मा का साक्षात्कार' करा देने की प्रचण्ड शक्ति स्वरों में है। संसार में हर व्यक्ति आनन्द की खोज में लगा हुआ है। संसार प्राप्त आनन्द 'ब्रह्मानंद सहोदर' माना जा सकता है।

'नाद-साधना' योग की प्रथम सीढ़ी है और 'योग' मोक्ष-प्राप्ति तथा आत्म-दर्शन का एक मार्ग है। 'ॐ' का उच्चारण संगीत में महत्वपूर्ण माना गया है। वैज्ञानिकों ने भी माना है कि ''ॐ'' का उच्चारण हमारे मस्तिष्क व शरीर पर विशेष प्रभाव डालता है।

'संगीत-चिकित्सा' से यह प्रमाणित हो चुका है कि संगीत में आश्चर्यजनक 'हीलिंग' विशेषता है। मनोरोगों एवं मानसिक शान्ति में संगीत की विभिन्न विधाएँ, विभिन्न वाद्ययंत्रों की धुन प्रभावी ढंग से लाभदायक एवं उपयोगी सिद्ध हो रही है।

आनन्द की अनुभूति व मनोरंजन संगीत का महत्वपूर्ण कार्य है। चाहे इन्द्र की सभा हों, वैदिक काल हो, राजा-महाराजाओं का दरबार हो, मुग़लों के बादशाही महल हो अथवा प्रजा, सभी के मनोरंजन तथा आनन्द का प्रमुख साधन संगीत रहा है। संगीत में गायन, वादन एवं नृत्य आदि स्वर, ताल, लय, गीत, शब्द एवं सांगीतिक नाद आदि के मिश्रण से रंजकता प्रदान करते हैं जो कि आनन्द की उस चरम सीमा तक ले जाता है जिसे 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा गया है।

''रंजन' गीत का प्रयोजन है और 'रंजकता' गीत का प्राण। रंजन में बाधक अप्रासंगिक स्वरों का प्रयोग दोष है और विस्वर प्रयोग भी। समस्त स्वरशास्त्र ऐसे ही अनन्त स्वर-सन्दर्भों के निर्माण और विस्तार की ओर दिशा-निर्देशित करते हैं, जो सहृदय श्रोताओं के लिए उस अलौकिक आनन्द की सृष्टि करते हैं, जिसका 'रसन' (आस्वाद, चर्वणा) करके वे सहृदय रसिक अपनी लौकिक चिन्ताओं को सर्वथा भूल कर स्वयं आनन्दमय एवं रसरूप हो जाते हैं। श्रोताओं की वह विशिष्ट मन:स्थिति एवं चेतना ही रसास्वाद की स्थिति है4।'' अत: यही रसास्वादन की स्थिति आनंद की चरम सीमा की अनुभूति करवाती है। संगीत का रसास्वादन करके ही प्राणी आनन्दमय एवं ब्रह्मनाद में लीन हो जाता है।

''आध्यात्मवादियों के मतानुसार जिस प्रकार ब्रह्म से परे सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार वैज्ञानिकों के मतानुसार नाद के बिना भी सृष्टि की कामना असम्भव है। नाद को भी 'नाद-ब्रह्म' कहा जाता है, जो सृष्टि का मूल है। सृष्टि की रचना का उपालम्भ है। सृष्टि के प्रत्येक तत्त्व में संगीत की अखण्ड और

अक्षुण्ण धारा सदियों से प्रवाहित होती चली आ रही है और अनन्तकाल तक रहेगी[5]।''

**संगीत में संगति एवं आनंद :**

संगीत में संगत का मूल तत्त्व आनन्द को प्राप्त करना है। चाहे गायन हो, वादन हो, या नृत्य हो, सुयोग्य संगत से ही संगीत अपने पूर्ण चरम रूप को प्राप्त करता है। मानव स्वभाव सदैव भावनात्मक रहा है तथा संगीत भावनाएँ व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। जब गायन, वादन एवं नृत्य का प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुतिकरण होता है तो प्राणी इनके आपसी तालमेल एवं संगति आत्मविभोर एवं आनंद की उस चरम सीमा को प्राप्त करता है जो 'नाद-ब्रह्म' कहा जाता है।

कलाकार द्वारा उच्च कोटि की प्रस्तुतिकरण से श्रोता भी आनन्द की चरम सीमा तक पहुँचकर उसी में (दोनों) लीन हो जाते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में आनन्द को ब्रह्म का ही पर्याय माना है-

**''आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।**
**आनन्दात् ह्येय खल्विमानि भूतानि जायन्ते।**
**आनन्देन जातानि जीवन्ति।**
**आनन्दं प्रयन्त्यभिविशन्तीति।।** (तैत्तिरीय उपनिषद 3/6)

अर्थात्- आनन्द ब्रह्म है, आनन्द से ही सभी जीवन उत्पन्न होते हैं, आनन्द से ही उत्पन्न होकर जीते हैं तथा मृत्यु के उपरान्त आनन्द में ही प्रवेश करते हैं। वस्तुत: संगत की उपयोगिता गायन, वादन और नृत्य की समस्त विधाओं में समान रूप से है। 'संगति शब्द का शाब्दिक अर्थ 'अनुगमन', सहचर्य अथवा मिलन होता है। संगीत के सन्दर्भ में 'संगत' का अभिप्राय गायन, वादन अथवा नृत्य को विभिन्न वाद्यों द्वारा सहयोग देने के अर्थ से लिया जाता है[6]।''

व्यावहारिक रूप से भी जब कभी हम संगीत के कार्यक्रमों में प्रस्तुतिकरण को देखते हैं, चाहे वह भारतीय शास्त्रीय संगीत हो, सुगम संगीत हो अथवा लोक संगीत हो, इन सभी में एक-दूसरे के साथ संगति का विशेष महत्व है। संगति चाहे गायन के साथ वाद्य की हो या नृत्य की अथवा नृत्य के साथ स्वर-वाद्य हो या ताल-वाद्य। संगीत में संगति का विशेष महत्व है जो कि एक-दूसरे की पूरक है तथा यही संगति श्रोताओं को आनंद का अनुभव कराती है। यही आनंद हमें 'नाद-ब्रह्म' का ज्ञान कराता है। **महान कवि रवींद्रनाथ ठाकुर** ने कहा है - ''संगीत का मूल तत्व अतींद्रिय और अतिमानवी है। दैनिक जीवन के घटना-क्रम में बँधी हुई अंत:चेतना को वह मुक्ति की अनुभूति तक ले जाता है। क्या गायक, क्या श्रोता, दोनों ही उन क्षणों में वैराग्य की उस भूमिका के समीप जा पहुँचते हैं, जिसे ब्रह्मांड की नींव के रूप में तत्त्ववैत्ताओं ने जाना है।''

'भारतीय संगीत कोष' में संगत की परिभाषा इस प्रकार दी गई है- ''कण्ठ अथवा वाद्य-संगीत के साथ वाद्य पर ताल और छन्द निर्देशक वादन को संगत कहा जाता है। संगत का सर्वदा अनुगमन के अर्थ में व्यवहार होता है। अर्थात् वादक कण्ठ अथवा वाद्य संगीत का अनुगामी रहता है।''।

'संगति' शब्द का प्रयोग तानपुरा बजाने वाले के लिए भी होता है। अत: भारतीय संगीत के सन्दर्भ में संगत की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है - गायन, वादन अथवा नृत्य को अधिकाधिक प्रभावशाली तथा मनमोहक बनाने के लिए जब विभिन्न वाद्यों द्वारा अथवा गायन द्वारा सहयोग दिया जाता है तब इस कार्य को संगत की संज्ञा दी जाती है। संगत के दो प्रकार मुख्य रूप से माने जाते हैं -

1. स्वर-वाद्यों पर की जाने वाली संगति।
2. ताल-वाद्यों पर की जाने वाली संगति।

इस प्रकार निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि संगीत केवल आनंद का ही स्रोत नहीं है बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एक सूत्र में बाँधे रखने का माध्यम है। जीवन का कोई भी पहलू संगीत से भिन्न नहीं है तथा संगीत ही नाद-साधना एवं योग की प्रथम सीढ़ी है। संगीत-साधना से ही ब्रह्मज्ञान, मोक्ष एवं आनंद की प्राप्ति संभव है। इसीलिए कहा गया है कि प्रकृति के कण-कण में संगीत-सरिता का कलकल नाद व्याप्त है तथा 'ॐकार' रूप सार्वभौम सत्ता को ही 'नाद-ब्रह्म' की संज्ञा दी गई है।

**सन्दर्भ ग्रंथ-सूची**


1. शब्द-ब्रह्म - नाद-ब्रह्म, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, पृ.सं.-69
2. निबन्ध संगीत, लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय हाथरस, इलाहाबाद, पृ.सं.-123
3. संगीत दर्पण, दामोदर पण्डित - अनुवादक पं. विश्वम्भरनाथ भट्ट, पृ.सं.-7
4. संगीत चिंतामणि, द्वितीय खंड, आचार्य बृहस्पति, श्रीमती सुमीत्रा कुमारी एवं सुलोचना बृहस्पति, बृहस्पति पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ.सं.-99
5. भारतीय कंठ संगीत और वाद्य संगीत, गायन-वादन सुमेल, डॉ. अरूण मिश्रा, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली-110002, पृ.सं- 2
6. उत्तर भारतीय संगीत में तन्त्रवाद्यों का स्थान एवं उपयोगिता, डॉ. संगीता सिंह, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली-110002
7. भारतीय संगीत कोष, विमलाकान्त राय चौधरी, पृ.सं.-150



- लेखक : सहायक प्रोफेसर, संगीत-विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से है। मो. 9829425075

आलेख

# योग और नादब्रह्मवाद

प्रो. डॉ. सत्यवती शर्मा

भारत में प्राचीनकाल से ही शरीर, इन्द्रिय और मन के नियंत्रण के लिए योग प्रविधियों का महत्व माना जाता रहा है। योग साधना भारत की श्रेष्ठतम देन है। योग का अर्थ होता है जुड़ना या जोड़ना। आदिम अवस्था से ही मनुष्य जिज्ञासु रहा है। जगत की क्रिया-कलापों को देखकर उसके मन में कई प्रश्न उठे, जैसे - ''कस्तवं'' तुम कौन हो ? , ''कोऽहं'' मैं कौन हूँ ?, ''कुत: आयात:'' मैं कहाँ से आया हूँ?, ''का मे जननि'' मेरी माता कौन है ?''को मे तात:'' कौन मेरे पिता हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए उसे आभास हुआ कि सृष्टि को कोई संचालित कर रहा है। ऐसी संचालन शक्ति की खोज में उसने उससे जोड़ने का मार्ग ''साधना'' अपनाया। साधना में मन-मस्तिष्क को स्थिर करके जगत का संचालन करने वाली शक्ति से जुड़ने की प्रक्रिया ही ''योग'' कही जाती है।

संगीत में भी साधक प्रणव साधना के माध्यम से अपने आराध्य से जुड़ने का प्रयत्न करते हैं। प्रणव का वास्तविक अर्थ है ''ओम'' । ओम वेद का बीजमंत्र है। संगीत में भी ''नाद'' से जुड़ना योग-प्रक्रिया कहलाती है। शास्त्रों में संगीत को यौगिक क्रिया कहा गया है। योग को स्वास्थ्य से भी जोड़ा गया है। स्वस्थ रहने के लिए योग-क्रिया की जाती है। संगीत में भी आसन अपनाये जाते हैं। हमारे संगीत शास्त्रों में गायकों के गुण-अवगुण वर्गीकरण में संगीत साधक को कैसे बैठना चाहिये तथा सही बैठक से क्या लाभ है ? साँस को नियंत्रित करने के लिए किन-किन आसनों को अपनाना चाहिये। इन सबका का उल्लेख मिलता है।

संगीत में ''प्रणव'' साधना महत्वपूर्ण है। संगीत में षड्ज (सा) स्वर ''प्रणव'' है। वेद , उपनिषद तथा पुराणों में वर्णित है कि ''षड्ज'' आदि सातों स्वर एकमात्र प्रणव के ही अन्तर्विभाग हैं। एकमात्र प्रणव (ओम) ही शब्दमय साक्षात् ''शब्दब्रह्म, स्वर ब्रह्म'' है। शब्द और स्वर दोनों की उत्पत्ति ओम के गर्भ से हुई है। प्रणव ही संगीत के जन्म का मूलाधार है। प्रणव शब्द के उच्चारण से जो स्पन्दन होता है उससे शरीर के प्रत्येक परमाणु में परिवर्तन हो जाता है। उसमें नवीन स्पन्दन से नवीन स्थिति उत्पन्न हो जाती है और देह स्थित अनेक निद्रित शक्तियां जाग उठती हैं।

वास्तव में संगीत के जन्म का उपकरण ''ओम'' से परे कुछ भी नहीं, समस्त कलाएँ ही ओम् के विषाल गर्भ से आविर्भूत हुई हैं। प्रणव साधना को नादब्रह्म की साधना माना गया है।

ओम तीन मात्राओं (अ उ म) के सम्मिश्रण से बना है। परब्रह्म परमात्मा के नामात्मक ओम की जो पहली मात्रा ''अ'' है, यह समस्त नामों में अर्थात किसी भी अर्थ को बतलाने वाले जितने भी अक्षर हैं इन सब में व्याप्त है, अर्थात् स्वर अथवा व्यंजन कोई भी वर्ण आकार से रहित नहीं है। श्रुति भी कहती है ''अकारो वै सर्वावाक्''। गीता में भी भगवान ने कहा है कि - ''अक्षरों में (वर्णों में) मैं ''अ'' हूँ। समस्त वर्णों में 'अ' ही पहला वर्ण है। 'अ' इस जगत का स्रष्टा ब्रह्मा है।''

ओम की दूसरी मात्रा जो ''उ'' है वह 'अ' से उत्कृष्ट (ऊपर उठा हुआ) होने के कारण श्रेष्ठ हैं तथा 'अ' और 'म' इन दोनों के बीच में होने के कारण यह साधना फेफड़ों में शुद्ध वायु को भरकर रक्त की शुद्धि करती है। रक्त का संचालन तीव्रगति से होकर नाक, कान, आंख आदि इन्द्रियों तक पहुँचकर पुष्टि प्रदान करता है। वनों में साधुओं का ऊँचे (तीव्र) स्वर से प्रणवनाद शरीर में उष्णता को बढ़ाता है जिससे सर्दी में होने वाले रोगों से बचाव रहता है। षड्ज का अभ्यास करने से सभी स्वर आसानी से सध जाते हैं। षड्ज साधना साधक को तन्मयता प्रदान करती है और श्रोताओं की विकेन्द्रित चित्तवृतियों को गायक के स्वर में केन्द्रित कर देती है।

ओम की तीसरी मात्रा ''म'' है। यह 'मा' धातु से बना है। 'मा' धातु का अर्थ माप लेना यानि अमुक वस्तु इतनी है, यह समझ लेना है। यह 'म' ओम की अन्तिम मात्रा है। 'अ' और 'उ' के पीछे उच्चारित होता है, इस कारण दोनों का माप इसमें आ जाता है 'म' का उच्चारण होते-होते मुख बन्द हो जाता है। 'अ' और 'उ' दोनों इसमें विलीन हो जाते है। अत: यह दोनों मात्राओं का विलीन करने वाला

भी हैं।''1

''प्रणव (षड्ज) साधना सही ढंग से करने के लिए योग्य गुरु की शरण में जाना आवश्यक है। साधना में साधक का ध्यान प्रणव ध्वनि के अतिरिक्त कहीं और न हो। इसे ही ''नादयोग'' की संज्ञा दी गयी है। तानपुरा वाद्य प्रणव-साधना में सहायक है। प्रणव वास्तव में बीजस्वरूप है। संगीत रूपी वृक्ष का जनक है। संगीत रूपी वृक्ष को सींचने का एकमात्र साधन है प्रणव साधना। संगीत साधक उस वृक्ष के नीचे बैठकर सुखद आनन्द का अनुभव कर सकता है।[2]''

संगीत शास्त्रों में ब्रह्म मुहूर्त में प्रणव साधना का उल्लेख मिलता है। साधक जब प्रणव का उच्चारण करता है, सुख-आनन्द का अनुभव करता है। साधक का चित्त शान्त हो जाता है। प्रणव-साधना ईश्वर प्राप्ति का अमोघ मंत्र है।''प्रणव का अभ्यास वस्तुत'' प्राणायाम है। प्रणव अभ्यास से प्राणायाम के तीनों रूप पूरक, कुम्भक व रेचक बलवान बनते हैं। उदाहरणत: स्वर लगाव- पूरक, स्वर ठहराव- कुम्भक, स्वर समाप्ति -रेचक प्राणायाम कहलाती है।[3]''

सम्यक प्रकार से अर्थात स्वर, ताल, उच्चारण और हाव-भाव के साथ जो गाया जाए उसी का नाम संगीत है। संगीत का मूलाधार नाद है। संगीत की प्रत्येक विधा नादात्मक है। वास्तव में ''नादाधीय मतो: जगत:'' सम्पूर्ण जगत नाद के अधीन है।'' पंच महातत्व जिससे शरीर निर्मित है पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश में नाद व्याप्त है। जहाँ नाद् है वहाँ जीवन है, जहाँ जीवन है वहीं नाद है।

संगीत स्वयं ही यौगिक क्रिया है। आहत और अनाहत नाद योगियों के अध्ययन का विषय रहा है। योगियों के अनुसार इससे ''मोक्ष की प्राप्ति'' भी संभव है। स्वरों के उच्चारण, लगाव यौगिक क्रिया है।'' हमारे यहाँ श्रेष्ठ योगियों ने पहले ध्यानावस्था प्राप्त की फिर उन्हें जो अनहद नाद सुनाई दिया उसी के आधार पर उन्होंने घण्टा, शंख, घुंघुंरू, ढपली, झांझ व मृदंग आदि वाद्यों की रचना की ताकि वहीं अनहद नाद इस रूप में सुन सकें। हमारे स्वरों को यानि ''सा'' (षड्ज), ''रे'' (रिषभ) ''ग'' (गन्धार) आदि में कुछ विशिष्ट श्रुतियाँ हैं जो गहन ध्यान में अपने आप सुनाई देती हैं। इसलिए इनके गायन, वादन अथवा श्रवण से वही उच्च अवस्था प्राप्त की जा सकती है।[4]''

''नारदीय शिक्षा'' तथा भरत के ''नाट्यशास्त्र'' में गात्र (शरीर) वीणा कही गयी है। उसका तात्पर्य यही है कि स्वर सर्वप्रथम शरीर में प्रकट हुए, पश्चात् वीणा , वेणु और अवनद्ध वाद्यों में आये। नाट्यशास्त्रकार भरत के कथन से भी यही सिद्ध होता है कि ''शरीर'' ही संगीत के स्वरों का प्रथम जन्मदाता है। मतंग के परवर्ती सभी संगीत ग्रंथों में ''नाद'' की स्तुति और महिमा गायी जाने लगी। ''संगीत रत्नाकर'' में तो ''नाद'' को ''नादब्रह्म'' कहकर ही ग्रंथकार संतुष्ट नहीं हुआ। उसने नाद को ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप में कहकर सर्जन, धारण और विलय तीनों शक्तियाँ उसे एक साथ प्रदान कर दी।[5]''

योगियों के मतानुसार योग के मुख्य आठ अंग हैं। इनमें प्रथम पांच बहिरंग और शेष तीन अंतरंग साधन हैं। इसलिए योग को अष्टांग भी कहा जाता है। इस अष्टांग मार्ग के प्रवर्तक पंतजलि हैं। योग के आठ अंग निम्नलिखित है:-6

1 यम - शरीर , वचन और मन के संगम को ''यम'' कहते हैं। यम पांच हैं: (1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4)ब्रह्मचर्य (5) अपरिग्रह

2 नियम - सदाचार के पालन करने को नियम कहते हैं। नियम भी पांच हैं: (1) शौच (2) संतोष (3) तप (4) स्वाध्याय (5) ईश्वर प्रणिध्यान ।

3 आसन - चित्त को स्थिर करने वाले तथा सुख देने वाले बैठने के प्रकार को ''आसन'' कहते हैं।

4 प्राणायाम - स्थिर आसन पर बैठकर श्वास तथा प्रश्वास के गति के नियंत्रण को ''प्राणायाम'' कहते हैं। प्राणायाम के तीन अंग हैं:- (1) पूरक (2) कुम्भक (3) रेचक

5 प्रत्याहार - इन्द्रियों को विषयों से हटाकर अन्दर ही केन्द्रित करने को ''प्रत्याहार'' कहते हैं।

6 धारण - चित्त को किसी वस्तु पर स्थिर करना ''धारण'' कहलाता है।

7 ध्यान - जब किसी स्थान के प्रवाह के रूप में शून्य आकाशवत मानकर चित्त को टिकाया जाता है, वह ''ध्यान'' कहलाता है।

8 समाधि - ध्याता, ध्यान और ध्येय का एक हो जाना तथा आत्मानन्द शेष रह जाना ''समाधि'' कहलाता है।

योग में लय-योग का विशेष महत्व है। लय-योग के माध्यम से मनुष्य कुण्डलिनी जागृत कर सकता है, जिससे मनुष्य शरीर में व्याप्त सुप्त शक्तियों का विकास किया जाता है। योग को मनुष्य के आन्तरिक विकास हेतु महत्वपूर्ण माना जाता है।

योगाभ्यास का प्रत्येक आसन तथा योग की प्रत्येक क्रिया

मेरूदण्ड में स्थापित चक्रों को प्रभावित करती है तथा सतत् साधना से ये चक्र जागृत होते हैं। प्राणायाम के द्वारा शरीर में प्रवाहित इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों का शोधन होता है तथा उसे ऊपर चढ़ने का पथ मिलता है। प्रत्येक मनुष्य के शरीर में महत्वपूर्ण स्थानों पर सात चक्र स्थापित हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है:-

संपूर्ण विश्व में व्याप्त नाद् का मूल स्त्रोत संगीत के सात स्वर

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| प्रथम चक्र: | मूलाधार चक्र | षड्ज | (सा) | गहरालाल रंग |
| द्वितीय चक्र: | स्वाधिष्ठान चक्र | रिषभ | (रे) | सिंदूरी रंग |
| तृतीय चक्र: | मणिपुर चक्र | गांधार | (ग) | गहरा पीला रंग |
| चतुर्थ चक्र: | अनाहत चक्र | मध्यम | (म) | आसमानी नीला रंग |
| पंचम चक्र: | विषुद्धि चक्र | पंचम | (प) | गहरा जामुनी रंग |
| षष्ठम चक्र: | आज्ञा चक्र | धैवत | (ध) | भूरा रंग |
| बिन्दु विसर्ण (चक्र नहीं वरन स्थान विशेष है) | | निषाद् | (नि) | |
| सप्तम चक्र: | सहस्त्रार चक्र | तारषड्ज | (सं) | गुलाबी |

ही हैं। संगीत के सप्त स्वर इन्हीं चक्रों को तथा विसर्ग स्थान को झंकृत करते हुए निकलते हैं।

उपर्युक्त प्रत्येक चक्रों के स्थान, रंग तथा आकार को ध्यान में रखकर यदि साधना करेंगे तो मेरूदण्ड एक सितार की भांति झंकृत होता प्रतीत होगा। शरीर को स्थिर कर मेरूदण्ड को सीधा रखकर यदि संगीत के सप्त स्वरों का अभ्यास करेंगे तो स्वर का उच्चारण करते समय स्वर से सम्बन्धित चक्र झंकृत होते हुए स्पष्ट अनुभव होंगे। ऐसा प्रतीत होगा मानो ध्वनि उस चक्र से ही प्रकट हो रही है। धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा ये चक्र जागृत होने लगेंगे। एक संगीत साधक योग का चरम लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। जिसे प्राप्त करने के लिए योग-साधक आसन, प्राणायाम तथा हठयोग की क्रियाएं करता है। संगीत साधक की शारीरिक और मानसिक शक्ति का प्रभाव उसके गायन पर भी होता है। यदि वह शारीरिक रूप से स्वस्थ है तो वह प्रभावशाली ढंग से अपना गायन कर सकेगा। शांत, स्थिर और उल्लासपूर्ण मनोदशा से उसका संपूर्ण ध्यान गायन पर केन्द्रित हो जाता है।[7]

संगीत-साधना भी शीघ्र चित्त की वृत्तियों का निरोध कर चित्त को, ब्रह्म से मिलाने का कार्य करती है। संगीत साधना स्वयं में योग है। संगीत एवं योग दोनों मिलकर ध्यानयोग का आधार बन जाते हैं। संगीत की अमूर्तता ने आध्यात्मवादियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। स्वर और लय ना तो देखे जा सकते हैं और ना ही उनका स्पर्श किया जा सकता है। संगीत केवल अनुभव किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार जैसा कि परब्रह्म। संगीत हमें आत्मलीनता की ओर ले जाता है। संगीत से मन की एकाग्रता कुछ ही क्षणों में स्थापित हो जाती है। योग एवं संगीत दोनों का सामंजस्य चित्त की वृत्तियों का निरोध कर द्रष्टा (आत्मा) को अपने स्वरूप में स्थित करवाना है।

संगीत में प्रणव साधना, स्वर अभ्यास और अलंकार अभ्यास द्वारा मन स्थिर होता है। परन्तु यह अभ्यास बहुत काल तक निरन्तर और आदर पूर्वक सांगोपांग सेवन किये जाने पर दृढ़-अवस्था वाला होता है। किसी भी साधन में प्रवृत होने का और अविचल भाव से उसमें लगे रहने का मूल कारण श्रद्धा (भक्तिपूर्वक विश्वास) ही है। श्रद्धा की कमी के कारण ही साधक के साधना की उन्नति में विलम्ब होता है। संगीत की साधना के भीतर से जो लोग गुजरे हैं उन्हें पता है कि संगीत अपने आप में किसी गहरी योग साधना से कम नहीं है। कहा भी है -

Yoga is like Music
The Rhythm of the body
The Melody of the Mind
and the harmony of the soul
Create symphony of life.

**संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:-**


1. हरिकृष्णदास गोयनका - मुण्डकोपनिषद, पृष्ठ-220
2. लोकेश शर्मा - धर्मसम्राट मासिक पत्रिका, जुलाई 2009, पृष्ठ-16
3. लोकेश शर्मा - धर्मसम्राट मासिक पत्रिका, जुलाई 2009, पृष्ठ-16
4. ईश्वरचंद करकरे - कलाकुंज भारती पत्रिका, मार्च 2011,पृष्ठ-11
5. विमला मुसलगाँवकर- भारतीय संगीतशास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन, पृष्ठ-23
6. डा.एन.वी. शर्मा - शारीरिक शिक्षा के सिद्धांत और इतिहास, पृष्ठ-426
7. प्रणव पत्रिका , पृष्ठ-10


लेखिका - भू.पू. विभागाध्यक्ष संगीत विभाग, भू.पू. डीन, ललित कला संकाय, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर है।

■

आलेख

# नाद-ब्रह्म और उसका स्वरूप

डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग

चेतन जगत् के समस्त जीवों में विचार प्रधान है, जिसके द्वारा चेतन (प्राणी) में चेतना उद्‌भूत होती है। विचार एक ऐसी शक्ति है, जो समस्त क्रियाकलापों का कारण है। विचार के बिना न तो परमाणु में कोई हलचल हो सकती है और न मनुष्य में कोई क्रिया। विचार करने की शक्ति और उसकी सीमा प्रत्येक जीव में भिन्न-भिन्न है। एक छोटा शिशु चन्द्रमा को देखकर उसकी ओर हाथ बढ़ा सकता है, उसे खिलौना समझकर; किन्तु रॉकेट द्वारा चन्द्रमा पर पहुँचाने का विचार वह नहीं कर सकता। इसीलिए शिशु के विचार की एक सीमा है, जो विस्तृत नहीं है।

विचार करने का माध्यम स्थूल रूप में वाक्य हैं। भिन्न-भिन्न वाक्य मिलकर किसी भी वस्तु को रूप प्रदान करते हैं और तब उस रूप की तदाकार्ता द्वारा वृत्ति विषय को प्राप्त होती है, जिसका रस जीव को प्राप्त होता है। वाक्यो का आधार शब्द हैं, जिनका चयन वाक्य के ढाँचे का निर्माण करता है। शब्दों के स्वतन्त्र अर्थों का सन्निवेश वाक्य के विस्तृत अर्थ को जन्म देता है। शब्द का आधार वर्ण है। भिन्न-भिन्न वर्ण अपने अर्थ को आत्मसात् करते हुए शब्दरूपी अर्थ का निर्माण करते हैं। वर्ण का माध्यम ध्वन्यात्मक नाद सगुण है, जिसका कारण निर्गुण नाद है।

सुषुप्ति को छोड़कर जाग्रत् तथा स्वप्न की अवस्थाओं में प्रतिक्षण ज्ञानेन्द्रियाँ कार्यरत रहती हैं। बुद्धि के आश्रय से मन ज्ञानेन्द्रियों का संचालन करता है। बुद्धि स्वयं में केवल एक यन्त्र है। यन्त्र के अतिरिक्त उसका और कोई अस्तित्व नहीं है। मन के ऊपर प्रत्येक वस्तु का एक प्रभाव पड़ता है, किन्तु उस प्रभाव कों अर्थ उसे ज्ञात नहीं हो सकता। अतएव उस प्रभाव के प्रतिबिम्ब को वह बुद्धि की ओर प्रसारित करता है, तब कहीं जाकर बुद्धि अपने निर्णय से मन को वस्तु के मर्म का बोध कराती है। तदनन्तर मन वस्तु के भोग अथवा अभोग-हेतु ज्ञनेन्द्रियों को निर्देश करता है। इस प्रक्रिया को उदाहरण-रूप में हम इस प्रकार समझ सकते हैं-रात्रि के समय कहीं दूर एक प्रकाश-बिन्दु चमकता दृष्टिगोचर होता हैं, जिसका प्रभाव आँख के माध्यम से मन तक पहुँचता है। मन उसका विश्लेषण करने में असमर्थ होने के कारण बुद्धि का आश्रय लेता है। बुद्धि अपनी वृत्तियों द्वारा उसको समझने का प्रयत्न करती है। जबतक बुद्धि की निश्चयात्मक वृत्ति नहीं होती, तबतक व वस्तु के प्रति संशयात्मक वृत्ति जागरूक रहती है। इसीलिए कभी वह प्रकाश हमें झोपड़ी में जलते चिराग का प्रतीत होता है, कभी किसी बटोही के हाथ में स्थित लालटेन का और कभी किसी गाड़ी के अग्रभाग में लगी रोशनी का। जब वस्तु हमारे निकट आ जाती है, तब आँख द्वारा स्पष्ट दिखाई देने पर, पूर्व-ज्ञान के आधार पर प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा बुद्धि अपनी निश्चयात्मक वृत्ति को स्थिर कर देती है और मन उस वस्तु का भोग करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विचार की प्रक्रिया सूक्ष्म रूप से बुद्धि के द्वारा ही सम्पन्न होती है, जिसका आधार नाद है। मन जब किसी वस्तु के प्रभाव का प्रतिबिम्ब बुद्धि को प्रेषित करता हैं, तब भी एक अति संक्षिप्त विध्य की। क्रिया सम्पादित होती है। यदि वह क्रिया सम्पादित न हो, तो मन बुद्धि तक कोई बात पहुँचा ही नहीं सकता, अपितु निष्क्रिय होकर रह जाएगा। इसलिए मन के सीमित विचार का कारण भी नाद है। मन और बुद्धि अपनी शक्ति और सीमाओं के अनुसार एक ही नाद से विचार-शक्ति ग्रहण करते हैं; जैसे-एक मोटर के टायर और एक साइकिल के टायर में वायु भरी जाए, तो दोनों की वायु टायर की सीमा और शक्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रतीत होगी, किन्तु यथार्थ में यह एक ही वायु का परिणाम है। इस प्रकार यह बात आसानी से समझ में आ जाती है कि प्राणीमात्र के विचार करने का एकमात्र साधन केवल नाद है, जो अखंड रूप से समस्त सृष्टि में विद्यमान है।

अब हम नाद की शक्ति पर विचार करेंगे। पंचभूतों में आकाश सबसे सूक्ष्म है। आकाश का गुण नाद है। विचार का मूल होने के कारण संसार नाद का परिणाम है। यदि विचार का अस्तित्व न हो, तो संसार के किसी भी प्राणी में कोई हलचल नहीं हो सकती,

सब-कुछ जड़-जैसा हो जाएगा। जड़ पदार्थों में भी अति सूक्ष्म रूप से क्रिया होती रहती है, परन्तु उस क्रिया को करने वाले परमाणु भी विचार किया करते हैं। अत: नाद का अस्तित्व न होने पर जड़ था अस्तित्व भी नहीं रहेगा; पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश निश्चेष्ट हो जाएँगे, तथा ब्रह्मांडीय ग्रहों का आकर्षण-विकर्षण समाप्त हो जाएगा और सब अपने कारण-शरीर में समा जाएँगे। उस कारण-शरीर में नाद का प्रभाव न होगा, तो वह केवल अचेतन सत्ता कहलाएगी और यदि नाद का प्रभाव उसमें हुआ, तो उसे चेतन की संज्ञा दी जाएगी। नाद की इसी सत्ता के कारण आत्मा को चेतन माना जाता है, बल्कि निष्क्रिय और सक्रिय दोनों ही विशेषणों को उसके लिए प्रयुक्त किया जाता है। आत्मा निष्क्रिय है और उसके अन्तर का नाद सक्रिय। यह नाद ही वह अविद्या अथवा माया है, जो अपने प्रभाव से आत्मा में जीव की प्रतीति का भ्रम उत्पन्न करता है। वस्तुत: नाद और जीव अथवा माया और जीव एक ही है। जिसने तप के द्वारा इस नाद-तत्त्व का मूल अथवा सार प्राप्त कर लिया है, वह संसार में रहते हुए भी मुक्त है।

मतंग ने कहा है-

**नादरूप: स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनार्दन:।**
**नादरूपा पराशक्तिर्नादरूपो महेश्वर:।।**

नाद के दो प्रकार हैं-पहला आहत और दूसरा अनाहत। जो नाद हमें कानों से सुनाई पड़ता है उसे 'आहत' कहते हैं और जो कानों से सुनाई नहीं पड़ता उसे 'अनाहत' कहतें हैं-ऐसा प्रचार में है। यह अनाहत नाद ही समस्त आहत नाद का कारण है। आहत नाद में मन को एकाग्र करने तथा जीव को आनन्द प्रदान करने की अपूर्व क्षमता है। किसी-किसी नाद से पशुओं के मन्त्रमुग्ध होने की कथाएँ भी हम सुनते हैं। अत: अलौकिक शक्ति वाला यह आहत नाद लोकरंजक है। अनाहत नाद कानों से सुनाई नहीं पड़ता, अत: वह लोकरंजक नहीं। किन्तु उसकी मधुरता और आनन्द प्रदान करने की शक्ति के विषय में साधकों ने जो उक्तियाँ कही हैं, वे आश्चर्यजनक हैं। उनका कहना है कि अनाहत नाद कानों से नहीं सुना जा सकता, वह केवल अनुभव होता है, किन्तु आहत की अपेक्षा आनन्द देने की शक्ति उसमें हज़ारों गुनी है। वह लोक के लिए रक्ति-दायक नहीं, किन्तु मुक्ति-दायक है। नानक, कबीर, मीरा, सूर तथा अनेक शब्द-साधकों ने उसी मुक्ति-दायक नाद का आश्रय लिया है। कबीर ने कहा है-

**भौरं गुफा पाँचों कर याना,**
**बाजे ताल मुदंग- बँधाना।**
**जब पाचों दस के घर जाई,**
**तब दस पाँचहि आन समाई।।**
**जब दस पाँच गुफा मँह आवहि,**
**मधुरी तान अरध धुनि गावहि।**
**कोइ घंटा कोइ ताल बजावहि,**
**कोइ सँखनाद कोइ झालरि लावहि।।**
**कोइ किंकिनि चिंचिनि किन्नर वीना,**
**कोइ भेरि मृदंग और ढोल सहीना।**
**कोइ तारी कोइ बैन बजावहिं,**
**रहसि-रहसि नाना गुन गावहिं।।**
**सारँग जल-तरंग धुनि धारी,**
**तबला चहुँ ओर नरसिंहा डफारी।**
**इहि बिधि भौर गुफा धुनि गाजै,**
**नाना रंग मधुर धुनि बाजै।।**

इसी प्रकार मीरा, नानक आदि के भी अनाहत के प्रति एक-से ही अनुभव हैं, जो साधना के द्वारा प्रकाशित होकर आहत नाद की अपेक्षा कहीं अधिक चमत्कारी सिद्ध होते हैं--

**सतगुरु सबद लखाया अंसरी, ध्यान लगाया धुन में।**
**मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में।।**
**भक्त सतगुरु पुरूष सोई, जिस हर प्रभु भाना भावये।**
**आनन्द अनहद बजें बाजे, हर आप गल मेलावये।।**

-श्री गुरुग्रन्थ साहब

**अनहद शब्द उपज्यों मों घट में,**
**ताको ध्यान करु अष्ट जाम।**
**खरज रिषभ गान्धार मध्यम पंचम धैवत**
**निषाद पावै ज्यों अति अभिराम।।**

-तानसेन

पाश्चात्त्य साधकों में कीट्स के वाक्य भी विचारणीय हैं। एक स्थान पर उसने कहा है-

"Heard melodies are sweet but those unheard are sweetest."

अर्थात्-जो धुनें सुनाई पड़ती हैं वे मधुर हैं, किन्तु जो सुनाई नहीं पड़तीं वे मधुरतम हैं।

कवि जब काव्य-सृजन के लिए एकाग्र होता है, तब नए-नए भाव शब्द-रूपी वाहनों पर छन्द-रूपी रथ में सजकर स्वयमेव आते हैं; किन्तु कहाँ से, इसे कवि नहीं जानता। यथार्थ में उसे जो निधि प्राप्त होती है, वह अनाहत नाद का ही परिणाम है।

भौतिक ज्ञान सम्पन्न करने के लिए एकाग्र होना आवश्यक है, जो आहत नाद के माध्यम से शीघ्र हो सकता है। इसीलिए कलाकार की स्थिति साधारण लोगों की अपेक्षा उत्कृष्ट मानी जाती है। किन्तु परम ज्ञान के लिए अनाहत का अनुभव कर उसके और पीछे अति सूक्ष्म नाद की अखंड सत्ता में जाना पड़ेगा, जो ज्ञान का अक्षय भंडार है, जहाँ से ज्ञानी ज्ञान बनकर ही लौटता है।;

बुद्धि को नाद से जो शक्ति प्राप्त होती है, वह सीमित है; अत: उस शक्ति का विस्तार करने-हेतु विचार के द्वारा विचार के मूल तक पहुँचना आवश्यक है। विचार अर्थात् नाद के द्वारा नाद तक पहुँचने की क्रिया साधन है, जिसका मर्म शास्त्र-कृपा, गुरु-कृपा, ईश्वर-कृपा और आत्म-कृपा के बिना बोधगम्य नहीं। कवि और साहित्यकार विचार करते हैं अथवा नाद में अवगाहन करते हैं-बात एक ही है। चित्रकार भावनाओं अर्थात् विचारों (नाद) के माध्यम से ही तूलिका को गति प्रदान कर रेखाओं का मनोहारी संयोजन करने में समर्थ होता है। इसी प्रकार नर्तक या अभिनेता अंग-भंगिमाओं द्वारा केवल विचार (नाद) और ताल (नाद-खंड) के आश्रय से अपनी कला प्रदर्शित करने में समर्थ होते हैं। नाद-कृपा से ही इन सब विभूतियों को लोक और अज्ञानाच्छादित परलोक का आनन्द प्राप्त होता है।

समस्त कलाओं और साधनों का आद्य-केन्द्र या बिन्दु 'नाद' है। यह कथन अब अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होता। किसी भी विचार के लिए प्रयोज्य शब्द भले ही साहित्य की संज्ञा प्राप्त कर लें, किन्तु वह साहित्य वस्तुत: संगीत ही है। जो व्यक्ति स्फोट-सिद्धान्त का मर्म जानता है, वह शब्द के वर्ण की तरंगायित सत्ता के सहारे नाद की उस सीमा का स्पर्श करने में समर्थ हो सकता है, जहाँ नाद के लघु और दीर्घ स्वयंभू स्फुरण अर्थ लेकर स्वयं प्रकाशित होते हैं। इसीलिए संस्कृत भाषा अर्थ और व्युत्पत्ति की दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध मानी जाती है। वास्तव में संगीत और साहित्य के प्राण, उनसे उत्पन्न भाव या अर्थ में नहीं, बल्कि अप्रत्यक्ष नाद में बसते हैं, इसीलिए किसी-किसी साहित्य को हम पढ़ना नहीं चाहते, गाना चाहते हैं।

नाद ही वेदोक्त स्वर का आधार है और वह स्वर अक्षर व बीज का ओज है। स्फोट के आधार पर बीज-मन्त्र अथवा बीजाक्षर प्राण के उत्सर्पण द्वारा वृत्ति को नाद के मूल तक पहुँचाने का अद्वितीय साधन हैं। प्राण अपनी स्पन्दन- शक्ति के स्थिर केन्द्र अखंड नाद तक पहुँचकर स्थिर हो जाता है। यदि कोई व्यवधान न हो, अर्थात् प्रारब्ध-भोग शेष न हो तो जीव को तुरीयातीत अवस्था प्राप्त होती है, अन्यथा स्थिति से पुन: गति का जन्म होता है, अचल ही चल का कारण बनता है। नाद-शक्ति के स्पन्दन का कारण उसी का खंड (ताल) बनता है। ताल की विभिन्न गतियाँ भौतिक ज्ञान और अज्ञान का कारण बनती हैं, उसका तरंगायित रूप अर्थात् लय-व्यवहार और पारस्परिक सम्बन्ध की सुदृढ़ भित्ति बनता है।

नाद-शक्ति का केन्द्र से परिधि की ओर और परिधि से केन्द्र की ओर तरंगित होना ही त्रयी संस्थान को निर्मित करता है, जिसका परिणाम समस्त पिंड अथवा भूत भौतिक पदार्थ होते हैं। तीन लोक (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल), तीन शरीर (स्थूल, सूक्ष्म और कारण), तीन काल (भूत, भविष्य और वर्तमान), तीन अवस्थाएँ (जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति), तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश), तीन ग्राम (षड्ज, मध्यम और गान्धार), तीन स्वर, तीन सप्तक (मन्द्र, मध्य और तार), तीन रंग, तीन वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद), तीन गुण (सत्त्व, रज और तम), तीन वर्ण, तीन लय (विलम्बित, मध्य और द्रुत) तथा त्रयीखंड (तिहाई, जो विशेषतया ताल-वाद्यों में प्रदर्शित की जाती है और जिसके द्वारा मनुष्य प्रभावित होता है) आदि सभी को संस्थानत्रय के कारण ही इतना महत्त्व प्राप्त है।

नाद का न आदि है, न अन्त; इसीलिए वह जन्म और मृत्यु से परे है। विचार या ज्ञान (नाद) के समाप्त हो जाने पर उसके समाप्त हो जाने का जो ज्ञान शेष रहता है, वह नाद (ज्ञान) के स्वत: सिद्ध होने का साक्षी है। समस्त प्रमाणों की सिद्धि के लिए अन्ततोगत्वा नाद ही प्रमाण होगा, जो किसी भी कर्ता, क्रिया एवं फल के अधीन नहीं। कर्ता कितना भी प्रयत्न करे, उसके खंड नहीं कर सकता। यदि करेगा तो वह खंड भी नाद होगा। मान्यता कर्ता की स्वतन्त्र कृति होती है, भिन्न-भिन्न व्यक्ति उसे शब्द, ज्ञान, स्वर, श्रुति, ध्वनि तथा वृत्ति आदि मान सकते हैं; किन्तु पुरुष-भेद नाद-भेद का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि पुरुष-विशेष द्वारा उसका निर्माण नहीं होता। नाद के द्वारा ही इन सबका भेद सम्भव होता है। यदि किसी शक्ति को नाद का कर्ता मानें, तो नाद-रूप कर्म के पूर्व उसमें नाद का अभाव स्वीकार करना पड़ेगा, किन्तु उस अभाव के अनुभव (ज्ञान) का कारण नाद के अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता। यदि नाद को शक्ति का गुण मानें, तो न्याय-सिद्धान्त के अनुसार गुणी में गुण की स्थिति माननी पड़ेगी; क्योंकि गुण नष्ट हो भी जाए, तब भी अपने कारण में उसकी स्थिति रहती है। इसलिए शक्ति को नाद-रूप ही मान लिया जाए, तो उसमें कोई दोष दृष्टिगोचर नहीं होता।

काल के द्वारा नाद को परिच्छिन्न नहीं किया जा सकता। भूत और भविष्य का विचार करके काल की धारा में नाद के उदय और विलय की कल्पना असंगत है, क्योंकि वह कल्पना स्वयं नादाधीन

है। काल के खंड करने पर नाद के खंड नहीं किए जा सकते, क्योंकि माने हुए काल-खंडों का अनुभावी भी नाद होगा। यदि काल के खंड नहीं करते, तो उसमें भूत-भविष्य का भेद व्यर्थ है। यथार्थ में काल-भेद का विचार निर्मुल है, क्योंकि काल का अभाव भी काल होगा। अभाव-रहित वस्तु निरंश होती है और निरंश में किसी प्रकार का विभाजन नहीं होता, केवल सांश में होता है। भूत एवं भविष्य 'संवित्' मात्र हैं, और कुछ नहीं। संविन्मात्र द्वारा संवित् को परिच्छिन्न नहीं बनाया जा सकता, अत: नाद काल-परिच्छिन्न नहीं है।

काल के समान देश का भी अभाव नहीं। जिस देश में देश के अभाव की कल्पना की जाएगी, वह भी देश ही होगा। पूर्व-पश्चिम की कल्पना वस्तुनिष्ठ नहीं, काल-खंड की तरह संविन्मात्र है। किसी विषय की प्रतीति देश, काल के आश्रित हैं और देश एवं काल विषय-भेद की कल्पना पर आधारित हैं, जो नाद-सत्ता से अभिन्न है, भिन्न समझने पर उसे असत्य कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, किन्तु उस असत्य के संवित् का आधार नाद होगा, अतएव नाद में देश-परिच्छिन्न की कल्पना अनुचित ही है।

ज्ञान के बिना ज्ञेय और ज्ञेय के बिना ज्ञान की सिद्धि नहीं हो सकती; दोनों एक-दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। किन्तु नाद को दोनों की ही अपेक्षा है, अत: वह स्वत: सिद्ध है। ज्ञान में ज्ञाता का भेद औपाधिक है। नाद का ज्ञान अथवा ज्ञान के लिए नाद-दोनों में कार्य-कारण-सम्बन्ध होने से विचार का विषय नहीं। यदि ज्ञेय-रूप नाद के पूर्व ज्ञान माना जाए तब भी नाद उसका प्रमाण होगा। अज्ञान के ज्ञान का साक्षी भी नाद है-यह हम पहले सिद्ध कर ही चुके हैं।

ऋत् का अर्थ है 'संचालन' और मनन का अर्थ है चिन्तन! आत्मा में ये दोनों गुण विद्यमान हैं। आत्म-स्थिति अर्थात् नाद-वृत्ति में लीन रहना मुमुक्षु का स्वभाव होता है। इस विषय-रहित सत्य-वृत्ति के लिए अन्य किसी भी उपादान की अपेक्षा उसको नहीं होती, इसे अनुभवी पुरुष भली-भाँति जानते हैं। गुणातीत, इन्द्रियों से परे, मन, वचन और बुद्धि से अलग, देश-काल-वस्तु से अपरिच्छिन्न, सनातन और सार्वभौम जो नाद-तत्त्व है, उसको केवल योगियों ने जाना है। वेद में उसकी अपार महत्ता का गुणगान किया गया है; इहलोक और परलोक का केवल वही एक आधार है। भगवान ने कहा है-

**मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणानन्तशक्तिना।**
**भूतेषु घोषरूपेण बिसेषूर्णेव लक्ष्यते॥**

-श्रीमद्भागवत (11/ 21/ 37)

अर्थात्- मैं अनन्त शक्ति-सम्पन्न एवं स्वयं अनन्त ब्रह्म हूँ। मैंने ही वेदवाणी का विस्तार किया है। जैसे कमलनाल में पतला-सा सूत होता हैं; वैसे ही वह वेदवाणी प्राणियों के अन्त:करण में अनाहत नाद के रूप में उद्धाटित होती है।

जिस दिव्य ध्वनि में वेद का सार निहित है, वहाँ तक पहुँचने का एकमात्र साधन अनाहत नाद का श्रवण (अनुभव) है। प्राचीन काल में आर्यपुत्रों को बाल्यकाल से ही वेद-मन्त्रों के उच्चारण की सत्-शिक्षा दी जाती थी, पाठ-के-पाठ कंठस्थ करा दिए जाते थे-भले ही वे उनका अर्थ समझें या न समझें। इस प्रणाली का रहस्य यही था कि स्वरोच्चारण द्वारा नाद की स्पन्दन-शक्ति के प्रभाव से मुक्ति-मार्ग सरल हो जाए। जीव अपनी अभिव्यक्ति के लिए नाद के दो रूपों का प्रयोग करता है-एक वर्ण-रूप और दूसरा स्वर-रूप। वर्ण-रूप नाद की व्याख्या न्याय, व्याकरण और पूर्व-मीमांसाओं में मिलती है। स्वर-रूप नाद संगीत-शास्त्र का विषय है, जिसके कुछ अंश ध्वनि-सिद्धान्त के रूप में भारतीय साहित्य में भी उपलब्ध होते हैं। साम सम्प्रदाय के ऐसे अनेक ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं, जिनमें ध्वन्यन्तरालों के पारस्परिक सम्बन्ध द्वारा- स्वर अथवा श्रुति के द्वारा-भिन्न-भिन्न भाव और रसों की उपलब्धि पर गूढ़ विवेचन प्रस्तुत किया गया हो; इसीलिए स्वरों की आकृति, रंग, जाति, देवता, जन्मस्थान तथा उनकी उत्पत्ति आदि का विषय समझने में आज का विद्यार्थी अपने को असमर्थ पाता है। गान्धर्ववेद में ध्वनि की उत्पत्ति, प्रतिध्वनि के प्रकार, स्पन्दन की विभिन्न शक्तियाँ, स्वर और काल के संयोग, स्वर और भाव का पारस्परिक सम्बन्ध, स्वर और प्रकृति का सम्बन्ध, स्वर के रूप तथा संकेत और शब्द-तत्त्व-आकर्षण पर सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया गया था; किन्तु दुर्भाग्य से वह भारतीय निधि आज लुप्त है।

व्याकरण का जो स्फोट नित्य और स्वयंप्रकाश है, वही गुप्त भेद या दिव्य नाद है। शब्द और अर्थ की तरह ,स्फोट भी नित्य-रूप होकर परब्रह्म अथवा सृष्टि की सत्ता के साथ सम्बद्ध रहता है और यही उस प्रकाश का निरूपक होता है जिससे सत्ता का ज्ञान प्राप्त होता है, किन्तु सत्ता का ज्ञान होने के पूर्व इसे स्पष्ट ध्वनि से प्रकट किया जाता है। नादानुसन्धान उस ज्ञान तक पहुँचने की एक अद्वितीय चेष्टा है-

**एक: शब्द: सम्यग् ज्ञात: सुप्रयुक्त:,**
**स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति।**

अर्थात्-एक ही शब्द के पूर्ण ज्ञान और सम्यक्र प्रयोग से ऐहलौकिक और पारलौकिक-दोनों फलों की प्राप्ति होती है। यही

वैदिक ज्ञान का रहस्य है। 'योगशिखोपनिषद' में कहा गया है–

**नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः।**
**नानुसन्धैः! परा पूजा न हि तृप्तैः परं सुखम्।।**

अर्थात्–नाद से बड़ा कोई मन्त्र नहीं है, अपनी आत्मा से बड़ा कोई देव् नहीं है, नादानुसन्धान से बड़ी कोई पूजा नहीं है और तृप्ति से बड़ा कोई सुख नहीं है। समस्त योगदर्शन में नाद को ही महत्त्व दिया गया है। कुंडलिनी को जाग्रत् करने के लिए योगिजन नाद का ही आश्रय लिया करते हैं। स्थूल रूप से संगीत–कला में तराने को इसीलिए महत्त्व प्राप्त है कि उसके ओंकार आदिक शब्द स्वर के सम्मेलन से प्राण को सिद्ध कर कुंडलिनी शक्ति के ऊर्ध्वगामी होने का कारण बनते हैं।

शब्द–भेद से नाद आठ रूपों में व्यक्त होता है; यथा–घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि, झंकार और ध्वंकृत। नवाँ महानाद इन सबमें व्याप्त रहता है। क्षेमराज ने अपनी टीका में इन आठ रूपों की व्याख्या करते हुए कहा है–

''कान में उँगली डालने से जलती हुई आग के शब्द के सदृश जो शब्द सुनाई देता है, उसे 'घोष' कहते हैं। उस घोष के अन्त में फूटे काँसे के शब्द के सदृश जो रूखा शब्द सुनाई देता है, उसे 'राव' कहते हैं। बाँस की ध्वनि के अनुरूप जो नाद होता है, वह 'स्वन' कहलाता है, जो समस्त शब्दों का आधार–स्वरूप है, उसे 'शब्द' कहते हैं। जिसके द्वारा वाक्य, पद और वर्ण भिन्न–भिन्न रूप में स्फुरित होकर प्रतीत होते हैं, उसे 'स्फोट' कहते हैं। वीणा में पंचम के तार को छेड़ने पर जो सुखप्रद नाद उत्पन्न होता है, उसी के सदृश 'ध्वनि' होती है। वीणा के समस्त तारों के एकसाथ झंकृत होने पर जो नाद प्रकाशित होता है, उसी के सदृश 'झंकार' होती है। 'ध्वंकृत' घंटे के नाद के समान होता है।''

उपर्युक्त सभी नाद सार्थक हैं। इसे आज का विज्ञान सिद्ध करता जा रहा है। अधिक–से–अधिक 25 हज़ार प्रति सेकंड की कम्पन–संख्या वाले नाद को कानों से सुना जा सकता है; किन्तु सत्तर हज़ार प्रति सेकंड की कम्पन–संख्या वाले नाद को मनुष्य के कान नहीं सुन सकते। पशुओं में विशेषकर श्वान में इतनी कम्पन–संख्या वाले नाद को सुनने की अलौकिक शक्ति होती है।

नाद के स्पन्दन की भिन्न–भिन्न अवस्थाएँ ही वर्णों और स्वर के रूप में जीव–ब्रह्म की अभिव्यक्ति के निमित्त कारण बनी हैं। गान्धर्ववेद का लक्ष्य इस गूढ़ रहस्य का उद्घाटन है। प्रणव की उपासना और आहत नाद की साधना– दोनों उसी मूल तत्त्व के साक्षात्कार का प्रयत्न हैं। स्थितप्रज्ञ की स्थिति में महर्षियों ने उसके अनाहत रूप का आस्वादन किया है। अनाहत की असम्प्रज्ञात स्थिति में पहुँचने के लिए सम्प्रज्ञात आहत भी एकमात्र सहज तथा लोकरंजक अवलम्ब है। इसीलिए जगत् में गान–वादन की महत्ता अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक है। चित्तवृत्तियों को समाविष्ट कर संगीत के द्वारा जो मनुष्य भाव–समाधि प्राप्त करेगा, उसके समक्ष नाद का स्वरूप निः संदेह प्रकट होगा और उसे परब्रह्म की प्राप्ति होगी। इसीलिए याज्ञवल्क्य–स्मृति में कहा गया है–

**वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।**
**तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्ग निगच्छति।।**

अर्थात्–जो वीणा–वादन का तत्त्व और श्रुतियों की जाति तथा ताल जानते हैं, वे बिना प्रयास के ही मोक्ष प्राप्त करते हैं।

स्त्रोतः– संगीत निबन्ध सागर पुस्तक से साभार

## कला समय का बैंक खाता विवरण

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | **खाता का नाम** | : | कला समय |
| 2. | **खाता संख्या** | : | 09321011000775 (चालू खाता) |
| 3. | **बैंक शाखा** | : | पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) |
| 4. | **आईएफएस कोड** | : | PUNB0093210 |

**प्रबंध संपादक**

आलेख

# गीत और प्रतीक

– गोपालचंद्र जोशी

नाद अखिल–विश्व की अभिव्यक्ति का माध्यम है। भावों की अभिव्यक्ति नाद पर अवलम्बित है। दूसरे शब्दों में नाद भावों का प्रतीक है। यही कारण है कि शब्द एक होकर उसके अर्थ अनेक होते हैं। कविकुल–गुरु कालिदास ने प्रतीकात्मक अर्थ को 'वागार्थ' और आचार्य भर्तृहरि ने इसे 'वाक्पद' कहा है। विश्व में नाद के लौकिक रूप दो हैं– स्थूल और सूक्ष्म। यहाँ हमारा आशय आहत नाद से ही है, क्योंकि अनाहत नाद केवल योग से सम्बन्ध रखता है, साहित्य–संगीत से नहीं। भरत, मतंग, कल्लिनाथ और दामोदर पंडित–जैसे प्राचीन संगीताचार्यों का भी यही मत था। आहत नाद लोकरंजक है और वह दो रूपों में क्रियाशील है–स्थूल नाद का आधार लेकर बोलचाल और साहित्य चलते हैं, सूक्ष्म नाद संगीत का विषय है। नाद भाव का प्रतीक है और नाद के प्रतीक हैं वाणी के चार आयाम–वैखरी, मध्यमा, पश्यंती और परा। साहित्य की सीमा वैखरी से मध्यमा तक है। संगीत पश्यंती में प्रवेश करता है, किन्तु परा वाणी का संकेत–भर कर सकता है। क्योंकि परावाणी अनाहत नाद का विषय है। संगीत–ग्रामों के षड्ज और मध्यम–ग्राम से लौकिक या देशी संगीत का आविर्भाव हुआ है, अत: वे परावाणी के विषय नहीं हो सकते। गांधार–ग्राम के संगीत से लौकिक व अलौकिक सभी कार्य संपादित हुए हैं, इसके प्रमाण भारतीय संस्कृति में प्रचुर हैं। इससे वह भी सहज सिद्ध होता है कि पूर्वकाल में कभी गांधार–संगीत इस पृथ्वी पर अस्तित्व में था। गांधार–संगीत के माध्यम से परावाणी के सागर से कितना अमृत मंथन किया जा सकता है, इसका पता हमें इस श्लोक से लगता है:–

**नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती।**
**अद्यापि मज्जनभयातुंवं वहति वक्षसि॥**

अर्थात्– इस नादरूपी सागर के ओर–छोर का पता स्वयं सरस्वती (वाणी) को भी नहीं है। डूब जाने के भय से वे भी अभी तक तुंबियों (वीणा) को वक्ष पर धारण किए रहती हैं। प्रतीकार्थ की प्रेषणीयता में हम यों कह सकते हैं कि नाद जब साहित्य और काव्य की स्थूल या मूर्त सीमा से संगीत की सूक्ष्म स्वर–तरंगों में प्रवेश करता है, तो वाद्ययंत्र के नियमित स्वर उसका नियमन करने के लिए आवश्यक होते हैं। गीत के लिए वादन जितना अपरिहार्य है, उतना ही नृत्य भी। 'गीतं वाद्यं नर्तनञ्च त्रयं संगीतमुच्यते'– गीत, वाद्य तथा नृत्य, ये तीनों कलाएँ समवेत रूप में संगीत हैं। ये कलाएँ परस्पर एक–दूसरे का नियमन करती हैं। यह सिद्धान्त 'मार्गी' या शुद्ध संगीत के साथ ही देशी संगीत के लिए भी है। आधुनिक भारतीय संगीत जिस अवस्था में है, उसमें शुद्ध संगीत की या गांधार–ग्राम की चर्चा करना ही विचित्र लगता है। पर इतिहास की पुनरावृत्ति होती है और संगीत की आगभिष्यत् संभावनाओं को हम अस्वीकार नहीं कर सकते।

हमारी वाणी का हृदय से मस्तिष्क तक जो सूक्ष्म संचार है, उसका रसास्वादन कराने की क्षमता सूक्ष्म नाद में निहित है। वाद्ययंत्रों में मंद्र–सप्तक से तार–सप्तक तक जो स्वर–विस्तार है, वह यथार्थ में हमारे शरीर में व्याप्त नाद का प्रतीक है–सभी नाद का नहीं, वरन् संगीतोपयोगी रंजक नाद का। इस नाद से गीत–संगीत तभी उत्पन्न होता है, जब वह निश्चित श्रुतियों पर चलता है, इन्हीं श्रुतियों या कर्णप्रिय ध्वनि–संकेतों पर शास्त्रकारों ने सप्त स्वर कायम किए, यानी जब नाद प्रतिध्वनि प्राप्त करके स्थिर अवस्था में आकर सरस, मधुर व रंजक बन जाता है और उसे अन्य किसी ध्वनि के आश्रय की आवश्यकता नहीं रहती 'स्वर' कहलाता है– 'स्वयं यो राजते नाद: स स्वर: परिकीर्तित:।' इन्हीं सप्त स्वरों में षड्ज स्वर या 'सा' को मनुष्यों के सर्वाधिक अनुकूल पाया गया या कहें कि मनुष्य षड्ज स्वरजीवी है। 'सा' स्वर का नाद नासिका, कंठ, वक्ष, तालु, जिह्वा तथा दाँतों इन छह: अंगों के आश्रित होने से इसे 'षड्ज' कहा गया है। मानव जाति के विकास, वर्धन और पोषण की महती संभावनाएँ षड्ज स्वर में हैं।

मोर षड्ज स्वर में केका ध्वनि करता है। अत: संगीत की दृष्टि से मोर मनुष्यों के बहुत समीप है। हमारे संगीत में षड्ज स्वर का कितना महत्त्व है, यह तो सर्वविदित है। कोई भी राग या रागिनी इस स्वर से रहित नहीं है। किन्तु रहस्य की बात यह है कि जहाँ हमारे संगीत का प्रथम स्वर षड्ज है, वहीं 'सामवेद' का प्रथम स्वर मध्यम है। हमारे स्वर–क्रम में मध्यम स्वर या 'म' मध्य में है, अर्थात् मध्यम

स्वर सेतु है- उसके पहले तीन पूर्वांग स्वर हैं और बाद में तीन उत्तरांग स्वर। संगीत के सागर में जो गहरे उतरे हुए हैं, वे इस गूढ़ रहस्य को जानते हैं कि षड्ज, मध्यम और गांधार-ग्राम की मूर्च्छनाओं में कहीं कभी भी मध्यम स्वर का लोप नहीं होता। वह सदा सर्वदा चैतन्य रहता है। ऐसा लगता है, जैसे षड्ज स्वर में मध्यम स्वर का जो संचार है, वही गांधार-ग्राम का आविर्भाव करता है। यही वह स्वर है, जो हमारी सीमित चेतना के परे परावाणी के अनुपम सौन्दर्य और अनिर्वचनीय माधुर्य का आस्वादन करा सकने की क्षमता रखता है।

षड्ज में मध्यम की स्पंद-शक्ति ही साम है, जो गांधार-गाम का आदि राग है और इस राग में सप्त स्वरों पर अग्नि, ब्रह्मा, नारद और तुंबुरु आदि ने गान किया था, इसके बहुत ही पुष्ट प्रमाण पुराणों व संहिताओं से मिलते हैं। यह हमारा और हमारे आधुनिक भारतीय संगीत का दुर्भाग्य है कि इस अमित सौन्दर्यशाली और अतिशय सुमधुर स्वर प्रतीक के कुछ टुकड़े भी हमारे नसीब में नहीं हैं, क्योंकि मध्यम स्वर का तार के स्वरों से समायोजन कर उन्हें पुन: मध्य और मंद्र-सप्तक पर लाकर वाणी का विषय बनाना इतनी जटिल और दु:साध्य गायन-प्रक्रिया है कि तानसेन-जैसे महान् गायक भी अपना संतुलन खो बैठे थे। उस सीमा पर जाकर आहत और अनाहत नाद में भेद करना मुश्किल हो जाता है, लौकिक और अलौकिक के बीच बहुत झीना परदा रह जाता है, अपने अंतर्मन और समूची विश्व-चेतना के बीच सतत संवाद चल पड़ता है। उस अवस्था में एक राग में सभी राग समाए लगते हैं और एक राग से सभी राग निकलते लगते हैं। महान् संगीतज्ञों का जिन्हें सन्निध्य मिला है, वे इस कथन का मर्म अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। आधुनिक भारतीय संगीत व्यावसायिक मनोवृत्ति के जिस घटाघोप में अपना अस्तित्व खो रहा है, वह सचमुच ही चिंता का विषय है। सस्ती, बाजारू और भड़कीली धुनों पर रचित असंख्य गीत यह सिद्ध करते हैं कि हमारे आधुनिक संगीतज्ञ और कवि, संगीत की महान साधना की उपेक्षा कर लोकप्रियता की उस मंजिल पर चढ़ने की होड़ कर रहे हैं, जो किसी भी कलाधर्मी के लिए शोभनीय नहीं है। हमारे अधिकांश आधुनिक संगीत में स्वर के प्रतीक दूषित हैं, अत: बहुत कम गीत अंतर्मन को छू पाते हैं। यदि हमारे संगीतज्ञ कभी सही धुन भी बनाते हैं तो उनपर लिखे गए प्रतीक गीत-भाव व भाषा में उखड़े हुए और कृत्रिम लगते हैं।

यह एक ठोस सत्य है कि संगीतीय ध्वनि के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले प्रतीक शब्द-भावों को केंद्रित कर मानसिक स्थिति में परिवर्तन लाने की क्षमता रखते हैं। इन्हें हम 'गीत के प्रतीक' कह सकते हैं, इन प्रतीकों के माध्यम से श्रोताओं के हृदय में भाव अंकुरित होकर रसोद्रेक करते हैं। गीत के शब्द जितने सहज, नैसर्गिक व संगीतमय होंगे, उतने ही हृदयग्राही एवं मार्मिक होंगे। संगीत को प्राणवान् बताने के लिए प्राणवान् शब्द चाहिए। वार्तालाप, साहित्य और संगीत सबका आधार 'वाक्पद' या वाणी के टुकड़े हैं। ये वाक्पद या वाणी के खंड अभिव्यक्ति के उद्देश्य से प्रतीक बन जाते हैं। प्रतीक जितने सुनियोजित और अर्थगर्भित होंगे, उतने ही प्रभावोत्पादक होंगे। व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से हमारा बौद्धिक व मानसिक विकास वाक्पदों के संग्रह और उनकी सापेक्ष सम्बद्धता पर निर्भर करता है।

हमारे प्रतीक जितने गहरे, सशक्त और अर्थवान् होते हैं, उतने ही हम विकसित होते हैं। नाद के महासागर में वैखरी और मध्यमा तरंगें हैं, पश्यंती उनका ओर-छोर है और परावाणी उस महासागर की अतल गहराई है। हमारी चेतना इस महासागर की तरंगों में तैर रहे बुद्बुद के समान है। वाक्पदों के प्रतीकार्थ से जुड़कर हमें अर्थवत्ता प्राप्त करना है। यही हमारी नियति है। काव्य और संगीत के आचार्य भर्तृहरि ने भी यही मत व्यक्त किया है। यह प्रकृति का नियम है कि अणु से सूक्ष्माणु बनते हैं, धारा से धारा मिलती है, प्रतीक से प्रतीक बनते हैं और राग से राग का आविर्भाव होता है। आधुनिक गीत-संगीत से जो प्रतीक उमड़ रहे हैं, वे जनमानस को स्वस्थ और सुसंस्कृत दिशा देने में अक्षम सिद्ध हो रहे हैं, किन्तु यह नवनिर्माण की अनिवार्य प्रक्रिया है।

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, साहित्य व अन्य कलाएँ स्थूल नाद को प्रभावित करने की क्षमता रखती हैं। केवल गीत-संगीत हमारे हृदय से मस्तिष्क तक संचारशील सूक्ष्म नाद को प्रभावित करता है। अत: संगीत की पैठ गहरी है। विश्व का कार्य-व्यापार सामन्यतया जिस स्तर पर चलता है, वह स्तर इतना स्थूल है कि मनुष्य के अंतर्मन, प्रकृति के द्रुत परिवर्तनशील विविध रूप और पशु-पक्षी जगत् में जो सूक्ष्म भाव निरंतर स्पंदित हो रहे हैं, उनसे उनका तादात्म्य नहीं हो पाता, उनमें लवलीन हो सकने की संवेदन शक्ति से वह रहित है। मशीन और टेक्नोलॉजी-युग की सभ्यता ने इन संवेदन-शक्तियों को और भी क्षीण कर दिया है। यदि कभी यह संभव हो पाता है, तो गीत-संगीत के साहचर्य में या आत्मान्वेषण की यातना के बिरले क्षणों में। जिस सूक्ष्म नाद को संगीत झंकृत करता है, वह नाद सरस और रंजक ही नहीं होता है, बल्कि सूक्ष्म भावों को घनीभूत कर अपेक्षित रस का उद्रेक भी करता है और इस प्रकार

मनुष्य मन की दुर्बलताओं के लिए प्राणवान् और सशक्त प्रतीकों का संबल भी खड़ा करता है। यही नहीं, यदि संगीत महान् साधना के सोपानों से गुजरता है, तो वह उस दिव्य और अलौकिक सौन्दर्य व माधुर्य के लोक के दर्शन जनमानस को करा सकने में सक्षम हो जाता है, जिसके सामने चमत्कारों और सिद्धियों का अस्थायी इंद्रजाल बहुत ही नगण्य लगने लगता है। क्षणिक चमत्कारों और सिद्धियों में जीवन-विकास के सूत्र कभी मिल नहीं सकते, क्योंकि आहत या अनाहत किसी भी नाद से उनका तालमेल नहीं बैठता। हम इस भटकी हुई संत्रस्त मानवता को वाङ्मय और गीत-संगीत की सशक्त आस्था के माध्यम से उबारने के लिए विवश हैं, कारण कि विकास का कोई अन्य सूत्र इतना स्थायी व प्रभावशाली नहीं है।

कई हजार वर्ष पहले द्वापर में युगपुरुष श्रीकृष्ण ने दिव्य प्रेम की सृष्टि के लिए संगीत का आश्रय लिया था। उन्होंने अपनी वंशी की सुमधुर तानों से गोपी-ग्वालों और सारे वृंदावन को ही नहीं मोह लिया था, वरन् आवश्यकतानुसार अनेक अलौकिक कार्य भी संपन्न किये थे और इस धराधाम पर उस द्विव्य संगीत की सृष्टि की थी, जिसे विद्वज्जन 'गांधार-संगीत' का नाम देते हैं। श्री कृष्ण की वंशी की दिव्य स्वर-लहरियों से वे कंपन (वाइब्रेशंस) अमिट रूप से वायुमंडल में और इतर छाए हैं। यद्यपि अन्य कंपनों की तरह 'स्पेस' से 'टाइम' और 'टाइम' से 'स्पेस' में उनके प्रवेश-निर्गमन की प्रक्रिया निरंतर चल रही है। विज्ञान के अनुसार नष्ट कुछ नहीं होता, केवल रूपाकार बदलते हैं या दूसरे शब्दों में कहें, तो प्रतीक या 'सिंबल्स' परिवर्तित होते रहते हैं।

इन प्रतीकों का परिवर्तन 'टाइम' या कालतत्त्व की गति के मान से होता है। भौतिक जगत् के स्थूल प्रतीक 'टाइम' या कालतत्त्व की पकड़ की वजह से केंचुल बदलकर सूक्ष्म होकर कब 'स्पेस' या 'अनन्त' में चले जाते हैं, यह समझने में आइंस्टीन और ओपेनहीमर-जैसे शीर्षस्थ वैज्ञानिकों ने भी अपनी असमर्थता प्रकट की है। क्योंकि हमारी पृथ्वी और उसका शेष ब्रह्मांड से सम्बन्ध निश्चित ही कालतत्त्व के अंतर्गत आता है, अत: 'स्पेस' में गए प्रतीक या सिंबल्स जब पुन: कालतत्त्व में प्रवेश करते हैं, तभी वे देश-काल को प्रभावित करने की क्षमता प्राप्त करते हैं। यह सहज ही समझा जा सकता है कि 'स्पेस' में प्रतीक अत्यंत सूक्ष्म होते हैं, लेकिन 'टाइम' के क्षेत्र में प्रवेश करते ही तनिक स्थूल होकर संवेदनशील मस्तिक के लिए ग्राह्य हो जाते हैं। कुछ कहा नहीं जा सकता, कब कैसे प्रतीकों के कंपन अंतहीत स्पेस से काल की सीमा में प्रवेश कर जाएँगे। विज्ञान, कला, साहित्य और संगीत के आयाम, जो मानवता का विकास अंकित करते हैं, इस अबूझ पहेली से आक्रांत हैं। हमारी मानव-सभ्यता और संस्कृति के वक्र-विकास के सूत्र यहीं सन्निहित हैं। लगता है, मनुष्य के व्यष्टि मन और विश्व के समष्टि मन के उत्थान, पतन और पुन: उत्थान की कहानी एक ऐसी कहानी है, जो बहुत तेजी से घटित होने के कारण इतिहास पर अपने पद-चिह्न सुस्पष्ट नहीं छोड़ती है- विकास के दौर की कई कड़ियाँ गायब हैं। गलती करने, भूलने और पुन: अपने संकल्प को दुहराने की क्रियाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि हम बड़ी तेजी से किसी ऊर्ध्व-मुखी लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं। जो मस्तिष्क जितना सचेत, संवेदनशील और अन्वेषक है, वह उतना ही विकसित होता है, यही नियम है, क्योंकि उसके प्रतीकों का भंडार उसी अनुपात में सुव्यवस्थित और अर्थवान् होगा। फिर भी बात असल में यह नहीं है कि कोई अधिकाधिक अर्थवत्ता प्राप्त करता चला जाए, बल्कि यह कि उसकी अर्थवत्ता और विश्व के बौद्धिक विकास के बीच कितना सामंजस्य, कितनी सार्थकता है। मैं सोचता हूँ धर्म, दर्शन, योग, साहित्य, संगीत आदि विषयों में भारत की बड़ी-से-बड़ी उपलब्धियाँ विकास के सामान्य स्तरों से न जुड़ पाने के कारण आज आवृत्त पड़ी हैं। रहस्यमय वाक् पदों के अर्थ हमारी चेतना के प्रवाह से विच्छिन्न हुए बिखरे हैं। विशिष्ट के अर्थ में अब तक जो कुछ हमारे सामने लाया गया है, वह बहुत ही नगण्य है। चमत्कारों से मानव जाति का कायापलट नहीं होना है, कायापलट का एक ही साधन है, नाद या नाद के प्रतीकों पर पूर्ण नियंत्रण या दूसरे शब्दों में कहें तो वैखरी, मध्यमा और पश्यंती वाणियों में पूरा-पूरा समन्वय यानी मनस्तत्व और उसकी भौतिक अभिव्यक्ति में सामंजस्य।

यथार्थ में संगीत इसी समरसता को पाने का मनुष्य-आत्मा का एक लयमय संकल्प है। सम्मोहक संगीत इस समरसता के अनिर्वचतीय आनन्द का आस्वादन कराते हुए हमारे भाव-जगत् को स्थायी रस से सिक्त करता है। बालक, वृद्ध, युवा, पशु-पक्षी, कीट-पतंग और यहाँ तक कि वनस्पति-जगत् सभी समरसता की ओर दौड़ रहे हें। यह कितना अजीब है कि हमारे अधिकांश आधुनिक संगीतज्ञ गीत और प्रतीक में समरसता को बिसराकर आधुनिक पाश्चात्य संगीत की खूबियों को उभार रहे हैं। लेकिन उन्हें यह याद रखना है कि पश्चिम की मनोभूमि भारत में नहीं है। अनास्था के जिस स्वर ने पाश्चात्य साहित्य, कला और संगीत को मथ डाला, उसी ने वहाँ संगीतज्ञों और कवियों को उन प्रतीकों को खोजने के लिए बाध्य किया, जिसे इतिहास पाश्चात्य गीत संगीत की अपनी निजी परम्परा के दायरे में देखेगा। लेकिन यदि हमने अपनी मिट्टी की सुगंध

की सही परख किए बगैर पश्चिमी संगीत की खूबियों को अंधाधुंध भारतीय फिल्मी संगीत व गैर फिल्मी संगीत में उभारने की कोशिश की, तो इतिहास हमें क्षमा नहीं करेगा। जीवन के संत्रास, घुटन, युद्ध की विभीषिका, यौन-उच्छृंखलता और अनास्था आदि कई ऐसे पहलू हैं, जो भारतीय मनोभूमि को पश्चिम की तरह आविष्ट किए हुए नहीं हैं। संगीतीय भाषा और संगीतीय प्रतीकों के गत्यवरोध (डेडलॉक) की समस्या अवश्य इस समय हमारे यहाँ वैसी ही है, जैसी पश्चिम में चार्ली पार्कर के पूर्व उत्पन्न हुई थी। चार्ली पार्कर के पूर्ववर्ती जाज़ संगीत में रिद्म, मेलॉडी और हॉरमनी को इतना खींचा गया कि कृत्रिमता के चंगुल में उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। पार्कर ने अदम्य उत्साह से जाज़-संगीत का पुनरुद्धार कर उसको युग की सही मन स्थिति के अनुरूप नवीन संगीतीय भाषा और प्रतीकों में ढाला। भारतीय संगीत में एक समय था, जब कठोर शास्त्रीय नियमों में वह इतना बँधा था कि केप्टन विलर्ड और केप्टन डे जैसे विद्वानों ने उसके एकरस होने की शिकायत की थी, क्योंकि उसमें उन्हें लय और सामरस्य का अभाव खला, जिनके बिना माधुर्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। और, आज जब भारतीय संगीत लय और सामरस्य की खोज में चला, तो पाश्चात्य संगीत की विशेषताओं को कम, लेकिन उसके भड़कीलेपन, सजावटी-पन और तकनीकी हलचल को बहुत अधिक महत्त्व उसने दिया। वास्तविकता यह है कि भारतीय संगीत अपने-आपमें एक इतनी समृद्ध कला है कि उसे किसी भी उद्देश्य के लिए किसी अन्य देशीय संगीत-पद्धति का मुँह जोहने की आवश्यकता नहीं।

आवश्यकता है संगीतज्ञ की अनुसधान वृत्ति, गहरी संवेदनशीलता और अंतदृष्टि की। व्यवसाय, विज्ञापन और सस्ती लोकप्रियता की कीमत पर साधना की वह उन्नत शक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है, जो लाख-लाख लोगों के मन-प्राणों को अंतर्बोध से आलोकित कर उन्हें नया दिशा-दर्शन कराए। यह वही संगीत हो सकता है, जो कभी पुराना न हो और जो हर बार हमें अनुभव के नए धरातल पर पहुँचा सके। स्वर्गीय भातखंडे जी ने भी हमारे आधुनिक संगीतज्ञों, गीतकारों और गायकों के प्रति यही क्षोभ व्यक्त किया है। संगीत-सुधी भातखंडे जी ने घोर अध्यवसाय और परिश्रम से प्रचलित संगीत-पद्धतियों का अध्ययन कर उनकी विशिष्टताओं को आत्मसात् किया। किन्तु जैसा कि वे चाहते थे, प्राचीन भारतीय संगीत के स्वरूप का आधुनिक संगीत से कोई समन्वयात्मक तालमेल खोजकर प्राचीन संगीत के गहन रहस्यों को उजागर करने में समर्थ न हो सके। उनकी यह बड़ी आकांक्षा थी कि हमारे पुरातन वैदिक साम-संगीत की जटिल गुत्थियों और विभिन्न संप्रदायों (शिवमत, हनुमन्मत, नारदमत आदि) की राग-रागिनियों के स्वरूपों का समीचीन विश्लेषण कर आधुनिक संगीत में उनकी सर्थकता सिद्ध की जा सके। विशेषकर प्राचीन संगीताचार्यों की राग-रागिनियों की ध्यान-पद्धति का वे कोई युक्तिसंगत आधार न खोज पाए। जैसाकि मैं पूर्व में कह चुका हूँ-नाद भाव का प्रतीक है, नाद का प्रतीक है वाणी और वाणी का प्रतीक है रूप। ध्यान, रूप की कल्पना का आधार है, वैसे ही जैसे गीत प्रतीक की कल्पना है। भावों की कल्पना को साकार और प्राणवान् बनाने के लिए राग और रागिनियों का ध्यान द्वारा आवाहन करने की परिपाटी हमारे प्राचीन संगीताचायों में चली आई, दूसरे शब्दों में उन्होंने कल्पना में कल्पना आरोपित की है।

यह एक अत्यंत वैज्ञानिक पद्धति है, जिसकी नीवँ पर भारतीय संगीत का भव्य प्रासाद खड़ा है और जिसके अभाव में पाश्चात्य संगीत दिव्य और अलौकिक सौन्दर्य के द्वार खोलने में हमेशा असमर्थ रहेगा। किन्तु उस मधुरतम सौन्दर्य की झलक हमें भी कहा मिल सकी है हमारे अनुभव के स्तर सीमित हैं। कला, विज्ञान या संगीत के विकास में अंतहीन 'स्पेस' से काल की सीमा में जो कंपन प्रवेश करते हैं, वे ही निर्णायक बनते है। कोई वैज्ञानिक किसी रहस्योद्घाटक सूत्र का उद्बोध कौन से क्षण पा लेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। वैसे ही कोई कवि या संगीतज्ञ किसी मधुरतम गीत या धुन को अंतर्मन में किस क्षण बुन लेगा, कह सकना कठिन है। यह सब व्यक्ति के विकास की सीमा से सीमित है। यदि ऐसा न होता, तो गायक और संगीतज्ञ के लिए संगीत के आकाश में ऊँची-से-ऊँची उड़ानें लगा पाना हमेशा संभव होता। लेकिन हम देखते हैं, बात ऐसी नहीं है। यह सीमा प्रकृति की सुरक्षा के लिए है। यदि सीमा-रेखा न हो, तो विशेष मनस्तत्व-वाले लोग भौतिक दुनिया की तो क्या, प्रकृति को भी प्रभावित करने की क्षमता विकसित कर लें। प्रकृति उसी से प्रभावित हो सकती है, जो उसकी सुरक्षा का दायित्व अपने समर्थ कंधों पर झेलने के लिए तैयार है-चाहे वह योगी हो या वैज्ञानिक, संत हो या संगीतज्ञ। अन्यथा किसी ने अपनी सीमा लाँघने का दुस्साहस किया, तो प्रकृति का कभी न खाली जाने वाला वार वहाँ तैयार है। हम सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकते, वरन् अपने को विकसित कर सीमा का दायरा बढ़ा सकते हैं। निस्संदेह यहाँ मेरा आशय गांधार-संगीत से है। यह बहुत दूर की मंजिल है। इसके पूर्व हमें षड्ज और मध्यम-ग्राम के संगीत की शुद्धि करनी होगी। भारतीय संगीत में राग और रागिनियों का भंडार इतना विशाल है तथा

ग्रहस्वरों, विशिष्ट ग्राम की मूर्च्छगाओं और नवरसों के स्थायी व संचारी भावों के साथ उन्हें इतनी बारीकी से गूँथा गया है कि निपुण-से-निपुण संगीतज्ञ के लिए भी उनके सही स्वरूप को ढूँढ़ पाना बहुत मुश्किल है। यह काम इसलिए और भी मुश्किल हो गया कि राग और रागिनियों पर लक्षण-गीतों या प्रतीक-गीतों का निपट अभाव रहा। राग-रागिनियों का यह हाल है, तो शुद्ध सप्तस्वरों पर गीत-रचना की तलाश में तो हमारे हाथ विद्या-वांगीश्वरी सरस्वती के कंठ में पहने हुए हार के नीलकमलों तक ही पहुँच जाएँ। हमारी संगीत-पद्धति में जो प्रचलित स्वर-लिपियाँ हैं, उन्हें भी बहुत विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता।

पुराने संगीत-घरानों के जो गीत मिलते हैं, वे शुद्ध राग-रागिनियों के स्वर-प्रतीक न होकर खयाल, टप्पा, ठुमरी, तराना, ध्रुवपद आदि शैलियों के रूप में मिलते हैं और वे भी शब्दों और स्वरों के परिवर्तन के साथ। आधुनिक संगीतज्ञ और विशेषरूप से सिने-संगीतज्ञ कर्णप्रिय और लोकप्रिय नवीन धुनें और स्वर उत्पन्न करते हैं। किन्तु हम उन्हें लोकरुचि के अंतर्गत तभी कह सकते हैं, जब समाज, संगीत और नाद के तत्त्व को समझता हो। इस समय अच्छा-बुरा सब इसलिए खप रहा है कि समाज संगीत के तत्त्व से अनभिज्ञ होकर भी उसके प्रति समर्पित है। यदि हमारे जनमानस को नाद के तत्त्व की समझ सही माने में होती, तो आज भारत में संगीत उस उच्च स्तर पर होता, जहाँ मानव-जीवन निरे बौद्धिक और तार्किक ऊहापोहों के कुहर जाल से मुक्त होकर भावना और संकल्प के राज-मार्ग पर अग्रसर होता।

आज हम बुद्धिजीवी होकर भी खोखले हैं, आस्थावान् होकर भी ढोंगी हैं, आत्मीय होकर भी अजनबी हैं और भावुक होकर भी लंपट हैं। मानवीय मूल्य कहने-सुनने में सुन्दर होकर भी हमारे जीवन को सुन्दर बनाने में अक्षम सिद्ध हो रहे हैं। अनुभव की एक लंबी यात्रा कर चुकने के बाद भी हम जीवन के महत्त्वपूर्ण निर्णयों के लिए या तो एक-दूसरे का मुँह ताकते हैं या अलौकिक की ओर भागते हैं। हमारी भावभूमि की अनुर्वरता और मनोबल की निष्क्रियता का कारण काव्य और संगीत की शुद्ध परम्परा से अलगाव होना है। मेरा आशय किसी भी परम्परा के अंधानुकरण से न होकर उसकी ऐतिहासिक उपलब्धियों और उसमें निहित नवविकास की अनंत संभावनाओं से है। मिसाल के लिए आधुनिक संगीत के लिए प्राचीन ठाठों के अंबार से हमने केवल दस सर्वोपयोगी ठाठ चुने हैं। अनुमान लगाएँ तो एक, ठाठ से 848 राग निकलते हैं। प्राचीन मतानुसार एक मुख्य राग की पाँच रागिनियाँ और कम-से-कम पाँच अंश राग माने गए हैं। यदि एक ही गेय रागिनी लें, तो भावों की विविधता के अनुसार हजारों स्वर-प्रतीक हो सकते हैं यानी जितने प्रतीक उतने शब्द और गीत। मिसाल के तौर पर मेघ राग की रागिनी मल्लारी ले सकते हैं, जिसमें षड्ज-पंचम स्वर वर्जित हैं। मल्लारी का मुख्य प्रतीक स्वर धैवत है। यह वियोग-श्रृंगार की मधुरतम रागिनी है:-

**गौरी कृशा कोकिलकंठनादा,**
**गीतच्छलेनात्मपतिं स्मरंती।**
**आदाय वीणां मलिना रुदंती,**
**मल्लारिका यौवनदून चित्ता।।**

गौरवर्ण, कृशांगी, कोकिलकंठी, विरह से मलीन और यौवनमद से त्रस्त यह मल्लारिका हाथों में वीणा लेकर गाने के बहाने अपने मेघ प्रियतम का स्मरण कर रही है। वियोग-श्रृंगार की अनुभूतियों को काव्य और संगीत में सँजोते हुए सदियाँ बूढ़ी हो गईं, किन्तु वियोग-श्रृंगार की रसवंती नायिका अभी भी चिर नवीन है। जब आकाश मेघाच्छन्न होने लगता है, वियोगिनी मल्लारिका वीणा पर गायन के साथ अपने कंत को याद करती है, तब उसकी वीणा के तारों से कितने मधुरतम वेदना-भरे गीत फूट निकलते हैं, यह बात कौन रसिक नहीं जानता। यह वियोगिनी मल्लारिका कवियों, गायकों और संगीतज्ञों के हृदयों में चिर समय से सुमधुर गीतों, स्वरों और सरगमों को झंकृत करती रही है।

विरह की वेदना ने संसार के उच्चतम काव्य और संगीत को जन्म दिया है। हम सभी वह पाना चाहते हैं, जो हमारे पास नहीं है-उसकी दूरी की अनुभूति, अभाव की वेदना, उसे पाने की लालसा हजार-हजार स्वरों, संकेतों और प्रतीकों के बहाने व्यक्त हो रही है। ये स्वर, संकेत और प्रतीक अभिनव गीत-संगीत की प्रतीक्षा कर रहे हैं। और, सब-कुछ पाने के बाद भी कुछ रह जाता है, जिसे पाने के लिए हम तरसते रहते हैं।

वैखरी वाणी से परावाणी तक यह श्रृंगार-यात्रा है वियोगिनी मल्लारिका की, जो षड्ज स्वर का वर्जन इसलिए करती है कि मोर की केका-ध्वनि उसके मिलनातुर चित्त को त्रास देती है और पंचम स्वर का वर्जन, उसे इसलिए करना पड़ा कि वह पंचम राग में कोकिल के समान मधुर आलाप करके वर्षा-ऋतु में भी ऋतुराज वसंत को बुलाना चाहती है, क्योंकि वह आखिर यौवन की उजड़ी वीथियों में भटक रही है। कैसा मार्मिक संगीत-दर्शन है भारतीय मनीषियों का! और यह सिर्फ़ एक मिसाल है।

साभार :(संगीत पत्रिका)

■

आलेख

# सत्य का अन्वेषण और शब्द के रूपाकार

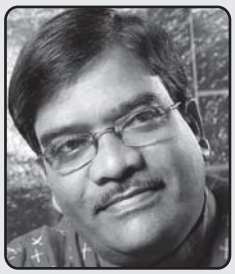

लक्ष्मीनारायण पयोधि

मेरे लिये कविता सिर्फ़ शब्दों का समुच्चय मात्र नहीं,समूचा जीवन-संस्कार है। मैं इसे अपने आवेग के क्षणों का मुखर साक्षी मानता हूँ। यही मेरी आध्यात्मिक शक्ति भी है। इसके माध्यम से मैं अपने चित्त को शुद्ध और चेतना को जागृत करता हूँ,आत्मा से संवाद करता हूँ। मैं इसे श्रेष्ठ भावदशा मानता हूँ। कविता के अवतरण के क्षणों में अक्सर मैं इस अनुभूति से भर उठता हूँ कि समस्त मनोविकारों से मुक्त सबसे पवित्र भावना को जी रहा हूँ।

कविता मेरे लिये आत्मानुसंधान का माध्यम है। नेपथ्य से परम भाव की खोज का निमित्त भी। चारों ओर घुप अँधेरा। भीतर-बाहर घटाटोप। शब्दों की हृदय-विदारक चीख-पुकार। स्पष्ट कुछ भी नहीं – न आवाज़ें,न चेहरे ही। ख़ुद को तलाश करने की कोशिश में एक अंतहीन भटकाव। अँधेरी गुफ़ा की यातनामयी अविराम यात्रा। उजाले की प्यास। छटपटाहट और तलाश। अजब ऊहापोह। मन और बुद्धि का अपरिचित द्वंद्व। इसी संघर्षण के फलस्वरूप आशा के आकाश में कभी-कभी कोई कौंध होती और उस द्युति के आलोक में अवतरित होते कुछ शब्द....भाव-सौंदर्य और नाद-संगीत के साथ....बेतरतीब....अनगढ़....मेरी कविताएँ। इन्हीं में शामिल अपने कवि से मेरा आहवान : ''असमर्थ कविता समय में/करो अन्वेषण/संवेदना की नयी भाषा का/xxx/खोजो कुछ नयी ध्वनियाँ/गढ़ो कुछ नये शब्द /xxx/ज़रूरत है/अनुभूति को नये चेहरों की/रिश्ता हो इतना अंतरंग/कि कविता से हो सके आत्मीय संवाद!''

कभी-कभी कोई महास्वप्न देखता हूँ। नींद टूटने पर उसका कोई स्मृतिशेष दृश्य मन को सुगंधित उत्फुल्लता या कड़वी उदासी से भर जाता है। उन आहलादपूर्ण अथवा त्रासद क्षणों को शब्दों में बाँधने का प्रयास करता हूँ। शब्दों से मेरा आहवान : ''मेरे सपनों का बाना पहन/उतर आओ आँखों में/मैं तुमसे जीवन रचूँगा/तुम्हारे नादवीर्य से/मैं गुँजा दूँगा दिक्काल/शब्द/तुम मंत्र बन जाओ!'' मेरा विश्वास है कि किसी भी सच्ची कविता का मन पर प्रभाव मंत्र की तरह होता है। इसीलिये मैं शब्दों का सतत अभ्यास करता हूँ। इसी तरह शायद,किसी सच्ची कविता का जन्म हो जाये: ''अपनी समस्त शक्तियों के साथ/मेरी कविता में आ विराजो शब्द/मैं तुम्हें सिद्ध कर लूँ!'' दरअसल, शब्द-साधक की संधानवृत्ति ही उसे सही शब्द तक ले जाती है और सार्थक काव्यशब्द के बिना कोई वाक्य कविता की आत्मा के साथ प्रकट हो ही नहीं सकता।

आध्यात्मिक चिंतन मेरे लिये सामाजिक चिंतन से अलग कभी नहीं रहा। वह मेरी काव्य-संपदा का अनिवार्य हिस्सा है। वस्तुत:यही हिस्सा मेरे लिये अपनी संवेदना को तराशने अथवा उसे अधिक धारदार बनाने का ज़रूरी उपकरण है। मेरे काव्य पर चर्चा करते हुए सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ.धनंजय वर्मा ने संभवत:मेरे काव्य की इसी प्रकृति और प्रवृत्ति को रेखांकित करते हुए कहा है कि ''यह महज संयोग नहीं है कि पयोधि की कविताओं में ऋषि,मंत्र,आरण्यक आदि शब्द आते हैं और कोई भी शब्द अपनेआप में संपूर्ण नहीं होता,उसके पीछे एक चेतना विद्यमान होती है। पयोधि की कविताओं में चेतना का यह विस्फोट सुखद है।'' धनंजय जी यह मानते हैं कि ''कविता मनुष्य को सृजित करने के क्रम में उसे बुनियादी रूप से बदलना चाहती है और इस दृष्टि से भी पयोधि की कविताएँ यकसानियत के इस दौर में अलग फिंगरप्रिंट वाली सिद्ध होती हैं।''

संवेदना के भिन्न आयाम मेरे काव्य के केन्द्रीय तत्व रहे हैं। अपनी कविताओं को किसी विचारधारा विशेष का प्रवक्ता बनाने का मेरा आग्रह कभी नहीं रहा। विचार घनीभूत रूप से अपने समग्र प्रभाव के साथ कविता में उपस्थित हो सके,यह प्रयास मेरा अवश्य रहा है। काव्यभाषा मेरे अपने काव्य-संस्कारों, विषयवस्तु और काव्यरूप के अनुरूप आकार अथवा व्यक्तित्व धारण करती है। यहाँ फिर श्रद्धेय धनंजय वर्मा जी का कथन याद आता है। उन्होंने कहा है, ''शब्द को कामधेनु बनाकर उसके थनों से इच्छित अर्थ-ध्वनियाँ दुह लेने की कामना महज संयोग नहीं है। यह एक साधक की

सृजन-सामर्थ्य है।''

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है,जो अपनी संवेदना के अनुरूप प्रकृति और जगत् की क्रिया-प्रतिक्रिया को अनुभव करता है। इसे ही हम अनुभव-जगत् कहते हैं। समस्त प्रणियों में मनुष्य ही अपने अनुभव की कलात्मक अभिव्यक्ति में अधिक सक्षम है। वह शब्द,नाद-संगीत,देह-मुद्राओं और रंग-रेखाओं सहित विभिन्न कलारूपों के माध्यम से अनुभव-जगत् को भाव-जगत् में रूपांतरित कर कल्पना को आकार और व्याप्ति देता है। कविता इसी भाव-व्याप्ति का एक प्रमाण है। कवि प्रकृति के स्पंदन में मनुष्य की संवेदना का अन्वेषक और सर्जक होता है। वास्तव में वह कविता में निसर्ग के क्रियाकलापों के माध्यम से मनुष्यता के सबूत खोजता और उन्हें सत्यापित करता है।

मुझे कविता का जन्म किसी पुष्प के खिलने जैसी घटना लगता है। कविता हो,या पुष्प - दोनों ही अपनी आत्मा की सुगंध से जीवन को आनंदमय कर देते हैं। इसलिये: ''मुझे आती है पुष्प की भाषा/उसके व्याकरण का मैं गहन अध्येता/रंगों में व्यक्त शब्दों को/उनकी लय के साथ पढ़ने का/मैंने किया है विशेष अभ्यास/पंखुड़ियों के घुमाव और कटाव से/मैं समझ जाता हूँ/शब्दों का उचित बलाघात से उच्चारण/और स्वर का संतुलित आरोह-अवरोह/xxx/ फूल को सूँघने का अर्थ/अपनी सुगंध को पहचानना है/मुझे मालूम है अभी तुम्हारे पास/वह संवेदना नहीं है/जिससे सुंदरता को सिर्फ़ देखा या भोगा नहीं/महसूस किया जाता है।''गहरी संवेदना के बिना कविता को अनुभव करना भी लगभग असंभव है। फूल की सुगंध और चिड़िया के गान से अलग नहीं है कविता :'' प्रार्थना है चिड़िया का गान/अजान/जैसे सुगंध को प्रकट करते/फूल का अध्यात्म। ''यही अध्यात्म कविता का है ''शब्द की काया भेद/कर जाती आत्मा में प्रवेश/xxx/मथती अंतरावयों को/रचती नाद के आयाम/उकेरती अर्थ की अनगिन/संभावनाओं के बिम्ब/xxx/कई-कई बार हो आती शब्द के आरपार/ब्रह्म में करती अंतरित/xxx/स्वरूप मात्र नहीं/अध्यात्म है कविता।''

मैं कविता के बारे में निष्ठापूर्वक कह सकता हूँ कि : ''शब्द नहीं केवल/भूख का घोषणा-पत्र/मंत्र रोटियों का/पसीने की गंध में भींगी/फ़सलों का सामगान।'' और यह भी कि दिन-प्रतिदिन हिंस्र हिंस्रतर होते परिवेश में यह मेरे लिये एक ऐसा विश्वास है, जो मेरी चेतना को परिष्कृत करते हुए आस्था बनकर मुझे निरंतर शब्द-संधान की दिशा में प्रेरित करता है : '' तुम्हारी साज़िशों से/ध्वस्त नहीं होगी दुनिया/बचा लेंगे मेरे शब्द /मंत्र बनकर।''

मेरी कविताएँ अपने समकाल के आनंद और दु:ख के अंतर्नाद की प्रतिध्वनियों को प्रतीकात्मक रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयास है। इस भाव से कि:''आने वाले क्षण को गुज़रने से पहले/कर सको महसूस अपनी इंद्रियों से/कि जी सको उसे भरपूर/और बना सको/अपने जीवन का अमिट अनुभव।''मेरी मान्यता है कि जो बीत गया,वह केवल स्मृति का हिस्सा है। इसलिये क्षण के गुज़र जाने से पहले उसका अनुभव करना है,ताकि वह जीवन का हिस्सा बन सके। इसके लिये हमें आने वाले क्षण की आहट यानी समय के नाद को सुनने और उसके संकेतों को समझने का अभ्यास करना होगा। मेरा काव्य वही अभ्यास है। इस अभ्यास में समय की विभिन्न ध्वनियाँ हैं। वास्तव में ये मनुष्य की नाना प्रवृत्तियों की प्रतिध्वनियाँ हैं। आज मनुष्य प्रेम और करुणा की तुलना में स्वार्थ और विद्वेष जैसी नकारात्मक वृत्तियों की ओर कितनी तेज़ी से आकर्षित हो रहा है! इन चित्त-वृत्तियों के कारण व्यक्ति एक साथ कई-कई किरदारों को जी रहा है : ''आदमी के भीतर आदमी/एक को खुरचो तो निकल आता दूसरा/दूसरे से तीसरा और तीसरे से चौथा...../सिलसिला होता नहीं ख़त्म।''

सिद्ध कविता गुनगुनाहट के साथ गीत बन जाती है। वह वेदना और आनंद से हृदय को संवेदित करती है। उसकी द्युति काव्यप्रेमी के मन में कौंध बनकर उतर जाती है और उसके अंतर्मन को करुणा के आलोक से भर जाती है। कविता वह नदी है,जिसका प्रवाह विभिन्न रूपों में निरंतर हमारे भीतर बना रहता है :''कभी भावना-सी उद्दाम/तोड़ती तटबंधों को/कभी उदासी-सी निढाल/भूली जीवन-छंदों को।'' कविता का स्रोत यही तो है : ''करुणा की अंत:पयस्विनी/मनोभूमि में रहती।''अनायास कोई एक काव्य-पंक्ति चेतना से अवतरित होती है और मन उसके सूत्र थामकर गुनगुनाने लगता है। उस विशिष्ट भावदशा में शब्दों का एक रेला-सा आता और चला जाता है। उसमें से जो शब्द मेरी गुनगुनाहट में शामिल हो जाते हैं,गीत बन जाते हैं। गीत निस्संदेह काव्य का शाश्वत,मधुर और सुंदर रूप है। यह सुख-दुख और एकांत में आनंद का अजस्र स्रोत है। सृजन के क्षणों में गीत,शब्द और राग का पुलकमेघ बनकर आनंद की वर्षा करता है। और :''मुझे क्या पता/कौन भीगता है लहरों से/मैं पयोधि हूँ/अपनी उथल-पुथल में रहता।''

कोई इसे आत्ममुग्धता भी कह सकता है। अनगढ़ शब्दों में बेतरतीब अभिव्यक्ति को कविता समझने का विभ्रम भी। लेकिन यह शब्द के प्रति मेरी अटूट आस्था की चरम अवस्था है। गीत मेरी

आस्था का सहयात्री है। यात्रा अनवरत है,क्योंकि:''अभी कहाँ पूरे हैं/गीत सब अधूरे हैं/दुख का अवसान अभी बाक़ी है/जीवन का गान अभी बाक़ी है/मममम/भावों से शब्दों का जोड़ नहीं/अनुभव का अर्थ में निचोड़ नहीं/सच का संधान अभी बाक़ी है/जीवन का गान अभी बाक़ी है/xxxx/कुछ सपने ज़िद करके आये हैं/कुछ अपने हो गये पराये हैं/कुछ का आहवान अभी बाक़ी है/जीवन का गान अभी बाक़ी है!''

मेरी मान्यता है कि कविता शब्दरूप और नाद-सौन्दर्य की समन्वित अभिव्यक्ति है। विधाता की भाँति कवि भी प्रकृति की शब्द-सृष्टि करता है। इसलिये वह शब्द-सृष्टा है। उसके सिद्ध शब्द ही मंत्र होते हैं। इसलिये वह मंत्र-सृष्टा भी है। यही हमारी ऋषि-परंपरा है। इसे कभी मैंने इस प्रकार व्यक्त किया था: ''कभी-कभी ही होती प्रज्ञा/और भावना का प्रिय संगम/एक पंक्ति रचने में/वरना/एक उम्र का अनुभव भी कम/xxxx/भावों से आलोकित/मेरा गान/अवतरित हो/अर्चन का।''

और अनायास ही मुझे यहाँ सुप्रसिद्ध समाज विज्ञानी एवं गाँधीवादी चिंतक प्रो. कुसुमलता केडिया के शब्द याद आ रहे हैं। उन्होंने मेरे काव्यपाठ और विमर्श के एक कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए कहा था कि ''शब्द को सिद्ध कर उसे मंत्र बनाना,या शब्द से जीवन रचकर उसके नादवीर्य से दिक्काल को गुँजा देने की कामना करना,कविता में बहुत सहज घटना नहीं है। पयोधि का काव्य वीभत्स के इस साधना-समय में मंत्रसृष्टा का नादवीर्य है।''

काव्य को मैं कथन-भंगिमा का चमत्कार मानता रहा हूँ। क्योंकि :''फूल की आत्मा सुगंधित/हैं अधर पर अर्चनाएँ/एक दुख हो तो कहे मन/अनगिनत हैं वेदनाएँ/xxx/पाँखुरी की मौन भाषा/भेद सारे खोलती है/xxx/कामना की इन्द्रधनुषी/एक तितली डोलती है।''

मन में काव्य-भावोदय-घटना ही वह क्षण है,जो कविता के अवतरण का कारण बनती है। यदि कविता 'आत्म की अभिव्यक्ति है तो वह कवि की 'आत्मा का प्रतिबिंब' भी है। मैंने सृजनशीलता को हमेशा इसी भावरूप में जाना है। क्योंकि:'' हर कथन के पार/अनगिन/अर्थ की संभावनाएँ/चुप्पियों के बीच/कुछ होतीं मुखर अंतर्कथाएँ!''

मेरी काव्य-साधना में ग़ज़ल कहने का अभ्यास भी शमिल रहा है। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ,जो दृढ़तापूर्वक यह मानते हैं कि काव्याभिव्यक्ति पूर्णत: नैसर्गिक होती है और उसमें अभ्यास की कोई भूमिका नहीं होती। यह एक ऐसी अवधारणा है,जो उन स्थापनाओं से साम्य रखती है,जिनके अनुसार काव्य सीधे आकाश से अवतरित होता है। मैं अपने अनुभव से यह मानता हूँ कि सच्चे कवि में काव्य-संवेदना तो नैसर्गिक अर्थात जन्मजात होती है,जिसके कारण वह काव्याभिव्यक्ति के लिये प्रेरित होता है,परंतु अपनी इस अभिव्यक्ति को कलात्मक और प्रभावी बनाने के लिये साधक को उसे तराशने का अभ्यास करना पड़ता है। यह अभ्यास ही काव्य-साधना कहलाता है। इसी साधना से वह काव्य को सिद्ध करता है। यही सिद्धि कवि को मंत्रसृष्टा के रूप में प्रतिष्ठित करती है। कविता को मंत्र बनाने के रूपक का तात्पर्य उसमें जनमानस को प्रभावित अथवा सम्मोहित कर सकने की शक्ति उत्पन्न करना है। तकनीकी रूप से भी काव्य एक कला है और उसका कौशल अन्य कलाओं की तरह नियमित अभ्यास से ही अर्जित किया जा सकता है। मैं साहित्य-सृजन की यात्रा में अभ्यास-पथ का पथिक रहा हूँ। इस यात्रा में काव्य के एक रूप ग़ज़ल का अभ्यास भी शामिल है।

ग़ज़ल अरबी-फ़ारसी का सफ़र करती हुई उर्दू के रास्ते हिन्दी में आयी है,इसलिये प्राय:उसे उसकी मूल भाषा के अरूज़ यानी छंदशास्त्र की कसौटी पर कसा जाता है। परंतु मैंने ग़ज़ल के छंद का स्थूल रूप से अभ्यास हिन्दी भाषा की प्रकृति और प्रवृत्तियों के आधार पर किया है। ग़ज़ल के सृजन में मेरा ध्यान उसमें व्यक्त भाव-संवेदना और उसके सांगीतिक प्रभाव पर रहा है। बह्र और रदीफ़-क़ाफ़िया की मोटी जानकारी के आधार पर गुनगुनाकर अपनी बात कहने का अभ्यास ही मेरी ग़ज़लें हैं। मेरी ग़ज़लों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सुप्रसिद्ध शायर पद्मश्री डॉ. बशीर बद्र साहब ने कहा है कि ''पयोधि की ग़ज़लें उर्दू और हिन्दी के विवाद से परे सच्ची और अच्छी ग़ज़लें हैं। मुझे ये ग़ज़लें दिल से पसंद आयी हैं। पयोधि के कई शे'र लाजवाब हैं। भारतीय ग़ज़ल पुरानी जकड़बंदियों से छूटकर धीरे-धीरे आज की खुली हुई बड़ी दुनिया की तरफ़ आ रही है। सौ-दो सौ साल पुरानी कसबाती अरूज़ी कसौटी को आज की ग़ज़ल के लिये नाकारा समझना चाहिये और मौजूँ शे'रों का जो मयार बन रहा है,उसका अरूज़ी लोगों को स्वागत करना चाहिये। हिन्दी दुनिया की बहुत बड़ी भाषा है। इसे पुराने कसबाती और दरबारी मीटर की जकड़बंदियों से आज़ाद होना ही पड़ेगा। पयोधि के कई शे'र जो पुराने अरूज़ पर खरे नहीं उतरते,वे नये मिज़ाज के शे'र हैं!'' और मैं तो रौ में अपनी बात कुछ इसी तरह करता रहा हूँ:

''हमें तो पत्थरों पर भी मज़े की नींद आती है/तुम्हीं बेचैन रहते हो न जाने किन गुनाहों से/xxx/अगर तुम छीन भी लोगे सभी

औज़ार हाथों से/ये कारीगर हैं खजुराहो तराशेंगे निगाहों से।'' या ''आदतों में शुमार हो चुकी है साज़िश भी/और धमकी की तरह करता वो गुज़ारिश भी।''या '' ढूँढ़ता मुझको मीर आया है/मेरे घर खुद कबीर आया है।'' या '' तुम समंदर में बहुत दूर तलक मत जाना/मेरे अतीत का पानी उधर ही गहरा है।''आदि।

कविता की संगति में चार दशक से भी अधिक समय बीत गया। अब तक प्रकाशित 41 पुस्तकों में 18 काव्यकृतियाँ (कविता,गीत,ग़ज़ल) हैं। सोचता हूँ,क्या कभी कविता से ऊब के क्षण भी आये ? ऐसा कोई लम्हा याद नहीं आता। हर बार लगता यही है कि उसके साथ रागात्मकता पहले से अधिक सघन हुई है। इस इश्क की कोई इंतिहा नहीं दिखती। साहित्यप्रेम का यह रोग विरासत में नहीं मिला। अनुवांशिकी समझने की भूल नहीं की जा सकती,क्योंकि मेरे पिता या माता के वंश में अब तक ज्ञात किसी भी पीढ़ी में कभी किसी व्यक्ति में इस प्रेमरोग के लक्षण नहीं पाये गये थे। इसे संक्रमण भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि मेरे ग्राम भोपालपटनम् में ही नहीं, दूर-दूर तक उस ज़माने में पूरे इलाक़े में ज्ञात रूप से साहित्यानुराग से ग्रस्त कोई नहीं था। वरना,कृष्णा पामभोई क्लब में उपलब्ध किताबों के जख़ीरे को आलमारियों और बक्सों में ताले लगाकर नहीं रखा जाता! ख़ुशी की बात है कि इधर की नयी पीढ़ी में साहित्यानुराग जागा है। कुछ युवा अच्छा लिखने भी लगे हैं। मगर तब तो कोई नहीं था! अतीत का स्मरण करता हूँ तो पूरी यात्रा स्पष्ट दिखाई देती है।

भोपालपटनम् गोण्ड जनजाति बहुल इलाक़ा है। इस क्षेत्र को गोदावरी नदी तेलंगाना राज्य से और इन्द्रावती नदी महाराष्ट्र राज्य से अलग करती है। इसलिये यहाँ की पारंपरिक गोण्डी संस्कृति और भाषा पर तेलुगू और मराठी का गहरा प्रभाव है। यहाँ के अधिकांश लोग संपर्क भाषा के रूप में गोण्डी और मराठी मिश्रित तेलुगू का प्रयोग करते हैं। हम भी वही बोलते रहे हैं। उप तहसील (अब तहसील) मुख्यालय होने के कारण नौकरीपेशा लोग ही प्राय:हिन्दी का प्रयोग करते थे। मध्यप्रदेश की शिक्षानीति के अनुरूप पढ़ाई का माध्यम हिन्दी था,परन्तु तेलुगूभाषी क्षेत्र होने के कारण मध्यभारत के ज़माने में यहाँ तेलुगू शिक्षक भी पदस्थ किये जाते थे। बस्तर स्टेट की सबसे बड़ी ज़मींदारी होने के कारण भोपालपटनम् में शिक्षा-व्यवस्था अच्छी थी। उस ज़माने में भी यहाँ हायर सेकंडरी स्कूल था,जहाँ पढ़ने के लिये महाराष्ट्र और संयुक्त आंध्रप्रदेश (तेलंगाना सहित) के बच्चे आते थे।

मेरे माता-पिता भी हमारी पढ़ाई के लिये ही अपना पैतृक गाँव अंकीसा छोड़कर भोपालपटनम् आ बसे थे। उनका संकल्प था कि वे हमें अपने कुटुम्ब के और बच्चों की तरह शिक्षा से वंचित नहीं रखेंगे। प्राइमरी स्कूल में नाम दर्ज़ हुआ तो हिन्दी में दीक्षा के साथ ही लगन से भाषा का अभ्यास आरंभ हुआ। माता-पिता कभी हिन्दी बोल नहीं पाये। मैंने लिखा भी कि :'' तुमने ख़रीदी कलम/और थमा दी मेरे हाथ/उसकी नोक से झरता रहा/संकल्प का उजाला/xxx/तुम्हारी दी हुई जागीर से/रचा मैंने शब्दों का साम्राज्य।''

मगर हिन्दी आरंभ से ही मुझे आकर्षित करती रही और उसके प्रति उत्पन्न अनुराग समय के साथ बढ़ता ही गया। इस कृषि का परिणाम यह हुआ कि : '' तुम्हारे लिखे फ़सलों के गीत/बसाकर अपने कंठ में/उतारता रहा मैं काग़ज़ पर/पृष्ठ-दर-पृष्ठ/आने वाली पीढ़ियों के लिये/ओ पिता/देखो तो/तुम्हारे सौंपे हुए उजाले के विस्तार का/अनुगमन कर रहा सूर्य।''

शिक्षा के आरंभिक काल में हिन्दी साहित्य के पठन-पाठन की रुचि जागृत करने में बाल भारती पुस्तकों का बड़ा योगदान मानता हूँ। फिर मेरे जीवन में 'नंदन','पराग','चंदामामा' जैसी बाल पत्रिकाएँ आयीं। थोड़ा बड़ा हुआ तो कृष्णा पामभोई क्लब में छुपे साहित्य के ख़ज़ाने पर नज़र पड़ी। वहाँ प्रेमचंद, निराला, प्रसाद, देवकीनन्दन खत्री, शरतचन्द्र, बंकिमचंद्र, रवीन्द्रनाथ जैसे दिग्गजों की पुस्तकों से रिश्ता बना। घरेलू लाइब्रेरी योजना का सदस्य बनकर भी कुछ किताबें अर्जित कर सका। मेरी हिन्दी को शाबाशी देकर प्रोत्साहित करने में भोपालपटनम् के प्राइमरी हेड मास्टर श्री तमड़ी चन्द्रैया मिडिल स्कूल में हिन्दी शिक्षक श्री दीनदयाल सिंह और बस्तर हाईस्कूल (जगदलपुर) के हिन्दी व्याख्याता परम श्रद्धेय डॉ.शशि पाण्डेय का उदार सहयोग और मार्गदर्शन रहा है। डॉ. शशि पाण्डेय जी से मैंने भाषा की जो बारीक़ियाँ सीखीं,वे साहित्य-लेखन में हमेशा मेरे लिये प्रकाश-स्तंभ की तरह रहीं।

हिन्दी के प्रति विशेष अनुराग ने हर कक्षा में भाषा की शुद्धता और लेखन-कौशल के मामले में मुझे अन्य विद्यार्थियों से हमेशा आगे रखा। इस वजह से प्राइमरी स्कूल से ही साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में सुनिश्चित भागीदारी होती रही। साहित्यप्रेम की बढ़ती सघनता के बीच अनजाने ही धीरे-धीरे उसके लक्षण विकसित होते रहे,जो दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर में अनुकूल वातावरण पाकर प्रकट होते गये और 1976 से व्यवस्थित साहित्य-लेखन का अभ्यास आरंभ हो गया। पहली कविता 'पार्क की दूब' तब के अत्यंत लोकप्रिय, प्रतिष्ठित और उत्कृष्ट साहित्य प्रस्तुत करने

वाले 'देशबन्धु' के रविवासरीय अंक में प्रकाशित हुई।

सन् 1979 में अपने गाँव भोपालपटनम् लौटा तो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ कविताएँ साथ थीं। गाँव में नियमित लेखन के साथ कुछ पुराने साथियों और शासकीय कर्मचारियों को साथ लेकर 'पल्लव साहित्य समिति' गठित की। इस समिति के माध्यम से कृष्णा पामभोई क्लब को साहित्यिक और रंगकर्म की गतिविधियों का केन्द्र बनाया। भोपालपटनम् में रहने के दौरान ही 'सोमारू' का सृजन प्रारंभ हुआ। सन् 1910 के आदिवासी महाविद्रोह भूमकाल पर आधारित ऐतिहासिक काव्यनाटक 'गुण्डाधूर' की रचना भी भोपालपटनम् में ही की। कविताएँ,गीत,ग़ज़ल,कहानियाँ और आदिवासी संस्कृति पर लेख प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में छपने ही लगे थे। हौसला और आत्मविश्वास बढ़ता गया और लेखन निर्बाध चलता रहा। कमी सिर्फ़ इस बात की थी कि अपने लिखे सुनाकर या पढ़वा कर उस पर सलाह-मशवरा करने के लिये कोई वहाँ था नहीं। इसीलिये आत्मालोचन से आत्मनिर्माण और आत्मविकास के पथ पर बढ़ता गया। सृजन की प्रेरणा हमेशा बस्तर की प्राकृतिक सुषमा रही और इस यात्रा का पाथेय बने जनजातीय जीवन,संस्कृति और संघर्ष। घने जंगल। उफनती पहाड़ी नदियाँ। पशु-पक्षियों के निर्भीक झुण्ड। खुली हवा में साँसों का उत्सव मनाता जीवन। इसी भाव का एक काव्यांश :'' अभावों में जीने की कला में परंगत हम/स्वाधीन थे अपनी सीमाओं में/निर्भीक/कर सकते थे विचरण/आहार की जुगत में/xxxx/ख़ामोश प्रहरी-सा/जंगल/सुरक्षा में सन्नद्ध।'' अद्भुत संसार है बस्तर,जहाँ जीवन प्रकृतिक निश्छलता के साथ सहज प्रवहमान है। उस जीवन के विविध रंगों से उकेरे गये चित्रों को समेटकर ही मैंने सबसे पहले काव्यकृति 'सोमारू' प्रस्तुत की थी,जिसे पाठकों और आलोचकों का अपार स्नेह मिला। उसे हिन्दी कविता में एक अभिनव प्रयोग के रूप में रेखांकित किया गया, जो मेरे लिये आह्लादकारी रहा। उसके तीन संस्करणों (1992,1997,2005) को मिले प्रतिसाद से प्रेरित होने के परिणामस्वरूप ही जनजातीय भावलोक पर केन्द्रित एक और काव्यकृति 'लमझना' का भी अवतरण हुआ। यह जनजातीय संस्कृति की विलक्षणता के साथ उस जीवन-संघर्ष के भोग को आत्मसात करने का है प्रभाव था कि इस कृति ने भी काव्य-रसिकों को आनंदित किया,जिसके फलस्वरूप इस कृति का नाट्य रूपांतरण 'जमोला का लमझना' के नाम से करना पड़ा,जिसके साल भर में ही भोपाल-मुंबई समेत विभिन्न नाट्योत्सवों में सुप्रसिद्ध रंगकर्मी श्री आलोक चटर्जी और युवा रंग-साधिका सुश्री ज्योति दुबे के निर्देशन में आधा दर्जन से अधिक मंचन हुए।

कथ्य या विषयवस्तु के अनुरूप अभिव्यक्ति के लिये साहित्य की विधा विशेष अथवा उस विधा के किसी रूपांग का चयन करना मेरी सृजन-प्रक्रिया का हिस्सा रहा है। यही कारण है कि मैं गद्य और काव्य के विभिन्न विधारूपों में आवाजाही करता रहा। सृजन के क्षणों में विधा या उसके किसी विशेष रूपांग में प्रवेश करते समय यह विचार कभी नहीं आया कि इस व्याप्ति या बिखराव से किसी एक विधा के पर्याय के रूप में मेरी पहचान स्थापित नहीं हो पायेगी। दरअसल,साहित्य में पहचान या उपलब्धियों की चिंता के साथ मैंने यह कर्म कभी किया ही नहीं। पिछले चार दशकों में अपने अनुभव-अनुभूतियों को शब्दांकित करते हुए जो संसार सृजन के केन्द्र में प्राय: रहता आया, उसमें शामिल रहे हैं, जनजातीय जीवन-संस्कृति का वैभव और संघर्ष। मुझे लगता है कि यही मेरा ध्येय रहा है और कवि-लेखक के रूप में दायित्व भी।

मो.नं. 8319163206
e mail :payodhiln@gmail.com

कला समय

आगामी अंक
अगस्त-सितम्बर 2022

''चित्रकला और चित्रकार''

प्रो.डॉ. लक्ष्मीनारायण भावसार के
व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर केन्द्रित विशेषांक

आलेख

# निमाड़ की महिलाओं के लोकगीतों में गुरु दर्शन

डॉ. सुमन चौरे

'गुरु' सरल से सरलतम और जटिल से जटिलतम शब्द है। गुरु का अर्थ विवेक से नहीं हृदय से समझा जा सकता है। शून्य से अनन्त तक, सूक्ष्म से विराट तक गुरु की महिमा है। ज्ञान से गुरु को पाना जितना दुर्लभ है, प्रेम से गुरु को पाना उतना ही सुलभ। हमारे लोक ने गुरु की परिभाषा बड़ी ही सहजता से कर दी है। गुरु कौन है उसने समझा दिया–

**पयलो गुरु म्हारी जणमणहारी,**
**दूसरो बापऽ सुजान**
**तीसरो गुरु म्हारो करमऽ हाथ मंऽ**
**चौथो सिरी भगवान**
**मखऽ चरणऽ शरणऽ मंऽ राखऽ**
**गुरु मख चरण शरणऽ मंऽ राखऽ**

भावार्थ– पहला गुरु मेरी जन्मदात्री, दूसरा मेरे सहृदय पिता, तीसरा मेरे हाथ का काम और चौथा श्री भगवान। गुरुदेव मुझे अपनी शरण–चरण में रखना। पहला दूसरा यह तो जन्म के सांसारिक गुरु हैं. परमगुरु तो मेरे हृदय में हैं, जिसकी ही मैं वन्दना करता हूँ कि वह मुझे अपने चरणों में गति दे।

गुरु–शिष्य परंपरा की जड़ें निमाड़ में बहुत गहरी हैं। आदि **जगदगुरु शंकराचार्यजी** के गुरु गोविन्दपादाचार्यजी निमाड़ के थे। निमाड़ की धरती पर ही नर्मदाजी के किनारे आदि जगतगुरु ने एक शिष्य के रूप में तपस्या की। इस गुरु परम्परा का प्रभाव निमाड़ के भक्तिकालीन संतों के माध्यम से वर्तमान में भी दृष्टिगत होता है। बह्मगीर स्वामी और मनरंगीर स्वामी ने निमाड़ी के माध्यम से आध्यात्मिक चेतना को प्रसारित करना शुरु किया। मनरंगीर स्वामी के शिष्य संत सिंगाजी ने गाँव–गाँव और जन–जन भक्ति की धारा को पहुँचाया।

निमाड़ में गुरु शब्द लोक व्यवहृत शब्द है। यह शब्द गुरु संत सिंगाजी की महिमा का उपादान है। जिन्होंने कर्म के माध्यम से गुरु का ज्ञान बड़ी सरलता से दे दिया जैसे खाली घट में जल भरने का भाव।

**''खेती खेड़ो से हरिनावऽ की,**
**जेमऽ छे मुकता लाभ।''**

मतलब हे मानव, तू हरिनाम की खेती कर इस खेती में बहुत लाभ है। निमाड़ में कृषिकर्म ही मूल जीवनयापन का मुख्य साधन है। अपने कर्म की बारिकी का ज्ञान व्यक्ति को रहता है, इसलिए संत सिंगा ने गुरु प्राप्ति का ज्ञान भी कृषिकर्म से जोड़कर दिया।

निमाड़ का लोकमानस गुरु की गुरुता को अपने शब्दों में कितनी सरलता से समझ लेता है, यहाँ के लोकगीतों की बुनावट से पता लगता है–

**तिलऽ बिनऽ होमऽ नंऽ जौ बिनऽ ग्यारी**
**संगऽ बिनऽ तिरथऽ नी होयऽ भोला संघवी,**
**झिरऽ बिनऽ कुआँ नऽ जल बिनऽ झारी,**
**गुरु बिनऽ गति नी होयऽ भोला संघवी,**
**गुरु मखऽ दऽ ओ किरपा को दानऽ।**

भावार्थ– हे भोले मनुष्य जिस तरह तिल के बिना होम और जौ के बिना तर्पण संभव नहीं होता, वैसे ही सहयात्री के बिना तीर्थ यात्रा भी संभव नहीं है। जैसे बिना स्रोत के कुआँ और बिना जल की झारी का कोई महत्त्व नहीं है। ऐसे ही गुरु के बिना मनुष्य का जीवन निरर्थक रहता है। निमाड़ी लोक का विश्वास है कि गुरु स्वयं शिष्य को खोजता है, उसके घर जाता है। उसका गुरु सदैव उसकी छाया जैसे उसके साथ रहता है। न उसका गुरु कमलासन पर विराजमान है और न ही चर्मासन, सिंहासन पर विराजमान है। उसका गुरु तो ऐसे उसके घर आ जाता है जैसे भगवान श्रीकृष्ण, विदुर के घर पधारे थे। लोकगीतों में गुरु की ऐसी ही सहज मूर्ति का दर्शन होता है जो प्रसन्नचित्त हो अपने भगत के घर भोजन करने जाता है। भक्त अचम्भे में है। गुरु आ गये और मेरे घर आटा भी नहीं है। यह कर्म से ज्ञान भक्ति का गीत है–

*म्हारा सतगुरु आया मेजवानऽ हो*
*माँयऽ मखऽ दळणूऽ सिखाड़ऽ*

*हाऊँ कसो दळूऽ अनदाणऽ ओऽऽ... माँयऽ मखऽ दळणू सिखाड़ऽ*
*कायनऽ का आटा नऽ कायन का पाटाऽ*
*कायनऽ को दळणू दलाड़ ओऽऽ..... माँयऽ मखऽ दळणू सिखाड़ऽ*
*ज्ञानऽ का आटा न ध्यानऽ का पाटाऽ*
*माया को दळणू दळाड़ऽ ओऽऽ... माँयऽ मखऽ दळणू सिखाड़ऽ*
*कायनऽ का मुठ्योऽ नऽ कायनऽ की माकड़ी*
*कायनऽ का थाळा बणाड़ऽ ओऽऽ... माँयऽ मखऽ दळणू सिखाड़ऽ*
*कायनऽ को मुठ्योऽ नऽ संजमऽ की माकड़ीऽ*
*काया को थाळो बणाड़ऽ ओऽऽ.... माँयऽ मखऽ दळणू सिखाड़ऽ*
*कायनऽ का कीला नऽ कायनऽ की लीला,*
*कायनऽ की सरणऽ मंऽ राखऽ ओऽऽ... माँयऽ मखऽ दळणूऽ सिखाड़ऽ*
*सतसंग का कीला न जीवतऽ की लीला*
*सतगुरु की शरण मऽ राखऽ ओऽऽ... माँयऽ मखऽ दळणू सिखाड़ऽ*
*तू दया का आटो समटाड़ऽ हो.... माँयऽ मखऽ दळणू सिखाड़ऽ*

भावार्थ– एक पुत्री अपनी माँ को संबोधित करती है– हे मेरी माँ, मेरे घर सतगुरु मेजवान बनकर आये हैं। उन्हें भोजन करवाना है। मैं धान्य को कैसे पीसू तुम मुझे समझाओ। हे माँ, आट और पाट किसके हैं, दोनों पाट के बीच मुझे कैसा धान डालकर पीसना है? ज्ञान और ध्यान चक्की के दो पाट हैं, हे पुत्री तू उनके बीच में मोहमाया रूपी दान डालकर पीस। हे माँ किस वस्तु की मुठिया है और किस वस्तु की मकड़ी है और थाला किस वस्तु का है? कर्म की मुठिया है, संयम और धीरज की मकड़ी है, हे पुत्री शरीर रूपी थाला है, जिसमें घट्टी से दया रुपी आटा गिरकर इकट्ठा हो जायेगा। हे माँ किसका कीला है, किसकी लीला है और किसकी शरण में रहना चाहिए? सतसंग की कील है और प्राणमय शरीर की लीला है, हे पुत्री सदैव गुरु की शरण में ही रहना चाहिए। दयारुपी आटा प्राप्त होगा जिसे समेटकर रख। यही दया, गुरु की कृपा समझकर गृहण कर।

लोकगीत में निमाड़ की एक निरक्षर माँ ने अपनी पुत्री को अनुभव से घट्टी और कर्मज्ञान को जोड़कर उत्तम धर्माचरण की शिक्षा दी है।

गुरु की महिमा को लोक समझता है किन्तु उसके पास शब्दों का आडम्बर नहीं है, वह तो अपने सरल पवित्र मन से गुरु की कृपा की आकांक्षा करता है। वह यह भी नहीं जानता कि गुरु की कृपा से क्या-क्या हो सकता है, वह तो अपने आसपास जिन वस्तुओं को देखता है उन्हीं में से माँगता है–

**गुरु हाऊँ निरत अजाण्यो**
**गुरु म्हारा पर किरपा करऽ असी,**
**चन्दन में वसी सुवास जसी।**
**या काया कड़ेऽ गुण्डीनी बेड़ोऽ**
**गुरु म्हारा पर किरपा करऽ असी**
**नीरऽ सी भरी बादळ्ई जसी।**
**यो मन पवन सो चंचलऽ**
**गुरु म्हारा पर किरपा करऽ असी**
**धरणी नंऽ धीरऽ धरीऽ जसी।**

भावार्थ– शिष्य कहता है– गुरु आप तो मुझपर ऐसी कृपा कर दीजिए जैसे चन्दन की लकड़ी में उसकी सुगंध बसी होती है। गुरु मेरा शरीर पानी भरने का पात्र नहीं है, पर फिर भी तू ऐसी कृपा कर जैसे बदली का शरीर नहीं है फिर भी वह जल भर कर रखती है। मेरा मन तो गुरु जी पवन सा चंचल है, न आपके चरण में लगता है न सुमरण करता है। हे गुरुजी आप मुझपर ऐसी कृपा करें जैसे धरती धीरज रखती है।

महिलाओं का स्वभाव है कि जब घर कोई आए तो सर्वप्रथम यही विचार करती हैं कि इसे क्या मन पसंद भोजन करवा दूँ। एक ऐसा ही भजन गुरु भक्ति का है। गुरु आ गऐ हैं घर पकाने को कुछ अच्छी वस्तुएँ नहीं हैं। तब महिला अपने मन से पूछती हैं–

**म्हारा घरऽ या गुरु भगवान.**
**जीमाडू काई रे जीवऽ नादानऽ**
**करम को चूल्हो न क्रोध की अगनी,**
**मोह-माया का कंडा लाकड़ी**
**भसम होयऽ सब बाळवानऽ**
**म्हारा घर आया गुरु भगवान।**
**ज्ञान की दाळ नंऽ भगति का चोखाऽ**
**खिचड़ी मंऽ नाखूं खार परेम का**
**परपंच को आई गयो ऊफाणऽ**
**म्हारा घर आया गुरु भगवान।**
**काया की हाँडळी मंऽ नीर दया भरूँगा**
**भाव नेमऽ का ढाकणों धरूगाँ,**
**खदबदऽ खिचड़ी बणी पकवानऽ**
**म्हारा घर आया गुरु भगवान**
**सरस भाव की पातळ केळ के**
**घीव नेहऽ को खिचड़ी मंऽ भरी**
**मुट्ठी भरऽ नाखी दी मिसरी**
**रुचि-रुचि जीमो गुरु सुजान**
**म्हारा घर आया गुरु भगवान।**

**सहस हरस्या श्री गुरु भगवान।**

भावार्थ– रे मेरे नादान जीव गुरु भगवान मेरे घर पधारे हैं, मैं निर्बुद्धि कुछ नहीं जानती, बता मैं उनके लिए क्या भोजन करवाऊं। मैं खिचड़ी पकाती हूँ। पर किन–किन उपकरणों एवं किन वस्तुओं का उपयोग करूँ। मन कहता है– कर्म का चूल्हा बनाओ, उसमें क्रोध रूपी अग्नि जलाओ। चूल्हे में मोह–माया रूपी लकड़ी–कण्डा जलाकर भस्म कर दो। ज्ञान की दाल और भक्ति के चावल लेकर काया रूपी हाण्डी में दया का पानी भर। जिसमें प्रेम का नमक डाल, भक्तिभाव और नियमव्रत का ढक्कन लगा। उफान में सब मैल बह जाएगा। खद–बद–खद–बद खिचड़ी पक कर पकवान बन जाएगी। सरल प्रेम भाव की केल पत्तल पर खिचड़ी परोस दूंगी। जिसमें नेह का घी और प्रेम की मुट्ठीभर शकर खाण्ड डाला है। हे मेरे गुरु सुजान आप प्रेम पूर्वक भोजन करो। हे मेरे नादान जीव गुरु ने मेरा भोजन सहज स्वीकारा, वे हर्षित हो गए।

महिलाएँ भक्ति में तर्क–वितर्क, छोटा–बड़ा का भेद नहीं करती हैं। उनके गुरु उनके लिए वैसे ही हे जैसे उनको समझ में आ गया है। उनका फिर सम्पूर्ण चिन्तन उनकी कृपा में ही रहता है और कहते हैं– ''जसी भावनाऽ तसी पावणा''– जैसा भजोगे वैसा ही पाओगी। स्वप्न में भी वे गुरु कृपा के दर्शन पाती हैं।

**सुणो म्हारा साहेबऽ सुजाणऽ**
**सुपणा मंऽ देख्या गुरु वरदान।**
**मनऽ लीपतऽ पगल्या देख्याऽ**
**म्हारा घरऽ आया गुरु भगवानऽ**
**मनऽ फूलतऽ फूलड़ा देख्याऽ**
**सुरभित हुया म्हारा बागान**
**सुपणा मंऽ देख्या वरदान**
**मनऽ दीपतऽ दीवला देख्या**
**मिटी गयो पापऽ को कठानऽ**
**सुपणा में देख्या गुरु वरदान।**
**खुली नींद ते अचरजऽ माइऽ**
**अन–धन लक्ष्मी घर मऽ समाई**
**अँगणा मंऽ तो झुला– झुलणाऽ**
**ववू वरऽ राँधऽ रामऽ रसोईऽ**
**बामण भाणिज जीमीऽ रह्यो हो**
**करूँ हाऊँ अन–धन को दानऽ**
**सुपणा मंऽ देख्या गुरु वरदानऽ**

भावार्थ– हे स्वामी मुझे रात को स्वप्न आया जिसमें गुरु वरदान देखा। मैंने देखा मैं आँगन लीप रही हूँ और मेरे गोबर मिट्टी के आँगन पर गीले पैर उछलते जा रहे हैं। मैंने देखा तो मेरे गुरुदेव आ रहे हैं। वो उनके चरण चिन्ह हैं। मैंने देखा कि दीपक दिपदिपाकर जल रहा है और मेरे सभी अज्ञान अंधकार का नाश हो गया है। मैंने स्वप्न में फूल खिलते हुए देखे, मेरे बागों में सुगंध फैल गई। जब प्रभात में आँख खुली तो मुझे गुरु का वरदान प्राप्त मिला। मेरा घर अन्न–धन–लक्ष्मी से उफना रहा है। आँगन में झूलों पर नाती–पोती झूल रहे हैं। बहू रसोई बना रही है। मैं ब्राह्मणों–भानिजों को भोजन करवा रही हूँ और सबको मुक्त हस्त से दान दे रही हूँ। गुरु का ऐसा वरदान मिला कि स्वप्न साकार हुआ। गुरु साक्षात मेरे घर में चरण कमल बनाते हुए आए।

महिलायें सुखी जीवन के बीच गुरु ध्यान से भटकाव होने पर वो फिर गुरु को याद करती है।

**चित चंचल मनऽ चोरऽ**
**गुरु जी म्हारो चित चंचल मनऽ चोरऽ**
**नहीं रमतो यो धरमऽ करमऽ मंऽ**
**भागऽ जगऽ की ओरऽ**
**गुरुजी म्हारो चित चंचल मनऽ चोरऽ**
**धन दौलतऽ में भरमी गयो यो**
**भूल्यो गुरु की ठौरऽ**
**भकती शकती दी तूनऽ गुरुजी**
**भरी दी पोरमऽ पोरऽ**
**गुरुजी म्हारो चित चंचल मनऽ चोरऽ**
**हाऊँ अजाणी निपट अनाड़ी पायो ती थारो छोरऽ**
**फिरि–फिर करका कर म्हारा गुरुजी**
**दऽ मखऽ शरण की ठौरऽ**
**गुरुजी म्हारा चित चंचल मनऽ चोरऽ**

भावार्थ– गुरुजी मैं माया गृहस्थी में ऐसी बिलम गई कि आपकी प्रभुता पहचान नहीं सकी। मेरा मन चंचल है और चित्त चोर है। वह आपकी भक्ति नहीं करने देता। आपने धन दौलत दी यहाँ तक कि आपकी भक्ति शक्ति मेरे पोर–पोर में भर दी, पर मैं अज्ञानी और निपट अनाड़ी आपके प्रेम के पहचान नहीं सकी। हे गुरु आप फिर–फिर मुझ पर कृपा करके अपनी शरण में रखो।

महिला गीतों में सच्चे गुरु की कामना तो की गई है साथ ही महिलाएँ अपने आसपास की वस्तुओं के गुणों में भी सदगुरु का प्रतिबिम्ब देखती हैं।

**साचा मिल्या नंऽ साचा मिल्याऽ**

**सत गुरु मखऽ साचा मिल्याऽ**
**मोती सा चोखा नंऽ चाँदी सा उजळा,**
**गाय का दूध काचा मिल्याऽ**
**साचा मिल्या गुरु, मखऽ साचा मिल्याऽ**
**अजाण्या खऽ जाणनऽ वाळा**
**जाण्या खऽ पैचाणऽ न वाळा**
**प्रेम हरूफ का वाचा मिल्या**
**साचा मिल्या गुरु, मखऽ साचा मिल्याऽ**

भावार्थ- मुझे सच में ही सदगुरु मिल गए हैं। वे मोती जैसे चोखे हैं और चाँद जैसे उजले स्वभाव के हैं। गाय के कच्चे दूध जैसे गुणी हैं। मेरे गुरु किसी से भी अनजान नहीं हैं सबके दु:ख-सुख को जानते हैं। वे प्रेम हरफ को पहचानते हैं। मुझे ऐसे सदगुरु मिल गए हैं जो प्रेम स्वरूप हैं।

अध्यात्म और भक्ति की परम्परा निमाड़ की थाती है। निमाड़ के महिला भक्ति लोकगीत बड़े ही निराले है। लोकांचल में गुरुमहिमा के लोकगीत गाते महिलाओं के समूह मिल जाएंगे। इस स्तर के गूढ़ दार्शनिकता का पुट लिए हुए निर्गुण भक्ति लोकगीत देश की अन्य बोलियों में भी मुश्किल से ही मिलेंगे।

- 13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्सटेंशन, बावड़िया कला,
पोस्ट ऑफिस त्रिलंगा, भोपाल- 462039
मो.: 09819549984, 09424440377

# कला समय

**कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका**

**के सदस्य बने**

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 300/- रूपये, दो वर्ष : 600/- रूपये, चार वर्ष : 1000/- रूपये, आजीवन : 10000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। पत्रिका का शुल्क रूपये .....
ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....
पता : .....
.....
पिन : ..... मो.: .....

**हस्ताक्षर**

**सदस्यता सहयोग राशि:**

| | | | |
|---|---|---|---|
| वार्षिक | : | 300 ( व्यक्तिगत ) | 350 ( संस्थागत ) |
| द्वैवार्षिक | : | 600 ( व्यक्तिगत ) | 700 ( संस्थागत ) |
| चार वर्ष | : | 1000 ( व्यक्तिगत ) | 1200 ( संस्थागत ) |
| आजीवन | : | 10,000 ( व्यक्तिगत ) | 12000 ( संस्थागत ) |

( 15 वर्ष के लिए )

( कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें )

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

**कार्यालय सम्पर्क :**
**संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग**
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

**ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :**
**'कला समय' का बैंक खाता विवरण**
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

आलेख

# स्वतंत्रता आन्दोलन का साहित्य पर प्रभाव

## नवोपलब्ध स्त्रोतों के आधार पर

## ( 1860 से 1930 ई. )

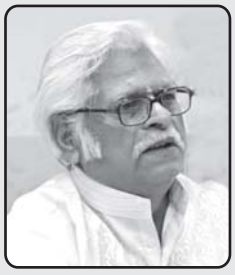

पं. कैलाश चन्द्र
घनश्याम पाण्डेय

उपरोक्त शीर्षक पर लिखा मेरा यह शोधपत्र तीन नवोपलब्ध स्त्रोतों पर आधारित है। पहला स्त्रोत एक कविता है जो सन 1860 ई. में मन्दसौर में लिखी गई है। दूसरा स्त्रोत एक काव्यग्रंथ है जो 1860 ई. में रतलाम रियासत के राजकवि गोविन्द के द्वारा लिखा गया है। तीसरा स्त्रोत एक रजिस्टर है जिसमें नमक सत्याग्रह (1930) की प्रतिभागी केसरबाई चौरड़िया (नीमच छावनी) ने उन गीतों का संग्रह किया है जो सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान गाए जाते थे अथवा इस आन्दोलन के दौरान घटी घटनाओं के तत्काल बाद रचे गए थे। इन नवीन स्त्रोतों के आधार पर में अपने विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ। अन्य संदर्भ आवश्यकतानुसार शोधपत्र के अन्त में दिये गये हैं।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पूर्वकाल से ही यदि हम परीक्षण करना प्रारंभ करें तो ज्ञात होता है कि भारतीयों ने कभी भी ब्रिटिश सत्ता को अंगीकार नहीं किया। प्लासी के युद्ध से 1857 तक भारतीयों विभिन्न आन्दोलनों एवं आक्रमणों के माध्यम से अपना प्रतिरोध जारी रखा। इस क्रियात्मक प्रतिक्रिया का दर्शन हमें साहित्य में भी होता है। जब लार्ड वेलेजली (1798–1805) की सहायक संधि राजपूताने के राजाओं ने स्वीकारना प्रारंभ की तो कवि बाँकीदास ने उन्हें कुछ इस प्रकार फटकारा–

**महि जाता चीतोता महिला, अै दुय मरण तणां अवसाण।**
**राखो किहिक रजपुती, मरद हिन्दू की मुसलमान।।**

यही नहीं स्वतंत्रता प्रतिरोध के स्वर लोकगीतों में भी सुनाई पडने लगे थे। 1805 में जब अंग्रेजों ने भरतपुर पर घेरा डाला तो जनसाधारण के बीच से आवाज उठी– ''आछो, गोरा हट जा ! राज भरतपुर को, रै गोरा हट जा !' अंग्रेजी राज की तपन को उपेक्षित भारतीय सैनिकों ने महसूस किया उसकी आहट हमें शायर अजीमुल्ला की शायरी के रूप में तत्कालीन समाचार पत्र 'पयामें आजादी' में पढ़ने को मिलती है–

**हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा,**
**पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी न्यारा।**
**हिन्दू, मुस्लिम, सिख हमारा भाई-भाई प्यारा**[1]**,**

पर साहित्य की धारा न तो एक थी व नहीं एक जैसी, जिस समाचार पत्र 'पयामें आजादी' में बहादुर शाह जफर का संदेश छपा– ''**ए हिन्दुस्तान के फरजन्दों ! अगर हम इरादा कर लें, तो बात की बात में दुश्मन का खात्मा कर सकते हैं**[2]**।**'' इसी मुगल बादशाह के शाही इतिहासकार मिर्ज़ा गालिब ने 'दस्तंबू' (फूलों का गुच्छा) में क्रांति को 'रस्त खेजी बिजा' यानें ''अनचाहा गदर'' कहा है। इसी ग्रंथ में जिस दिन मेरठ के क्रांतिकारियों ने दिल्ली में प्रवेश किया (11, मई, 1857) का विवरण मिर्जा ने इस प्रकार लिखा है– ''**इस दिन मेरठ के सिपाही, जो कि नमक हराम भी हैं, अंग्रेजों के खून के प्यासे होकर दिल्ली में दाखिल हुए। दिल्ली के खुले दरवाजों से यह जानवरों की तरह घुस आये। मतवाले घुड़सवार और खुरदरे पैरों वाले सिपाहियों ने पागलों की तरह शहर घूंदा। ----तालों से निकलकर कोई भी देख सकता था कि गुलाब जैसी जिस्म वाले लोगों के लहू से जमीन लाल हो गयी। बाग का हर कोना बहार की कब्रगाह बन गया।**'' गालिब ने महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा में लिखा– ''वह तलवार, जवाहरातों, झण्डों की सिपहसालार है। वह राज्यदयिनी है राजाओं को बनाने वाली है। वह विदुषी है। इंसाफ के राज्य में वह नौशेरवां से भी ज्यादा ऊँची है। **इस महान रानी के लाजबाब झण्डे की हिफाजत खुद जमशेद करते हैं**[3]**।**''

गालिब के इन कथनों से स्पष्ट है कि प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान दो प्रकार से साहित्य पर प्रभाव पड़ रहा था– एक वे लेखक जो बिट्रिश राज्य में रोजी–रोटी से जुड़े थे। ऐसे लोग अपने लेखन के प्रभाव से ब्रिटिश राज की नींवे मजबूत करने पर लगे थे। दूसरे वे लोग थे जो देश प्रेम के जज्बे में लिख रहे थे, उन्हें लोग पढ़े, इसलिये छाप भी रहे थे। दोनों ने अपनी–अपनी कीमत चुकाई। जिनके घर 'पयामे आजादी' अखबार की प्रति मिली उन्हें फाँसी के फन्दे पर झुला दिया गया। सम्पादक मिर्जाबेदार बख्त के बदन पर सूअर की

चर्बी मलकर फाँसी पर चढ़ा दिया गया[4]। जबकि कसीदे पढ़ने के लिए खुद गालिब ने–पदवी, सम्मान का दुशाला और पेंशन की मांग की।

उपरोक्त वर्णित तथ्य ऐसे हैं जिन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन के साहित्य पर प्रभाव के रूप में कई बार दौहराया जा चुका है। मेरे द्वारा कुछ नवीन स्त्रोत प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

**01. जावद से प्राप्त कविता, विक्रम सं. 1914 ( 1857 ई. )**

पर उपरोक्त दो प्रकार के रचनाकारों के बाद तीसरे प्रकार के लोग भी थे जिन्हें मरने का डर था, पेंशन की जरूरत न थी, पर तुकबन्दी उनका शगल था। जावद से प्राप्त अनाम लेखक की कविता ऐसी ही कविता है। लेखक को भय है कि कोई उसकी हस्तलिपि को पहचान न जावे अत: उसने 'च' वर्ण के लेखन हेतु 5 तथा 'द' को लिखने हेतु 6 प्रकारों का प्रयोग किया है। संपूर्ण कविता दो भागों में बटीं है। सम्मुख भाग में 43 पंक्तियाँ है जबकि पृष्ठ भाग में 41 यानें कुल 84 पंक्तियाँ हैं। सम्मुख भाग में 9–9 पंक्तियों के चार बन्द हैं। पहले बन्द में क्रान्ति के समय मन्दसौर क्षेत्र की दुर्दशा का वर्णन है। द्वितीय बन्द में क्रान्तिकारियों दुष्कर्मों के कारण उन्हें कोसा व श्राप दिया है। तीसरे बन्द में मन्दसौर के युद्ध का वर्णन है। चौथे बन्द में सैनिकों व सैनानायकों के दुष्कर्मो का विवरण है। पाँचवे बन्द में इस संकट से उबारने के लिए गणपति की प्रार्थना की गई है। पिछले भाग में 1857 की क्रांति के दौरान मन्दसौर के सेठों के हाल–चाल लिखे हैं। इस विवरण में उनके लिए अपशब्दों का प्रयोग भी किया है[5]।

**02. गोविन्द कृत गौरांग विजय विक्रम सं. 1917 ( 1860 ई. )**

हस्तलिखित इस ग्रंथ का प्रथम पृष्ठ अनुपलब्ध है। 89 पृष्ठ के इस ग्रंथ में 13 प्रस्ताव हैं जिनमें क्रमश: 24, 31, 27, 39, 24, 31, 30, 33, 30, 55, 43, व 48 छन्द हैं। इन छन्दों में कवि ने विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। कवि विभिन्न अंलकारों के प्रयोग में माहिर है। ज्ञात जानकारी के अनुसार गोविन्द 19 वीं शताब्दी का अन्तिम राजकवि है जिसने इतने पाण्डित्यपूर्ण ग्रंथ का प्रणयन किया है।

कवि रतलाम रियासत का निवासी है जिसने अपने ग्रंथ का प्रणयन महाराजा भैरवसिंह (1856–1864) के शासन काल में किया था। अंग्रेजों के द्वारा लिखवाया यह प्रथम ज्ञात ग्रंथ है। इसके प्रथम प्रस्ताव के 22 छन्दों में मुस्लिम राज्य की बुराइयों का वर्णन किया गया है–

**चाहत है चित्त रजपूत सुता ब्याह मंद,**
**ताके काज तिन्हैं दु:खवृंद दरसावते।**
**लोलुप लुटेरे लोल लंगर लबार लोक,**
**बहु बट खाय बटपार बट पावते।।**
**गावत गोविन्द गिरा सौंदिये सकावते न,**
**पेखत पिण्डारे धाम धाम धुव धवते।**
**स्याहपत भई पतस्याह पतस्याही बीच,**
**नीचन निहारि आह आह रट लावते[6]।।**

छटे प्रस्ताव में कवि ने क्रांतिकारियों के द्वारा लूटमार का वर्णन इस प्रकार किया है–

**एकहू तैं एक वित्त को छिनाय लेत,**
**झगरत जात माग माग कूर कंगला।**
**गावत गोविन्द गिरा ऐसे अविवेकी अहो,**
**मंगल चहत काज करत अमंगला।।**
**छिनमें छिपाय दई छावनी छपाकरसी,**
**पल में पिखायो है उजाड़ जनु जंगला।**
**उर में उमंग लाय दंगी लोग दंगा कियो,**
**लूटे चित चंगला फिरंगिन के बंगला[7]।।**

मन्दसौर के युद्ध में स्वयं कवि उपस्थित था, अत: उसने इस युद्ध में सम्मिलित होने वाले लोगों की पूर्ण विगत दी है–

**एकत विलयती मिवाती मोची मणियार,**
**घोसी छीपा बकरकसाई कूंजडे किये।**
**चुडीगर रंगरेज भ्टयारे पिंजारे भट,**
**भडवे भडभूंजे थोक थोकके थडे किये।।**
**गावत गोविंद गिरा पिरोजा फकीरहू कौं,**
**थापि स्याहजादा सब लोग में बड़े किये।**
**सिंदे सरकार के निसान को मिटाय मंद,**
**बादश्याही झंडे मंदसौर में खड़े किये[8]।।**

तात्पर्य यह है कि गोविन्द गालिब की परंपरा का कवि है

कंपत सकल शरीर उर अधीर धीरन धरन ॥४॥
॥कवित्त॥ बृंदार कचंदनके मंदिर मिटाये
मंद तबतैं चलाये कछू तुर्क चिह्न ताहीमें॥
षंरू षंरू बीच षंरू षंरू प्रतिमाके किये जुल
म जरूर अजौं जोय लेहु जाहीमें ॥ गावत
गोविंद केते हिंदूकौं जवन किये बहुरे मि
याती लाला लोग लषयाहीमें ॥ सत नां रह
त मति गति नांरहत तीयपत नांरहत पत
साह पतसाहीमें ॥५॥ चाहत हे चित्त राज
सुता ब्याह मंद ताके काज तिनैं दुष्ष

जिसके समक्ष उसके आश्रयदाताओं के लिए काव्य रचना करना ही एकमात्र लक्ष्य था, दुर्भाग्यवश क्रांतिकारियों का बलिदान लक्ष्य को प्राप्त न कर सका। विप्लव के बाद आगामी कई वर्षों तक ब्रिटिश शासक मोटे तौर पर मुसलमानों को संदेह तथा अविश्वास की दृष्टि से देखते रहे। सर जेम्स आउटरम ने तो लिख ही दिया कि 1857 मुसलमानों के षड्यंत्र का परिणाम था, अत: कुछ समय ये स्तुती परक ग्रंथ प्रकाशमान हो गए। पर बंगाल विभाजन में अग्रेंजो ने काँग्रेस की बढ़ती ताकत को रोकने के लिए पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को यह अश्वासन दिया कि ''नये सूबे में उनकी वही प्रधानता स्थापित होगी जो कभी मुस्लिम सूबेदारों के युग में थी।'' मुसलमानों का राजनीतिक प्रयोग करने के कारण साहित्य के जो ग्रंथ स्वयं अंग्रेजों ने लिखवाये थे वे ही ग्रंथ आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन के युग में ही साम्प्रदायिक हो गये।

**03. स्वतंत्रता सैनानी केसरबाई चोरड़िया का रजिस्टर, 1930 ई.**

गाँधी युग (1920-1940 ई.) में कुछ चीजें राष्ट्रीय आन्दोलन की पहचान बन गयी थी जैसे- टोपी, झण्डा, चरखा, खादी, प्रार्थना, अहिंसा, आदि। गांधीजी पहले काठियावाड़ी पघडी पहनते थे। इसमें कपड़ा अधिक लगता था अत: उन्होने 'टोपी' का चयन किया। 'टोपी' भारतीय वेषभूषा का अंग नहीं रही। यद्यपि आगे चलकर यह भी कहा गया कि गांधी टोपी का मूल स्थान उ.प्र का ज्योति बा फूले नगर है[9]। मेरा अपना विचार है कि भारत में 'टोपी' का चलन जेसुइट पादरियों ने किया बाद में जनसाधारण ने इसका प्रयोग प्रारंभ किया। पट्टाभि सीतारम्मया का मत है कि ''नागपुर अधिवेशन में पहली बार समस्त काँग्रेस प्रतिनिधियों ने अधिवेशन में स्वदेशी वस्त्र पहनकर आने का निश्चय किया और उनमें से अनेक ने अपने सिर पर गाँधी टोपी लगायी जो उस समय से राष्ट्रसेवा के बिल्ले के रूप मे स्वीकार कर ली गयी[10]।

टोपी पर संभवत: पहली कविता सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान अजमेर में लिखी गयी। इस के लेखक नीमच छावनी के प्रख्यात गांधीवादी सेठ नथमल चोरड़िया थे। अपने पिता द्वारा लिखी यह कविता केसरबाई ने रजिस्टर के पृ.-23 पर दर्ज कर रखी है-

गांधी टोपी महात्म्य-

*एक लहर चलादी भारत में।*
*इन गांधी टोपी वालों ने।।*
*स्वाधीन बनों, यह सिखा दिया।*
*इन गांधी टोपी वालों ने।।1।।*

आगे चलकर यही कविता मुम्बई से प्रकाशित हुई है।[11] महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलन का साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। आन्दोलन से संबंधित विभिन्न विषयों पर साहित्यकारों व लेखकों ने कलम चलायी। झण्डे पर खूब गीत लिखे गए। झण्डे के अपमान की एक घटना नमक सत्याग्रह के दौरान अजमेर में घटी।

06, मई, 1930 को गाँधीजी की गिरफ्तारी हुई। हड़ताल के बाद अजमेर में हुई पिकेटिंग में केसरबाई महिला जत्थे के आगे-आगे झण्डा लेकर गीत गा रही थी-

*ये झण्डा तिरंगा आता है, ऐ सोने वाले जाग चलो।*
*भड़ बोली वो इतराते है, बरछी, भाले चमकाते है।।1।।*
*उनको कह दो हम आते है, खेलेंगे तुमसे फॉग चलो।।*
*ये झण्डा........*

साथ चल रही सत्याग्रही महिलाओं का जत्था इस गीत को दोहराता था। स्थान-स्थान पर विदेशी वस्त्रों की होली भी जलाई जाती थी। इसी दौरान ब्रिटिश सेवा के भारतीय अधिकारी श्री प्यारेलाल महिला सत्याग्रहियों से खींज गये और उसने केसरबाई के हाथ से झण्डा छीनकर उसे पाँव से कुचल डाला। इस पर केसरबाई व महिला जत्थे ने ब्यावर के नवयुवकों से आव्हान किया कि वे इस अपमान का बदला लें। लेकिन स्थानीय नवयुवकों ने सत्याग्रहियों का साथ नहीं दिया। इस घटना पर केसरबाई ने उसी रात एक गीत की रचना की और अगले दिन जुलूस में दोहराया-

*जब प्यारेलाल कसाई ने इस झण्डे का अपमान किया।*
*ब्यावर के निवासी चौंचलों ने धर्म सनातन डूबाय दिया।*

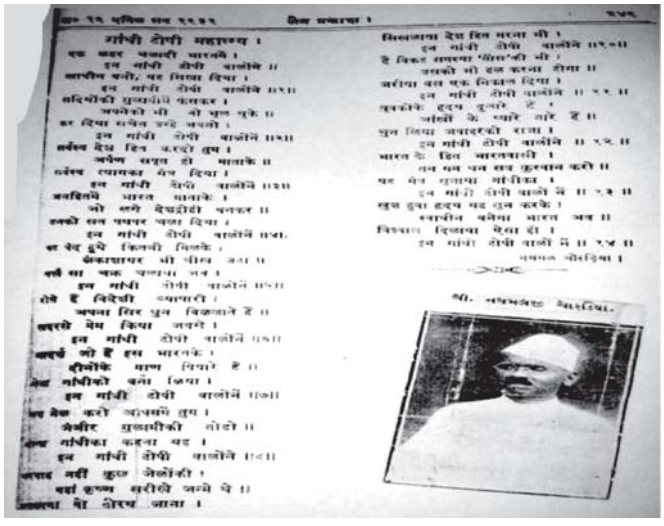


गांधी टोपी महात्म्य ।
इन गांधी टोपी वालोंने ।।

*क्यों मात पिता ने जन्म दिया वो अपना दूध लजाने को।*
*अग्र जन्म दिया तो दे दिया क्यों ना झठ जहर पिला दिया।*

केसरबाई ने न केवल प्यारेलाल की भर्तस्ना की। अपितु उन्होंने ब्यावर के कायर नौजवानों पर भी एक गीत बनाया और उस गीत के माध्यम से वहाँ के नवयुवकों की हँसीं भी उड़ाई–

*चूड़ी पहनों बनो जनाने, क्यों मूँछो को रहे लजाये।*
*बड़ी–बड़ी मूँछे बड़वाई, लिनी पाग लगाय।*
*पाद–पाद सारी गादी–तकिए दिये सड़ाए।।*
*चूड़ी..... ।।*
*दे जमानत माफी माँगी, बट्टा दिया लगाय।*
*ब्यावर वाले सौंच लेवें, कहाँ लज्जा देही गवाँय।*

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान न केवल साहित्यकारों, लेखकों ने राष्ट्र भावना से प्रेरित होकर लिखा, अपितु कई सत्याग्रहियों ने भी तत्कालीन घटनाओं को साहित्य का माध्यम बनाया और उसमें राष्ट्रीय आंदोलन के प्रभाव को आत्मसात किया। सिद्धिरस्तु।।

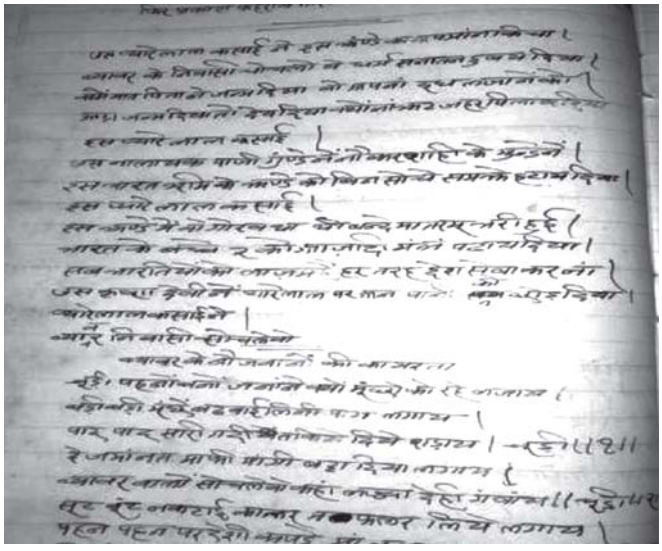

**संदर्भः–**


1. सिंह रघुबीर, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख, सीतामऊ, 1986।
2. पाण्डेय, रत्नाकर, हिन्दी पत्रकारिता।
3. मैंने अग्रेंजो का नमक खाया, कादम्बिनी, मई–1976, नई दिल्ली।
4. शर्मा, रामअवतार, हिन्दी साहित्य के विकास में हिन्दी पत्रकारिता का योगदान।
5. पाण्डेय, कैलाशचन्द्र, 1857 का महासमर, देवास, 2007।
6–8. पाण्डेय, कैलाशचन्द्र, गौरांग विजय का अनुशीलन, टंकित प्रति, मन्दसौर।
9. नई दुनिया, पृष्ठ 8, इंदौर, 09, अप्रैल 1991।
10. पट्टाभिसीतारामैया, काँग्रेस का इतिहास, दिल्ली, 1935।
11. चारोड़िया केसरबाई, गीतों का रजिस्टर, सेठ नथमल है. ट्रस्ट, नीमच।



– श्री दशपुर प्राच्य शोध संस्थान, मन्दसौर (म.प्र.)
मो. 9424546019



## सूचना

भारतीय कलाओं को समर्पित द्वैमासिक पत्रिका 'कला समय' को पिछले 25 वर्षों से आप सबका अपार स्नेह मिल रहा है। हमारी पंजीकृत संस्था 'कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति' भी आप सबके स्नेह–सहयोग से निरंतर कला,साहित्य और संगीत पर केन्द्रित आयोजन निरंतर करती आ रही है,जिनमें 'संस्कृति पर्व' और 'आरोही' जैसे कार्यक्रमों ने अलग प्रतिष्ठा अर्जित की है। मित्रों और शुभचिंतकों का आग्रहपूर्ण सुझाव है कि इस संस्था को पुस्तक–प्रकाशन का कार्य भी शुरू करना चाहिए।

हम मित्रों का सुझाव मानते हुए पुस्तक–प्रकाशन का दायित्व निभाने को तैयार हैं। अब 'कला समय प्रकाशन' द्वारा कला,साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जायेगा। हम प्रकाशन के लिये अच्छी पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ आमंत्रित करते हैं। चयनित पाण्डुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तों के अनुसार किया जायेगा।

**भँवरलाल श्रीवास**
निदेशक, कला समय प्रकाशन, भोपाल
मो.नं. 9425678058

# भट्ट-परम्परा के तीन ध्रुवपद ( स्वरलिपि सहित )

- प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग

## ( 1 ) ब्रह्मनाद एवं उसके भेद पर आधारित ध्रुवपद-रचना

शब्द-स्वर-रचना - ध्रुवपदाचार्य पं. लक्ष्मणभट्ट तैलंग

स्थाई - आदिनाद ब्रह्मनाद,
वीणानाद, वंशीनाद,
डमरूनाद, घंटानाद,
नाद भेद को बखाने।।

अन्तरा - वीणानाद तत जान,
वंशीनाद सुषिरमान,
डमरूनाद अवनद्ध,
घंटानाद घनप्रमाने।।

### ध्रुवपद, ताल चौताल, राग दुर्गा

**स्थाई**

| | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| म | – | रे | प | – | प | ध | – | म | रे | – | सा |
| आ | ऽ | दि | ना | ऽ | द | ब्र | ऽ | ह्म | ना | ऽ | द |
| X | | 0 | | 2 | | 0 | | 3 | | 4 | |
| रे | – | ध़ | सा | – | सा | रे | म | रे | सा | – | सा |
| वी | ऽ | णा | ना | ऽ | द | वं | ऽ | शी | ना | ऽ | द |
| X | | 0 | | 2 | | 0 | | 3 | | 4 | |
| म | म | रे | प | – | प | ध | – | म | प | – | प |
| ड | म | रू | ना | ऽ | द | घं | ऽ | टा | ना | ऽ | द |
| X | | 0 | | 2 | | 0 | | 3 | | 4 | |
| सां | – | ध | म | – | म | प | ध | म | रे | – | सा |
| ना | ऽ | द | भे | ऽ | द | को | ऽ | ब | खा | ऽ | ने |
| X | | 0 | | 2 | | 0 | | 3 | | 4 | |

**अन्तरा**

| | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| म | प | (सां)ध | सां | – | ध | सां | सां | – | सां | – | सां |
| वी | ऽ | णा | ना | ऽ | द | त | त | ऽ | जा | ऽ | न |
| X | | 0 | | 2 | | 0 | | 3 | | 4 | |
| (सां)ध | – | (सां)ध | सां | – | सां | रें | सां | सां | ध | म | रे |
| वं | ऽ | शी | ना | ऽ | द | सु | षि | र | मा | ऽ | न |
| X | | 0 | | 2 | | 0 | | 3 | | 4 | |
| रें | रें | मं | रें | – | सां | रें | रें | ध | सां | – | सां |
| ड | म | रू | ना | ऽ | द | अ | व | ऽ | न | ऽ | द्ध |
| X | | 0 | | 2 | | 0 | | 3 | | 4 | |
| सां | – | सां | ध | – | म | प | ध | म | रे | – | सा |
| घं | ऽ | टा | ना | ऽ | द | घ | न | प्र | मा | ऽ | ने |
| X | | 0 | | 2 | | 0 | | 3 | | 4 | |

## ( 2 ) नादब्रह्म की साधनाधारित ( ध्रुवपद )
### राग तोड़ी, ताल तीव्रा

शब्द-स्वर-रचना - प्रो. मधु भट्ट तैलंग

पद्य-रचना (ध्रुवपद)

स्थाई - नादभेद अपार गुणीजन,
कबहूं न पायो पार,
गाय-गाय थके सब,
रच-पच हार डार।

अन्तरा - ईड़ा पिंगला सुषुम्ना नाड़ी,
कमलदल ते होय सृष्टि,
सुरन शुद्ध कोमल तीवर,
मन्द्र मध्य झंकृत तार।।

संचारी - स्वस्थान चार आलाप विस्तार,
श्रुतिमूर्च्छना लयप्रस्तार,
गमक कण मींड़ शब्दाकार,
या ही कीजे राग ब्यौहार।

आभोग - ध्रुवपद है ओंकार
साधत मधु बार-बार
गुरु कीजे मोहि पार,
नाद विद्या अप्रंपार।।

**स्थाई**

| | | |
|---|---|---|
| सा – सा | (ग)रे – | रे रे |
| ना ऽ द | भे ऽ | द अ |
| (म)ग – ग | (ध)मं (ध)मं | ध ध |
| पा ऽ र | गु णी | ज न |
| ध सां – | नी ध | ध – |
| क ब ऽ | हूं ऽ | न ऽ |
| मं ध ध | मं ग | रे सा |
| पा ऽ यो | पा ऽ | र ऽ |

| | | |
|---|---|---|
| [नी]ध – [नी]ध<br>गाऽ य | ऩी –<br>गा ऽ | सा –<br>य ऽ |
| ग रे –<br>थ के ऽ | सा –<br>स ऽ | सा –<br>ब ऽ |
| [ध]मं – [ध]मं<br>र ऽ च | ध –<br>प ऽ | ध –<br>च ऽ |
| [सा]सां – सां<br>हा ऽ र | नी ध<br>डा ऽ | मं ग<br>र ऽ |
| X | 2 | 3 |

**अन्तरा**

| | | |
|---|---|---|
| मं – ग<br>ई ऽ ड़ा | [ध]मं [ध]मं<br>पिं ग | ध मंध<br>ला सु ऽ |
| सां – सां<br>षु ऽ म्ना | सां –<br>ना ऽ | सां –<br>ड़ी ऽ |
| ध ध गं<br>क म ल | रें गं<br>द ल | रें सां<br>ते ऽ |
| रें<br>सां– सां<br>हो ऽ य | [नि]ध –<br>सृ ऽ | ध –<br>ष्टि ऽ |
| सां सां सां<br>सु र न | नी –<br>शु ऽ | नी –<br>द्ध ऽ |
| ध ध ध<br>को म ल | मं –<br>ती ऽ | मं मं<br>व र |
| ध – ध<br>म ऽ न्द्र | ग –<br>म ऽ | ग –<br>ध्य |
| सां सां सां<br>झं कृ त | नी ध<br>ता ऽ | मं ग<br>र ऽ |
| X | 2 | 3 |

**संचारी**

| | | |
|---|---|---|
| सा सा सा<br>स्व स्था न | ध –<br>चा ऽ | ध –<br>र ऽ |
| मं ध नी<br>आ ला प | नी ध<br>वि ऽ | प प<br>स्ता र |
| मं ध –<br>श्रु ति ऽ | मं ग<br>मू ऽ | रे रे<br>र्छ ना |
| [ग]रे [ग]रे ग<br>ल य प्र | रे –<br>स्ता ऽ | सा –<br>र ऽ |
| X | 2 | 3 |
| मं मं ग<br>ग म क | [ध]मं [ध]मं<br>क ण | ध ध<br>मीं ड़ |
| [सा]सां – सां<br>श ऽ ब्दा | सां –<br>का ऽ | सां –<br>र ऽ |
| ध – गं<br>या ऽ ही | रें गं<br>की ऽ | रें सां<br>जे ऽ |
| सां – सां<br>रा ऽ ग | नी ध<br>ब्यौ ऽ | मं ग<br>हा र |
| X | 2 | 3 |

**आभोग**

| | | |
|---|---|---|
| मं ग –<br>ध्रु व ऽ | [ध]म [ध]म<br>प द | ध –<br>हे ऽ |
| [सा]सां – –<br>ओं ऽ ऽ | सां –<br>का ऽ | सां –<br>र ऽ |
| ध – गं<br>सा ऽ ऽ | रें गं<br>ध त | रें सां<br>म धु |
| सां – [रें]सां<br>बा ऽ र | [नि]ध –<br>बा ऽ | ध –<br>र ऽ |
| सां सां –<br>गु रु ऽ | नी नी<br>की ऽ | ध –<br>जे ऽ |
| मं ध ध<br>मों ऽ हि | ध –<br>पा ऽ | ध –<br>र ऽ |
| ध – ध<br>ना ऽ द | ग –<br>वि ऽ | ग –<br>द्या ऽ |
| सां सां –<br>अ प्रं ऽ | नी ध<br>पा ऽ | मं ग<br>र ऽ |
| X | 2 | 3 |

## ( 3 ) आदि शंकराचार्य रचित 'शिव पंचाक्षर स्तोत्र' पर आधारित
## ( ध्रुवपद )

स्वर-रचना – प्रो. मधु भट्ट तैलंग

स्थाई – ओंकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यंध्यायन्ति योगिनः,
कामदं मोक्षदं चैव ऊँकाराय नमो नमः,

अन्तरा – महादेवं महात्मानं महाध्यानं परायणम्,
महापापहरं देवं मकाराय नमो नमः ।

संचारी – गंगातरंग रमणीयं जटाकलापं, शिवोशिवम्,
गौरी निरन्तर विभूषित वामभागम्, शिवोशिवम् ।

आभोग– नारायण प्रियमनङ्मदापहारं शिवोशिवम्,
वाराणसी पुरपतिंभज विश्वनाथम् नमोनमः ।

**राग मोहनम् (भूपाली) ताल–तीव्रा**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ग रे – – | ग – | ग – | ग रे रे रे | ग – | ग – |
| ओं ऽ ऽ | का ऽ | रं ऽ | बिं दु सं | यु ऽ | क्तं ऽ |
| सा सा सा | रे – | रे रे | सा ध़ – रे | सा – | – – |
| नि त्यं ऽ | ध्या ऽ | यंति | यो ऽ गि | नः | ऽ ऽ |
| प ग ग | प – | – – | सां ध – सां | ध – | प ग |
| का ऽ म | दं ऽ | ऽ ऽ | मो ऽ क्ष | दं ऽ | चै व |
| ग रे – रे | रे – | रे रे | ध़ ध़ रे | सा – | – – |
| ओं ऽ ऽ | का ऽ | रा य | न मो न | मः | ऽ ऽ |
| X | 2 | 3 | X | 2 | 3 |

**अन्तरा**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प ग – | ध – | सां – | सां सां – | सां – | सां – |
| म हा ऽ | दे ऽ | वं ऽ | म हा ऽ | त्मा ऽ | नं ऽ |
| सां ध सां ध – | सां – | रें – | गं रें सां | सां – | – – |
| म हा ऽ | ध्या ऽ | न ऽ | प रा य | णं ऽ | ऽ ऽ |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ग रे ग रे – | प गं गं | गं गं | सां – – | रें – | – – |
| म हा ऽ | पा प | हरं | दे ऽ ऽ | वं ऽ | ऽ ऽ |
| सां ध प | ग़ रे | – रे | ध़ ध़ रे | सा – | – – |
| म का ऽ | रा ऽ | ऽ य | न मो न | मः | ऽ ऽ |
| X | 2 | 3 | X | 2 | 3 |

**संचारी**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| सा सा सा | सां ध – | ध – | सां ध सां ध सां | प प – | प – |
| गं गा त | रं ऽ | ग ऽ | र म ऽ | णी ऽ | यं ऽ |
| ग रे ग रे ग रे | रे – | रे – | ध़ ध़ रे | सा – | – – |
| ज टा क | ला ऽ | पं ऽ | शि वो शि | वं ऽ | ऽ ऽ |
| X | 2 | 3 | X | 2 | 3 |

**आभोग**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| प ग – | प – | सां ध सां ध | सां सां सां | सां – | सां सां |
| ना ऽ ऽ | रा ऽ | य ण | प्रि य म | नं ऽ | ग म |
| सां ध – सां ध | सां – | रें – | गं रें सां | सां – | सां – |
| दा ऽ प | हा ऽ | रं ऽ | शि वो शि | वं ऽ | ऽ ऽ |
| ग रे ग रे – | प गं गं | गं गं | सां सां – | रें रें | रें रें |
| वा रा ऽ | ण सी | पु र | प तिं ऽ | ऽ ऽ | भ ज |
| सां ध प | ग रे – | रे – | ध़ ध़ रे | सा – | – – |
| वि ऽ श्व | ना ऽ | थं ऽ | न मो न | मः | ऽ ऽ |
| X | 2 | 3 | X | 2 | 3 |

लेखक– पूर्व अधिष्ठाता, ललित कला संकाय एवं पूर्व विभागाध्यक्षा,
संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर है।

## 'पर्यावरण और हम' विषय-केंद्रित एक कला-प्रतियोगिता का आयोजन

**समवर्णी कला-साहित्य सृजन शोध- पीठ, भोपाल** के तत्वावधान में राजाराम रूपध्वनि कलादीर्घा के वार्षिक समारोह के आयोजन के तहत 'पर्यावरण और हम' विषय-केंद्रित एक कला-प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है। प्रतियोगिता में कनिष्ठ कलाकारों (आयु- 21- 44वर्ष) के लिए ₹30हजार का एवं वरिष्ठ कलाकारों(आयु-45वर्ष से ऊपर)के लिए ₹35 हजार के पुरस्कार निर्धारित हैं।

इनके अतिरिक्त कनिष्ठ-कलाकार-श्रेणी में पाँच 'उत्कृष्टता प्रमाण-पत्र' भी दिए जाएँगे। कथित विषयांतर्गत किसी भी माध्यम में कलाकृति प्रस्तुत की जा सकती है। कला-कृति का आकार 12/18 से लेकर 24/36 आकार में होना चाहिए।

प्रतियोगिता के लिए सहभागिता-शुल्क ₹150/- (कनिष्ठ कलाकार) तथा ₹300/- (वरिष्ठ कलाकार) निर्धारित है। कलाकृति की फोटो दिए गए ईमेल पर 18 अगस्त तक भेजना होगा। विलंब से प्राप्त सामग्री पर विचार नहीं किया जाएगा। अधिक जानकारी के लिए 9826215072 पर संपर्क किया जा सकता है।

स्मृति शेष

# संतूर को ईश्वरोपासना मानने वाले संत साधक पं. भजन सोपोरी

प्रदीप टांक

इन्टरनेशनल ध्रुवपद धाम ट्रस्ट के निमंत्रण पर दिनांक 17 दिसम्बर 2006 को जयपुर कार्यक्रम देने पधारे 'संतूर के संत' नाम से पहचाने जाने वाले सुविख्यात संतूर-नवाज़ से उस दौरान उनकी जीवन-यात्रा एवं कृतित्व पर लम्बी चर्चा हुई थी, आज वे हमारे बीच नहीं रहे। 2 जून 2022 को असाध्य बीमारी से संघर्ष करते हुए प्रभुलीन हो गये। 22 जून 1948 को श्रीनगर में जन्में पं. भजन लाल सोपोरी का 74 वर्ष में संगीत-दुनिया को अलविदा कह जाना संगीत-जगत को गहरे शोक में डूबो गया एवं आने वाले कई वर्षों तक यह क्षतिपूर्ति होना असंभव महसूस होती है किन्तु उनका अतुल्य, अनूठा एवं संगीत की असीम संभावनाओं को समेटे हुए ऐसा दिव्य वादन, जो आने वाले साधकों को प्रकाशस्तम्भ के समान मार्ग प्रशस्त करता रहेगा एवं संगीत को असली उद्देश्य, जो आज के युग में तिरोहित सा होता जा रहा है उसे पुन: उस ओर उन्मुख करेगा कि संगीत सिर्फ़और सिर्फ़ ब्रह्म स्वरूप नादोपासना मात्र है, उससे इतर वह तकनीकी एवं मशीनी कलाबाज़ी आदि नहीं है। 'मैकेनिज़्म' से ऊपर वह सिर्फ़ आध्यात्मिक साधना है, जो सत्-चित् से गुजरती हुई हमें आनन्दलोक में पहुंचा देती है इसीलिए वे 'संतूर के संत' नाम से जाने-माने गये। श्रीनगर के मूल निवासी आपका अधिकांश कार्यक्षेत्र और स्थाई निवास दिल्ली रहा एवं गुरुग्राम के फोर्टिस अस्पताल में ही अन्तिम सांस ली।

उनकी विचारधारा सूफ़िज़्म से प्रभावित थी एवं वादन पूरी तरह आध्यात्मिकता के इर्द-गिर्द ही घूमता नज़र आता था। नाद को भारतीय पुरातन योग-साधना मानने वाले आप ने इसे मानव-जीवन की 'प्रथम शरीर ज्ञान' वाली अवधारणा के साथ भौतिक शरीर को अपने साज़ द्वारा उसके साधने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम माना इसीलिए आपके 'साउंड थेरेपी' एवं 'नाद योगा ऑन दी संतूर' दोनों एलबम दुनियाभर में मशहूर रहे। साथ ही कुछ भक्ति रचनाएं - 'गुरुवाणी, शबद्, वैदिक मंत्र, महामृत्युंजय, सूर्य उपासना और दुर्गा कवच' भी काफी प्रचलित हुए। वे पुरातनता एवं नवाचारों के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण थे। उन्होंने स्वसृजित राग लालेश्वरी, राग पटवंती और राग निर्मलरंजनी भी संगीत-जगत को उदाहरण स्वरुप भेंट किये। यही कारण रहा कि अपनी भारतीयता को और समृद्ध करने के लिए विदेशी भाषा और उसके संगीत को भी उन्होंने तुलनात्मक रूप से जानना उचित समझा और संतूर-साधना के अलावा संगीत में सितार एवं अंग्रेजी विषय में स्नातकोत्तर उपाधियाँ लीं। यू.एस.ए. वाशिंगटन विश्वविद्यालय से बाकायदा पाश्चात्य संगीत की भी शिक्षा ली। संतूर-वादन की उत्कृष्ट साधना के साथ-साथ लगभग 4000 देशी-विदेशी संस्कृत, परशियन और अरबी भाषाओं में भी संगीत-रचनाएं कीं, जो कि उन्हें अन्य संतूर-वादकों से अलग करती हैं। 27 वर्ष की उम्र में ही जबकि दिल्ली में पं. रविशंकर एवं पं. पन्ना लाल घोष जैसे संगीतकारों का बोलबाला था, उस दौर में भी उनकी रचनाएं ऐसे दिग्गज संगीतकारों के मध्य प्रशंसित हुईं। उनकी संगीत-रचनाओं में कई देशभक्ति की रचनाएं, 'हम होंगे कामयाब', 'भारत की बेटी', 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा', 'सरफरोशी की तमन्ना', 'भारत हम इसकी संतान' आदि लोकप्रिय हुईं। 'सारे जहां से अच्छा' शास्त्रीय रचना एवं 'वंदेमातरम्' वाद्यरचना उनकी लोकप्रिय रचनाओं में से एक है।

उन्होंने बताया कि ये वाद्य हमारे खून से सिंचित कर बनाया गया है। कश्मीर के लोक संगीत के निकट सूफी संगीत आदि में प्रयुक्त इस वाद्य में असीम संभावनाएं थीं, उन्हें गहरे चिन्तन-मनन से खोज कर इस वाद्य की वादन-शैली को नया प्रारुप दिया। 50 के दशक में इसे संगत वाद्य से बाहर निकाल कर शास्त्रीय एकल वादन से जोड़ने का कार्य मैंने किया। उसे शास्त्रीयता के अनुकूल तैयार करने में इसके मूल स्वरुप एवं बनावट में कई जोड़-तोड़ करने पड़े

एवं उसके अलंकरणों गमक, मींड़, कण, लयकारी एवं छंदकारी आदि को तीन सप्तकों में विस्तार देने हेतु तारों का समावेश एवं उस पर तकनीक के प्रयोग हेतु शैली को भी विकसित किया। इसी नवाचारों हेतु अनेक सम्मानों से मुझे नवाज़ा भी गया।

उनके मतानुसार शततंत्री होते हुए भी यह वाद्य कई मायनों में अधूरा ही था। आध्यात्मिकता के प्रति गहरी रूचि के कारण नादब्रह्म की श्रेष्ठ गायकी ध्रुवपद को पूरी तरह इस साज़ में उतारने के लिए मैंने कई रचनात्मक समावेश किये। ध्रुवपद गायकी के गांभीर्य के अनुरूप इसमें तुंबा भी लगाया। खूंटियों एवं तारों के समावेश एवं उसमें अंगूठे व अंगुली के समुचित प्रयोग से मीड़, गमक, एवं गूंज को निकालने में सफल हुआ, जो कि इस स्ट्रोक पर आधारित वाद्य पर असंभव था, इसे ही 'सोपोरी बाज' नाम दिया और यह उसका पर्याय बन गया। ये सिर्फ मेरे बुज़ुर्गों बाबा पं. एस.सी. सोपोरी और पिता पं. एस.एन. सोपोरी की प्रेरणा का ही परिणाम था, जो कि कश्मीर के सूफियाना घराने से संबद्ध थे। इस घराने की लगातार 8 पीढ़ियों में संतूर से संगीत बुनने, गढ़ने एवं प्रदर्शन का काम हुआ है।

संगीत ही उनका ओढ़ना-बिछौना था। संगीत-साधना, प्रदर्शन, नवाचार, संगीत-रचना-कार्य के साथ अनेक होनहार शिष्य भी तैयार किये, जो उनकी संगीत-विरासत के अग्रवाहक होंगे। उनके पुत्र श्री अभय रूस्तम सोपोरी सहित अनेक शिष्यों में उन्होंने अनूठा कार्य यह भी किया कि संतूर के क्षेत्र में महिलाएं दुर्लभ थीं तब उन्होंने डॉ. वर्षा अग्रवाल महिला वादिका को सिखाया एवं भरपूर प्रोत्साहित भी किया। आपकी रचनाधर्मिता को आपकी सुदीर्घ आकाशवाणी केन्द्र की सेवाओं एवं दूरदर्शन से संबद्धता ने और पंख लगा दिये, उनकी इन रचनाओं की संचार-माध्यमों द्वारा विश्वख्याति हुई।

उनसे घराने की सूफ़िज़्म के प्रति अवधारणा के बारे में जाना तो उन्होंने कहा कि पहली बात तो साधक के व्यक्तित्व में स्वयं ही सरलता, सात्विकता, सान्तिकता, उदात्तता, भक्ति, फक्कड़पन एवं निजता से ऊपर सामाजिकता की भावना होनी चाहिये, वह ही हमारे वादन को अंगीकृत कर पायेगा। हमारे वादन में जिस प्रकार निराकार आध्यात्मिक शक्ति को अन्त: में महसूस कर उसे अपनी कला में उसी रूप में पूर्ण उतार कर साकार करते हैं जैसा कि एक चित्रकार किसी दैवीय काल्पनिक स्वरूप को विविध देवी-देवताओं का साकार रूप देता है उसी प्रकार ही हम भी उस नाद के निराकार स्वरूप को ब्रह्म रूप में साकार कर राग की अवतारणा करते हैं, यद्यपि यह अमूमन हर भक्त साधक करता होगा किन्तु साधक के व्यक्तित्व में व्याप्त गहरी आध्यात्मिकता उसके वादन में भी अपने आप उसके अनुपात का दर्शन करा देगी। हमारी विचारधारा एवं व्यक्तित्व की समानान्तरता ही उसका स्वत: आभास करा देती है, यह कोई ओढ़ने वाली चीज़ नहीं अपितु यह ईश्वर प्रदत्त ही है। हमारे शिष्यत्व लेने वाले विद्यार्थी में हम इसे प्राथमिकता से देखने के बाद ही तालीम प्रारम्भ करते हैं अन्यथा डंडा बजाने वाले बहुत से संतूर वादक मिल जायेंगे। हमारा फक्कड़पन ही है कि मैं सम्मानों व कार्यक्रमों की दौड़ में कभी नहीं रहा। जो भी मिला वह प्रभुकृपा से ही मिला तभी तो इतने वर्षों साधना के बावजूद भी सन् 2006 में पहली बार आपकी संस्था द्वारा ही जयपुर में पहली बार बुलाया गया हूँ इसीलिए सन् 1993 में संगीत नाटक अकादमी अवार्ड, सन् 2004 में पद्मश्री, सन् 2016 में जम्मू कश्मीर राज्य आजीवन उपलब्धि सम्मान एवं अन्य 'संगीत रत्न सम्मान', तेलगू अकादमी अवार्ड एवं 'संगीत शिरोमणि' जैसे प्रतिष्ठित अवार्ड लेने के बावजूद भी आपके ट्रस्ट द्वारा मुझे 'संगीत विभूति' नाम से जो 'लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड' दिया जा रहा है, उससे सबसे ज़्यादा खुशी मुझे इसलिए हो रही है क्योंकि जयपुर कद्रदानों व गुणियों की नगरी है अतएव गुणीजन का सम्मान सदा सर्वश्रेष्ठ होता है। यह उनका सरल एवं उदात्त व्यक्तित्व ही कहा जा सकता है। गौरतलब है कि पं. सोपोरी जी को मृत्यु से कुछ पूर्व ही इस वर्ष 'कालिदास सम्मान' से भी नवाज़ा गया था।

आप में सामाजिकता एवं कलाकारों के उन्नयन की आत्मिक भावना का ही परिणाम था कि उन्होंने अपनी एक अकादमी 'सोपोरी अकादमी फॉर म्यूजिक एवं परफोर्मिंग आर्ट्स की स्थापना दिल्ली में की, जिसके तहत उन्होंने अनेक उदीयमान व प्रतिष्ठित कलाकारों को मंच प्रदान किया। आपकी संस्था द्वारा जेल में सजा भुगत रहे अपराधियों का नादोपचार कर समाज की धारा से जोड़ने का भी महान् कार्य किया जाता रहा है। आपका दिव्य संगीत आपके शिष्यों के माध्यम से एवं आपके संग्रहित ध्वन्यांकनों के माध्यम से सदैव अमर रहेगा। उनका युवाओं के लिए अन्तिम संदेश यही था कि अपनी साधना को किसी भी यश आदि स्वार्थों से ऊपर उठकर 25-30 वर्षों साधना करने के बाद ही मंच पर अवतरण करें तभी आपकी कला प्रभु की उपस्थिति का सुनने वालों को अहसास करा पायेगी। ऐसी महान् विभूति को संगीत-जगत की सादर विनम्र श्रद्धांजलि।

लेखक:- सहायक प्रोफेसर, संगीत,
एस.एस. जैन सुबोध महिला टी.टी., महाविद्यालय, जयपुर हैं।

■

स्मृति शेष

# बाबा योगेन्द्र भारती जी को श्रद्धासुमन

अरुण कुमार शर्मा

स्मृतियों के घटाटोप के बीच ''बाबा'' के सानिध्य में संस्कार भारती में जिये प्रत्येक क्षण की स्मृतियाँ चपला सी कौंध रही है। किसी जल प्रपात के कोलाहल सदृश मन मस्तिष्क में द्वन्द्व भी उफान पर है। सच कहूँ तो क्षणार्द्ध का एकान्त मिलते ही प्रिय ''बाबा'' का वात्सल्य रूप स्मृति पटल को आच्छादित किये रहता है। विगत लगभग ग्यारह वर्षो में संस्कार भारती परिवार के माध्यम से मिला ''बाबा'' का संरक्षण मन-बुद्धि-आत्मा को सदैव स्नेहसिक्त और तृप्त किये रहा। ऐसे कारूणिक बिछोह पर लेखनी लिखे भी तो क्या लिखें ?

संस्कार भारती के किसी भी सम्पर्कित व्यक्ति, चाहे वह कलाकार हो या कार्यकर्त्ता, यदि एक बार भी बाबा का सानिध्य पा गया तो उसकी आजीवन अनुभूति यही रही कि ''बाबा'' का सर्वाधिक स्नेहपात्र वही है। यह भाव अनुभूति कुछ ऐसी ही है जिसे हमने अपने बचपन में अनेक बार जिया है। चाँदनी रात में अपने गाँव की गलियों में खेलते दौड़ते बाल समूह ने जब भी धवल चान्द को निहारा तो प्रत्येक बालक ने उसे अपने साथ ही दौड़ता हुआ अनुभव किया। प्रत्येक बालक के मुख से यही अभिव्यक्ति निसृत होती थी कि चन्द्रमा बस मेरे साथ ही दौड़ रहा है। बस वही चन्द्रमा रूपी ''बाबा'' के बारे मे हम सभी ने अनुभव किया कि जितनी निकटता जितना स्नेह मुझे मिला, अन्य किसी को नहीं। निस्सीम विशाल हृदय! अद्भुत वात्सल्य!

स्वयं एक श्रेष्ठ कलाकार होते हुऐ भी उन्होने अपनी कला साधना को संस्कार भारती के पोषण के निमित्त होम दिया। एक कलाकार के कर्म के स्थान पर संगठन दायित्व को प्रधानता देते हुए, अपने इस त्याग को कभी उजागर नहीं होने दिया। व्यष्टि से समष्टि अथवा स्वार्थ से परमार्थ के प्रकट व्यवहारीकरण का इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण और क्या होगा ?

संस्कार भारती के प्रत्येक आयोजन का प्राण थे ''बाबा''। मेरी स्वयं की सीमित स्मृति से मैं निवेदन कर रहा हूँ कि भारतवर्ष का कोई भी कोना हो, ऊटी हो या गोरखपुर, लखनऊ हो या कुरूक्षेत्र प्रत्येक कार्यक्रम में ''बाबा'' की आशीर्वादात्मक उपस्थिति उस स्थान- उस कार्यक्रम को जीवंत कर देती थी। 98 वर्ष की आयु में भी उनका यायावर जीवन हम सभी अकिंचन कार्यकर्त्ताओं को कार्यप्रेरित रहने की प्रेरणा देने हेतु ''प्रकाश-स्तम्भ'' है। अपने इस लौकिक जीवन की 10 जून 2022 को पूर्णता से दो माह पूर्व भी ''बाबा'' राष्ट्रीय प्रबन्धकारिणी की जोधपुर बैठक में पूर्ण ऊर्जा से पूरे समय उपस्थित थे। वाह! क्या अद्भुत व्यक्तित्व!

किसी भी कार्यक्रम में कार्यकर्त्ताओं से संवाद करते हुए उनकी गरज-खरजदार आवाज में उनके स्मृतिकोष से संस्कार भारती का इतिहास जब निसृत होने लगता तो, हम सभी कार्यकर्त्ता मंत्रमुग्ध से बस सुनते ही रह जाते। सदस्यों, कार्यकर्त्ताओं-कलाकारों से वर्षानुवर्ष जीवन्त सम्पर्क उनका वैशिष्ट्य था। वर्षों बाद भी उनके नाम से सम्बोधित करना, परिवार के सभी सदस्यों को स्मरण करना सभी कार्यकर्त्ताओं को स्नेहाप्लावित कर जाता था। उनका निश्चल स्नेहपूर्ण सानिध्य तो जैसे मातृत्व और वात्सल्य भाव से पगा हुआ था।

विगत अवधि की उनकी शारीरिक रूग्णता, रोगजन्य कष्ट एवम् वाणी रूद्धता सभी कार्यकर्त्ताओं के हृदय विदीर्ण कर गई। प्रतिदिन सहस्त्रों कार्यकर्त्ताओं की उनके कुशल क्षेम को तरसते फोन कॉल, प्रत्यक्ष उपस्थिति उनकी इस पीडा के सहज प्रमाण थे। नित्य प्रति सहस्त्रों कार्यकर्त्ताओं के स्वयं को दिलासा देते भाव कि ''बाबा'' जल्दी ही स्वस्थ हो जायेंगे और पुन: उनका वही सम्बोधन स्वर सुनाई देगा। किन्तु कालक्रम के सम्मुख हमारी वही शाश्वत विवशता !''बाबा'' ने अपने सार्थक एवम् प्रेरक जीवन के पश्चात् अपनी इस इहलोक यात्रा को विराम दे दिया। सर्वशक्तिमान जगन्नियंता ने अपने अनमोल पुष्प को पुन: अपने धाम बुला लिया।

नहीं–नहीं ''बाबा'' कहीं नहीं गये। वे तो जीवित हैं सहस्त्रों–कार्यकर्त्ताओं के मन–मस्तिष्क में। वे तो विद्यमान है संस्कार भारती के रूप में। वे तो श्वास और धडकन बन हम सभी कार्यकर्त्ताओं को प्राणरूप जीवित रखे हुए हैं।

बाबा योगेन्द्र के धवलयश जीवन को स्मरण कर मैं प्रेमाश्रु तो बहाऊँगा, किन्तु मोहाश्रु नहीं। ''बाबा'' बस आपका यह कर्म मय जीवन हम सभी साधारण कार्यकर्त्ताओं को अपना कर्त्तव्य भान करा हमें सदा अपने सुमार्ग पर गतिशील रखे। संस्कार भारती के इस दिव्य भास्कर को हम क्षुद्र खद्योत कार्यकर्त्ताओं का अनन्त प्रणाम।

**माँ भारती के तप: पूत, जीवन धन्यता पा गये।**
**कर्म साधना की लौ से, अनगिन दीप जला गये।**

दिव्य आत्मा को अनन्त–अनन्त प्रणाम।

– लेखक : अ.भा.संगीत विधा संयोजक, संस्कार भारती है।
मो. 9799870070

**( काकली संगीत संस्था का गुरु वंदना उत्सव )**

# 'सीस दिए जो गुरु मिलै, तौ भी सस्ता जान'

गत 18 जुलाई – श्रावण मास के पहले सोमवार को सरस्वती नगर, जवाहर चौक स्थित 'काकली संगीत संस्था' और 'कला समय–संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति' के संयुक्त तत्वावधान में काकली संगीत महाविद्यालय भवन में गुरु वंदना उत्सव आयोजित हुआ, जिसमें 'ग्वालियर संगीत घराने' और 'दतिया – पखावज घराने' के वरिष्ठ संगीतकार प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' का उनके कई शिष्य–शिष्याओं द्वारा अभिनंदन किया गया। आषाढ़ी पूर्णिमा से प्रारम्भ यह 'व्यास पर्व' शिष्य समुदाय द्वारा महाभारत रचयिता वेद व्यास की स्मृति में पूरे श्रावण मास आत्यंतिक श्रद्धा से मनाया जाता है। ज्ञातव्य है कि, गत मार्च–2022 में मध्यप्रदेश शासन द्वारा प्रो. भट्ट की असाधारण–आजीवन संगीत सेवा को ध्यान में रखकर संगीत के 'शिखर–सम्मान' से विभूषित किया गया। प्रारम्भ में सरस्वती पूजन और गुरु पूजन के बाद प्रो. भट्ट की प्रमुख शिष्या डॉ. दीप्ति गेड़ाम परमार द्वारा गुरु रचित नवीन राग 'अनन्त रंजनी' का गायन किया गया, जिसकी बंदिश 'घनाक्षरी छन्द' में तीनताल में निबद्ध है, और बोल 'देखो मनमोहन मोसे करे बरजोरी' है। राग 'भोगबन्ध' और 'अनन्त कल्याण' के बाद प्रो. भट्ट द्वारा यह तीसरा स्वरचित नवीन राग है। गायन क्रम में प्रो. भट्ट ने राग 'मियाँ की मल्हार' में स्वरचित तीनताल की नवीन बंदिश वर्षाऋतु के श्रावणी मास के अनुकूल स्वयं गाकर सुनाई –

**' गरज–गरज घिर–घिर आए बदरा,**
**बरसन लागी मोटी–मोटी बूँदन**
**उफ़नत जात लबालब भरे ताल,**
**बहे जात सब पशु–गजराज**
**त्राहि–त्राहि मचो जगत 'रसरंग'**

आगे डॉ. दीप्ति ने पंजाबी ताल का एक मशहूर ऐतिहासिक टप्पा 'होऽऽऽ परीदा'– गुलाम नबी शौरी का सुनाया, और फिर गुरु प्रो. भट्ट 'रसरंग' ने ग्वालियर घराने का चतुरंग, और ऐतिहासिक गायक गुलाब खाँ रचित एक 'त्रिवट' गाया। ये दोनों अंतिम प्रस्तुतियाँ राग 'अडाना' में थीं। उल्लेखनीय है कि वर्ष–2015 के ग्वालियर के विश्व–विख्यात 'तानसेन संगीत समारोह' में प्रो॰ भट्ट ने राग 'अडाना' के त्रिवट–चतुरंग सुनाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया था। श्रोताओं की प्रतिक्रिया थी कि ग्वालियर घराने के दिग्गज संगीतकार स्व. पण्डित कृष्णराव शंकर पण्डित के बाद ये त्रिवट–चतुरंग उन्होंने अब प्रो. भट्ट 'रसरंग' से सुने।

यहाँ प्रो. भट्ट 'रसरंग' ने ख़ास तौर पर कालजयी संगीतज्ञ स्व॰ आचार्य बृहस्पति का उल्लेख किया कि राग–संगीत की नई बंदिशों की रचना में सिर्फ़ कल्पना की 'उपज' या 'सूझ' ही काफ़ी नहीं है। 'सूझ' के साथ 'बूझ' भी ज़रूरी है कि आप जो नवीन बंदिश पेश करें, उसकी राग–प्रासंगिकता 'क्या,क्यों और कैसी' है। फिर नए राग या बंदिश की प्राणवत्ता उसका सतत गायन है, जो उसे जीवंत रखता है और टिकाऊपन नवीन राग निर्मिति की लोकप्रियता है।

कार्यक्रम में गायन के साथ आकर्षक तबला संगत प्रो. भट्ट की प्रतिभाशाली युवा शिष्या आरती मारन ने की। आरती, प्रो. भट्ट से दतिया पखावज परम्परा का तबला– ताल वादन सीख रही है। आकाशवाणी भोपाल की कार्यक्रम अनाउंसर भगवती सक्सेना ने स्वरचित गुरु वंदना केंद्रित गीत– 'नेत्र मूलम् गुरु वाक्यम् मोक्षमूलम् गुरुकृपा' का गायन करके वातावरण को श्रद्धा भक्तिमय कर दिया। गुरूवंदना में शिष्यवर्ग की उल्लेखनीय उपस्थिति – संगीत समीक्षक– ग़ज़लकार राम मेश्राम, 'कला समय' पत्रिका के सम्पादक भँवरलाल श्रीवास, अक्षत सिंह, कुशिका सिंह, सृष्टि माहुरकर, अंजली सिंह चौहान, शुभम मेश्राम आदि की रही।

रपट– **राम मेश्राम,** सी–72, विद्या नगर, नर्मदापुरम् रोड,
भोपाल –462026, मो.: 9424400130

पुस्तक समीक्षा

( भोपाल की पहली महिला शासक )

# नारी अस्मिता, साहस, बुद्धिमत्ता और प्रेमकथा की सरस जुगलबंदी है, ऐतिहासिक उपन्यास राजमहिषी मामोलाबाई

– लक्ष्मीनारायण पयोधि

**पुस्तक विवरण–**

| | | |
|---|---|---|
| उपन्यास | : | राजमहिषी मामोलाबाई |
| लेखक | : | घनश्याम सक्सेना |
| संस्करण | : | 2021 |
| मूल्य | : | ₹550/ |
| प्रकाशक | : | नमन प्रकाशन, 4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली– 110002 |

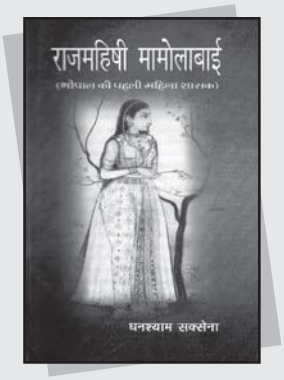


वरिष्ठ चिंतक और उपन्यासकार श्री घनश्याम सक्सेना की नवीनतम पुस्तक 'राजमहिषी मामोलाबाई' भोपाल के दूसरे नवाब यार मोहम्मद की बीवी और महिला शासक राजपूतानी मामोलाबाई के साहस, स्वाभिमान, संस्कार, बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, न्यायप्रियता, मानवीय मूल्य और राजनैतिक समझ पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है।

ऐतिहासिक उपन्यास लिखना एक बड़ी चुनौती है। यह सही कि कोई भी कथा शुद्ध इतिहास नहीं होती, उसमें कल्पना की ऐसी मिलावट करनी होती है कि ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाक्रम का संतुलन नहीं बिगड़े। अनुमान से इतिहास नहीं लिखा जाता, परंतु कथा में पात्रों के चरित्र और व्यक्तित्व के अनुरूप परिस्थितियाँ, परिवेश और संवाद तो कल्पना से ही गढ़े जाने होते हैं? और यहीं कथाकार का कोशल कसोटी पर होता है। इस कसौटी पर राजमहिषी मामोलाबाई उपन्यास के लेखक श्री घनश्याम सक्सेना खरे उतरते दिखायी देते हैं।

लेखक ने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों, मसलन– आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, वृन्दावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर आदि की तरह प्राक्कथन में उपन्यास से संबंधित ज़रूरी ऐतिहासिक तथ्यों का विवरण प्रस्तुत किया है, जिससे इस कथा की पृष्ठभूमि को लेकर पाठक के मन में विश्वास की ठोस ज़मीन तैयार होती है। वह कथा के उस काल और परिवेश में पात्रों का सहयात्री बनकर उनके साथ हो लेता है। लेखक बताते हैं कि ''दोस्त मोहम्मद के बाद भोपाल के दूसरे नवाब बने यार मोहम्मद (1728–42), जिनकी पत्नी थी, वीरांगना, विदुषी, दूरदर्शी और कूटनीतिज्ञा मामोलाबाई (1715–95), जो युद्ध करती थी, संधि करती थीं, मंत्री तथा सेनापति नियुक्त करती थीं, और जिन्होंने अपने लगभग पचास साल के वास्तविक यानी डी–फेक्टो शासनकाल में क़ानूनन यानी 'डी–जूर' दो नवाब बनाये।''

सक्सेना जी अपने उपन्यास की नायिका के व्यक्तित्व की दृढ़ता का खुलासा करते हुए कहते हैं कि ''रज़िया सुल्तान और दुर्गावती के बाद यह अनूठी महिला अठारहवीं सदी के मध्ययुगीन माहौल में औरत की आज़ादी और महिला अधिकारों की ऐसी आवाज़ बुलंद करती थी, जिसे सुनकर तत्कालीन पुरुष प्रधान अफ़गान समाज भी चकित रह जाता था।''

घनश्याम जी ने लोक–स्मृति से माँजी मामोला के किस्सों को ग्रहण किया है। वे किस्से ही इस उपन्यास की आधारभूमि हैं। लेखक ने गिन्नौरगढ़ के ध्वंसावशेषों के बीच घंटों बैठकर जनश्रुतियों के आधार पर महानायिका मामोला की आत्मा को अनुभव करने की एकांत–साधना की है और यह साधना ही इस उपन्यास का प्रस्थान बिन्दु है।

उपन्यास की शुरुआत राजस्थान के एक छोटे–से ठिकाने पर भोपाल के युवा नवाब यार मोहम्मद के आक्रमण, उसके ध्वंस और उस पर अधिकार के दृश्य के साथ होता है। ठिकानेदार और उसकी पत्नी मारे जा चुके हैं। नवाब के सिपाही माले–गनीमत के रूप में

एक रूपवती किशोरी को उसके सामने पेश कर देते हैं। खूबसूरती की आमद से विस्मित नवाब यह सुनकर चौक जाता है कि ठिकानेदार और उसकी पत्नी यानी कि किशोरी के माता-पिता को मार दिया गया है। वह कहता है कि ''मैदाने जंग में हमने तो उसे नहीं मारा। हम तो फ़क़त यह चाहते थे कि उसका ठिकाना रियासते-भोपाल का हिस्सा बने और वह हमारे मातहत रहकर हमें खिराज़ देता रहे।'' इस संवाद के माध्यम से लेखक महाकाव्य के शास्त्रीय अनुशासन का अनुकरण करते हुए अपने उपन्यास के नायक की सहृदयता और उदात्तता के गुणों को प्रतिबिंबित कर पाठक के मन में उसकी एक सकारात्मक छवि गढ़ने का सफल प्रयास करते हैं और आगे के घटनाक्रम में उसे एक धीरोदात्त नायक के रूप में स्थापित भी करते हैं।

कथा-नायिका मामोला अपने व्यवहार से एक ऐसी निडर, साहसी, गंभीर, संस्कारशालिनी और बुद्धिमती राजपूतानी की छवि के साथ कथा में उपस्थित रहती है, जो यौवन की दहलीज़ पर है, परंतु शत्रु का सामना करने को तन और मन से उद्यत है। वह विपरीत परिस्थिति में शत्रु को मारने या ख़ुद मरने के प्रयोजन से कटार में धार करती है और अपने निश्चय से नवाब यार मोहम्मद को अवगत भी कराती है। यार मामोला के रूप, साहस और बुद्धि पर मुग्ध है. इसलिये विनम्रता से उसका दिल जीतने की कोशिश में लगा रहता हैं। यहीं से एक अनूठी प्रेमकथा आकार लेने लगती है।

इस उपन्यास में लेखक ने प्रसंगानुसार भोपाल के आसपास के स्थलों से जुड़ी ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करते हुए उनके प्रचलित नामों का खुलासा भी किया है। एक प्रसंग कुछ इस प्रकार है-''महल की चारदिवारी के पीछे एक नदी बहती है, जिसे लोग हलाली के नाम से पुकारते हैं। कहते हैं कि यहीं यार के पिता और भोपाल के पहले नवाब दोस्त मोहम्मद ख़ान ने कुछ राजपूतों का, धोखे से दावत देकर, क़त्ल कर दिया था।'' नवाब यार मोहम्मद की बेगम बन जाने के बाद भी मामोला दीन-धर्म के बारे में अपने विचार नहीं बदलती।

नवाब के बार-बार इस्लाम क़बूल करने के आग्रह पर वह साफ़-साफ़ कह देती है कि ''मैं हज़ार बार कलमा पढ़ सकती हूँ। लेकिन इसे पढ़कर धर्म-परिवर्तन की ज़रूरत नहीं समझती। मैं आपकी जीवन संगिनी होने के कारण धर्म-कर्म में आपकी सहभागिनी हूँ। धर्म कोई कपड़ा नहीं है, जिसे जब चाहा उतार दिया और जब चाहा ओढ़ लिया।'' मामोला के इस संवाद के माध्यम से लेखक दीन के बारे मामोला की समझ को ही सामने नहीं लाते, बल्कि धर्म की व्यावहारिक अवधारणा को भी स्पष्ट करते हैं।

इस उपन्यास में दीन और इंसानियत, औरत और मर्द के वर्चस्व का द्वंद्व, डर, खुशामद और प्रेम आदि के दर्शन को बाखूबी स्पष्ट करने की कोशिश की गयी है। मामोला का एक संवाद है-''तब क्या मर्द लोग औरतों से डरते हैं, जो उनके रूप-रंग, चाल-ढाल, नाज़ो-नख़रे को लेकर गीत-ग़ज़ल लिखते हैं और ख़ुशामद करते हैं। प्रेम में भी तन-बदन का तत्व तो है। दरअसल, डर और ख़ुशामद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, क्योंकि जिससे डरते हैं, उसे ही ख़ुशामद करके मुक़म्मल हासिल करना चाहते हैं।...''

उपन्यास विधा में लेखक को यह सुविधा होती है कि मूल कथा के साथ अवसर और प्रसंग के अनुरूप वह अनेक अंतर्कथाओं को भी गूंथ सकता है। इस उपन्यास में भी कुशलता पूर्वक सहकथाओं का गुंफन हुआ है। नायिका मामोला के जिज्ञासापूर्ण अनुरोध पर यार मोहम्मद उसे अपने वालिद भोपाल के पहले नवाब दोस्त मोहम्मद के अफगानिस्तान से हिन्दुस्तान आने और फिर भोपाल का नवाब बनने तक की रोमांचक कहानी का बखान करता है। यह प्रसंग किस्सागोई के अंदाज में बहुत विस्तार से बताया गया है। इस यात्रा-वृत्तांत में लेखक ने जिस खूबी और प्रामाणिकता के साथ भौगोलिक एवं अन्य तथ्यों का ब्यौरा दिया है, उससे उनकी अध्ययनशीलता और शोधवृत्ति का परिचय मिलता है। यह अंतर्कथा दोस्त मोहम्मद की महत्वाकांक्षा, जाँबाजी कूटनीति, सियासी समझ और अन्य तजुर्बों पर रौशनी डालती है।

उपन्यास में दोस्त मोहम्मद की कथा कई पृष्ठों में चलती है, जिनमें उस कालखंड के ऐतिहासिक विवरण भी समेटे गये हैं, जिनसे दोस्त मोहम्मद के संपर्क में आने वाले सीतामऊ और मंगलगढ़ के राज-परिवार तथा अन्य राजपूतों, किलेदारों, जागीरदारों, ठिकानेदारों के इतिहास की भी झलक मिलती है। इस किस्से में दोस्त मोहम्मद की इश्कबाजी है, उसकी बेगमें है। उपन्यास में जहाँ भी प्रेम-प्रसंग और श्रृंगार के वर्णन का अवसर मिला है उन सारे स्थलों पर घनश्याम जी ने अपनी काव्यमेधा और सौन्दर्यदृष्टि का भरपूर उपयोग किया है।

32 परिच्छेदों में विभक्त इस उपन्यास में भोपाल रियासत की तत्कालीन परिस्थितियों, राज्यों की परस्पर लड़ाइयों, दुरभिसंधियों, षड़यंत्रों कूटनीतियों, रियासतों के निर्माण और ध्वंस आदि के ब्यौरे हैं तो कुदसिया बेगम, सिकंदरजहाँ बेगम, शाहजहाँ बेगम और सुल्तान जहाँ बेगम के शासनकाल का उल्लेख भी है।

गिन्नौरगढ़ के गोंड राजा निज़ाम शाह और उनकी रूपवती

रानी कमलापति और उनके पारस पत्थर की कहानी ने भी इस उपन्यास में माकूल जगह बनायी है। यह भी दोस्त मोहम्मद की जययात्रा का ही हिस्सा है। इसी किस्से में दोस्त मोहम्मद के भोपाल के पहले नवाब बनने की परिस्थियों का ज़िक्र भी है।

उपन्यास का उत्तरार्द्ध भोपाल रियासत की उथल-पुथल और नायिका मामोलाबाई के राजनैतिक कौशल के इर्दगिर्द बुना गया है, जिससे राजमहिषी मामोला का चरित्र उद्देश्य के अनुरूप उभरकर सामने आया है। इस कथा-नायिका के अंतिम समय का दृश्य अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। वह मूर्च्छा से लौटकर अपने गुरु पं. शीतलदास से कहती है-''गुरुजी! मैं अंत समय में आपको एक बात बताना चाहती थी। रहस्यों की बोझ गठरिया साथ में नहीं जाना चाहिए।'' वह आगे रहस्य की गठरी खोलते हुए बताती है-''गुरुजी! नवाब यार मोहम्मद की बेगम बनने के बाद यद्यपि मैं हिन्दू-मुसलमान की हदों को लाँघ गयी थी लेकिन उनके बच्चों की माँ नहीं बनना चाहती थी।...'' वह इसका खुलासा करते हुए कहती है कि ''मैं अपनी कोख को यवन-रक्त से अपवित्र नहीं होने देना चाहती थी।....'' यह अत्यंत भावनात्मक प्रसंग है, इसलिये मैं यह नहीं पूछूंगा कि बीवी बनकर देह का अधिकार सौंप देने के बाद कोख को अपवित्र होने से बचाने के पीछे का चिंतन कितना तर्कसंगत रहा होगा? लेकिन एक जिज्ञासा अवश्य है कि क्या अफ़गान नस्ल के लोग भी यवन कहलाते थे, जिनके रक्त से मामोला अपनी कोख को अपवित्र नहीं करना चाहती थी? में सोचता था कि केवल यूनान देश के लोग ही यवन कहलाते थे, जैसे-सिकंदर। बहरहाल.....

लेखक श्री घनश्याम सक्सेना ने किस्सागोई और संवादों की जो भाषा रची है, वह काल, परिवेश और पात्रों के अनुरूप है। उर्दू मिश्रित हिन्दी के प्रयोग ने कथाभाषा के रूप में उपन्यास के आरंभ से अंत तक स्वाभाविक प्रवाह बनाये रखने में सफलता अर्जित की है। इससे कथोपकथन भी चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रामाणिक बन पड़े हैं। जैसा कि पहले बताया है, बत्तीस परिच्छेदों में विभक्त यह औपन्यासिक कथा 283 पृष्ठों में समाहित है, जो पाठक को रोचक ढंग से अतीत की गौरवयात्रा में साथ ले जाती है।

एक महत्वपूर्ण भूले-बिसरे ऐतिहासिक चरित्र के व्यक्तित्व को इस उपन्यास के बहाने सामने लाने के लिये घनश्याम सक्सेनाजी बधाई के पात्र हैं। उनकी लेखनी सदैव इसी ऊर्जा के साथ सक्रिय और सृजनशील रहे, यही कामना है।

- लेखक: वरिष्ठ कवि, साहित्यकार, समीक्षक हैं।
ए-1, लोटस, स्प्रिंगवैली, कटारा हिल्स,
बाग मुगालिया, भोपाल-462043 (मध्यप्रदेश)
मो. 8319163206

# पखावज वादक पं. रामजीलाल का निधन

संगीत परंपरा के भारत विख्यात पखावज वादक पं.रामजीलाल शर्मा 77 वर्ष का गत 25 जून 2022 को रामपुर उप्र में आकस्मिक निधन हो गया। वे कुछ समय से प्रौढ़ावस्था के कारण अस्वस्थ थे। पं. रामजीलाल केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी सम्मान विभूषित और आकाशवाणी - दूरदर्शन के टॉपग्रेड पखावज वादक थे और भारत के लगभग सभी प्रमुख ध्रुवपद संगीत समारोहों में उनके पखावज की गूंज धमक की स्मृतियां, संगीत रसिकों की यादों में अभी भी ताज़ा है। पं.रामजीलाल के पिता पद्मश्री पं.अयोध्या प्रसाद भी भारत विख्यात पखावज वादक थे। दतिया के पं.जानकी प्रसाद प्रणीत पखावज वादन परम्परा, पं. रामजीलाल के दादा पं. गया प्रसाद 100 वर्ष

पूर्व दतिया से रामपुर नवाब हामिद अली खां के दरबार ले आए थे। भोपाल के काकली संगीत समारोह में कई बार पं. रामजीलाल का पखावज वादन हुआ, और उन्हें काकल सम्मान से विभूषित किया गया पं. रामजीलाल अपने पीछे पत्नी, 2 पुत्र व 1 पुत्री छोड गए हैं। उनकी पखावज वादन विरासत उनके छोटे पुत्र अनुराग सम्भाले हुए हैं। पं. रामजीलाल शिखर सम्मान विभूषित भोपाल के पं. सज्जन लाल भट्ट के चचेरे अनुज थे। पं. रामजीलाल के आकस्मिक निधन से संगीत जगत में उत्पन्न शून्य कब भरेगा, कहना कठिन हैं।

( शहीद भगत सिंह केन्द्रित खण्ड काव्य )

# देशभक्ति की प्रेरक काव्य कृतिः मैं बंदूके बो रहा

- डॉ. रोहिताश्व अस्थाना

**पुस्तक विवरण-**

| | | |
|---|---|---|
| पुस्तक | : | मैं बंदूकें बो रहा (खंडकाव्य) |
| लेखक | : | अशोक 'अंजुम' |
| प्रकाशक | : | श्वेतवर्णा प्रकाशन, 232 एस/एफ, पॉकेट बी-1 |
| | | लोकनायकपुरम, नई दिल्ली- 110 041, मो. 9650100102 |
| मूल्य | : | ₹160/- 'पेपरबैक' |

भारत के स्वतंत्रता सेनानियों, क्रांतिकारियों एवं वीर बलिदानियों पर अनेक खंडकाव्य देखने-पढ़ने को मिले हैं। इनमें शहीद-ए-आजम भगत सिंह पर केंद्रित खंड काव्य 'मैं बन्दूकें बो रहा' समीक्षार्थ हमारे सम्मुख प्रस्तुत है। इसके रचयिता हैं सुप्रसिद्ध कवि, गीतकार, ग़ज़लकार और दोहाकार भाई अशोक अंजुम जी। उन्होंने शिल्प की दृष्टि से हटकर दोहा छंद में ही प्रस्तुत खंड काव्य की सर्जना की है। उन्होंने मात्र ५०५ दोहों में शहीदे-आजम भगत सिंह के जीवन और साहसिक कृतित्व को १५ अध्यायों के अंतर्गत प्रस्तुत करके खंड काव्य का आकार दिया है। ये अध्याय हैं- जन्म और बचपन, जलियांवाला बाग कांड, असहयोग आंदोलन, नेशनल कॉलेज, गृह त्याग, गिरफ्तारी वारंट, साइमन कमीशन का विरोध, कोलकाता यात्रा, असेंबली बम कांड, गिरफ्तारी, न्यायालय में पेशी, जेल का वातावरण, लाहौर षड्यंत्र, फाँसी की सज़ा का ऐलान, और अंतिम यात्रा। खंडकाव्य का श्रीगणेश करते हुए कवि ने लिखा है

**ऋणी रहेगा सर्वदा, जिसका भारत देश।**
**कुल तेइस की उम्र में, बदल गया परिवेश।।**

क्रांति की पैतृक आग बालक भगत सिंह के हृदय में जल रही थी। जलियांवाला बाग कांड के हृदय विदारक दृश्य उसने देखे थे। आप भी इस दृश्य को देखिए और अपने दिलों में क्रांति की ऊष्मा का अनुभव कीजिए। यथा

**जनरल डायर आ गया हृदय हीन मतिमंद।**
**साथ पुलिस की टुकड़ियाँ, इक रस्ता- वह बंद ।।**

और.....

**इधर भरी बंदूक थी , उधर निहत्थी भीड़।**
**चीख-पुकारें मच गई , लगे उजड़ने नीड़।।**

अंग्रेजों से बदला लेने का भाव बालक भगत सिंह के दृढ़ निश्चयी मन में बैठ चुका था। एक बार वह खेत में ३ वर्ष की अवस्था में ही तिनके बो रहा था। पिता के पूछने पर उसने बड़े जोश में उत्तर दिया-

**तब बालक ने जोश में, उत्तर दिया विशेष।**
**मैं बन्दूकें बो रहा, हो स्वतंत्र निज देश।।**

अपने इस विशेष कृत्य से भगत सिंह ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि- 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' कवि ने आत्मकथ्य में ठीक ही कहा है कि- 'जीवन में सभी सुखों को तिलांजलि देकर राष्ट्र सेवा में ही सुख की अनुभूति करने वाला यह चरित्र आज और भी प्रासंगिक हो जाता है, जबकि युवाओं के आदर्श मनोरंजन जगत के लोग या खिलाड़ी आदि बने हुए हैं।' असेंबली में बम फेंककर भगत सिंह ने अंग्रेजों को सचेत कर दिया कि अब उनकी दाल गलने वाली नहीं है। वे अंग्रेजों के अत्याचारों- शारीरिक एवं मानसिक यातनाओं से कभी नहीं घबराए अपितु सर्वथा उन्हें भयभीत करते रहे ताकि भारत माता को आजादी मिल सके। अंत में भगत सिंह की गिरफ्तारी हुई, मुकदमा चला और अंग्रेजों ने उन्हें सुखदेव और राजगुरु के साथ फाँसी कही सजा सुना दी। कवि के शब्दों में -

**तेइस मार्च इकतीस की, यह थी ऐसी शाम।**
**देशभक्ति को जब मिला, फाँसी का ईनाम।।**

काश हमारे राजनेताओं के मन में ऐसे वीर शहीदों एवं उनके परिवारों के दुख-दर्द की किंचित भी अनुभूति होती तो कविगणों को सियासत के बारे में कटु टिप्पणियाँ न करनी पड़तीं। कवि रहीम, कबीर और तुलसी की भाँति कृति के कतिपय दोहों में अपने उपनाम का उल्लेख भी किया है। यथा-

**बनी जिस घड़ी योजना, होवे बम विस्फोट।**
**ब्रिटिश राज्य को यों मिले,अंजुम तगड़ी चोट।।**

ऐसे बलिदानों का मोल भुला सकता है। कवि के शब्दों में-

**कौन चुका सकता भला, बलिदानों का मोल।**
**एक लहर जो क्रांति की, गये दिलों में घोल।।**

नि:संदेह भगत सिंह सदृश बलिदानियों के दिलों में भारत माता की स्वतंत्रता के लिए जो ललक थी उसे यदि हमारा युवा वर्ग और देश सेवा से जुड़े कथित लोग समझ सकते तो क्या ही अच्छा होता। तभी तो कवि ने अंत में कहा हैं-

**नव पीढ़ी समझे अगर, क्या होता बलिदान।**
**चमके नव आभा लिये, अपना हिंदुस्तान।।**

कवि नई पीढ़ी को संदेश देते हुए कहता है-

**असली हीरे हैं यही, युवा शक्ति दे ध्यान।**
**भारत माता का तभी, हो पाए कल्याण।।**

कुल मिलाकर प्रस्तुत कृति बच्चों एवं युवाओं के मन में देशभक्ति के प्रति ज्वार जगाने वाली एक अनूठी कृति है। इसे पढ़कर हजारों-लाखों-करोड़ों के दिल में फिर से नये भगत सिंह जाग्रत हो सकेंगे। पुस्तक पठनीय एवं बच्चों को उपहार में देने योग्य है। सहायक पुस्तक के रूप में हिंदी के विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए यह उत्तम और विचारणीय कृति है। विद्यालयों एवं पुस्तकालयों में इसकी कई-कई प्रतियाँ होनी चाहिए, ताकि सभी पाठकों को यह सुगमता से उपलब्ध हो सके।

संपर्क- निकट बावन चुंगी चौराहा, हरदोई 241001 (उ.प्र.)
मो.-7607983984

# कला समय पत्रिका के स्वतंत्रता आन्दोलन में मध्यप्रदेश की गौरवगाथा विशेषांक ( 1857-1947 ) का उज्जैन में लोकार्पण

विक्रमादित्य शोध पीठ, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना एवं विक्रम विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित विक्रमादित्य युगीन वृहत्तर भारत (विचार समागम) अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में कला समय पत्रिका के स्वतंत्रता आन्दोलन में मध्यप्रदेश की गौरवगाथा विशेषांक (1857-1947) का विमोचन सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मुख्य अतिथि डॉ. रवीन्द्र भारद्वाज (पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास, शा. कन्या महाविद्यालय, उज्जैन), साथ में डॉ. आर. सी. ठाकुर (निदेशक, अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर), डॉ. पूरण सहगल (मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान, मनासा) एवं कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय (अतिथि सम्पादक एवं संरक्षक कला समय पत्रिका) आदि गणमान्य लोग उपस्थित थे।

पुस्तक समीक्षा

( नासिर अली ''नदीम'' की हिन्दी ग़ज़लों का संग्रह )

# रंग-ए-तसव्वुफ़ में आज की गज़ल : शाश्वत संवाद

– राम मेश्राम

**पुस्तक विवरण-**

| | | |
|---|---|---|
| पुस्तक | : | शाश्वत संवाद (ग़ज़ल-संग्रह) |
| लेखक | : | नासिर अली ''नदीम'' |
| प्रकाशक | : | साहित्य निलय, 40/49, बौद्ध नगर प्रथम खण्ड, नौबस्ता, कानपुर (उ.प्र.)- 208021 |
| मूल्य | : | ₹300.00 |

जालौन (उत्तर प्रदेश) के शायर उस्ताद नासिर अली ''नदीम'' का हिन्दी ग़ज़ल संग्रह'' शाश्वत-संवाद '' पाठकों के सामने है, जिसके दिल छूने वाले चन्द अशआर यहाँ गौरतलब हैं:-

*''सारे भुवन की सुन्दरता*
*अंतर्मन की सुन्दरता.*
*वे ही जीवन महान जीते हैं,*
*जो सदा वर्तमान जीते हैं.*
*दीपकों को बुझा कर कहें*
*लोग तमसो-मा-ज्योर्तिगमय.*
*काम ही काम में दिन-रैन बिताया जीवन*
*काम कहता है, किसी काम न आया जीवन*
*वो हैं वो जो मैं हूँ, मैं हूँ वो जो वो हैं*
*ये क्या कह गया मैं ग़ज़ल कहते कहते''*

नासिर अली के लेखन की पृष्ठभूमि उर्दू की है, लेकिन उनकी आम पहिचान हिन्दी कवि, ग़ज़लकार और ''अदब नामा'' पत्रिका के सम्पादक की है, और पुरानी शोहरत ''ग़ज़ल सृजन कला प्रसार केन्द्र'' के उस्ताद की है, जो छन्द- बह्र के दोष से मुक्त ग़ज़ल लिखना सिखाते हैं। किताब के शीर्षक ''शाश्वत-संवाद'' के नीचे अगर ग़ज़ल संग्रह लिखा न होता, तो पहली नज़र में ऐसा लगता कि यह सूफी दर्शन शास्त्र का ग्रंथ है।

ग़ज़लों में व्यक्त भाव और वैचारिकी के अनुसार उनका छः खानों में वर्गीकरण इस प्रकार है –

(1) आध्यात्मिक (रूहानी) प्रेम की सूफियाना रंग की 56 ग़ज़लें
(2) वैयक्तिक प्रेम (इश्क-मज़ाजी) की रूमानी-4 ग़ज़लें
(3) आदर्शवादी (नैतिक तथा व्यावहारिक) शिक्षा परक-28 ग़ज़लें
(4) सामाजिक सरोकार की ग़ज़लें-4
(5) समकालीन राजनीति की ग़ज़लें-5
(6) विज्ञान-पर्यावरण संबंधी गज़लें-4

इन ग़ज़लियात में आज के आधुनिकता बोध (जदीदियत के एहसास) को महज़ इतना ही समझा जा सकता है कि कुछ ग़ज़लों में देश-समाज, पर्यावरण-संकट, समकालीन जिन्दगी के उहापोह और लोकतांत्रिक राजनीति में गिरावट पर चन्द अच्छे अशआर कहे गए हैं। ग़ज़लों की भाषा ''संस्कृत निष्ठ'' हिन्दी है ।

ग़ज़ल-13 और ग़ज़ल-95 में सन् 1950-1960 के नीरज के दौर की, प्रेमिका को सम्बोधित, प्रेम के अतिरेक में डूबी काव्य भाषा के शब्द ''प्राण'' का प्रयोग किया गया है और ग़ज़ल-13 के 7 अशआर में तो ''प्राण'' शब्द ही को काफिया बना दिया गया है। प्रेम केन्द्रित रूमानी ग़ज़ल, स्त्री-पुरूष का भौतिक- लौकिक प्रेम व्यक्त करे या कि आत्मा-परमात्मा का पारलौकिक प्रेम, इन दोनों ''इश्क़-मजाजी'' और ''इश्क-हकीकी'' के हर पहलू पर पिछली 18वीं से 20वीं सदी में लगातार इतना कुछ कहा जा चुका है कि अब कथित ''प्रेम तत्व'' पर नया कहने के लिये शायद ही कुछ शेष हो। विचारणीय यह है कि प्रेम के नाम पर या प्रेम के बहाने आप जो लिख

रहे हैं, उसमें ''नयापन'' या ऐसी अद्वितीयता क्या है, जो पहले के कवियों, शायरों में नहीं पायी जाती या कि इनसे अलहदा है ?

इस संग्रह का केन्द्रीय रूझान प्रेम तत्व पर है। आखिर ''इश्क-हकीकी'' पर 56 और ''इश्क मज़ाजी'' (जिस्मानी रूमान) पर चार ग़ज़लें इस प्रकार रूमान की कुल 60 ग़ज़लें आधे से ज्यादा संकलन पर छाई हैं जो एक ही विचार बिन्दु के विस्तार के लिहाज़ से कम नहीं हैं।

प्रेम की गहरी तल्लीनता के साथ ईश्वर से जीवात्मा की एकरूपता की अनुभूति ''तसव्वुफ'' या सूफी चिन्तन का मूल केन्द्र है। इसके पसमंज़र संकलन की कई ग़ज़लों में बहुत अच्छे अशआर कहे गए हैं। जैसे ग़ज़ल-7 का 8वाँ शेर सहज बयानी का गौरतलब नमूना है-

*''होते होते हो गया, सो हो गया*
*रह गया मन में, वही उलझन हुआ''*

ग़ज़लों में मानक हिन्दी शब्दावली के लगातार प्रयोग में भी इनके चन्द अशआर आध्यात्मिक संवाद की रवानी जारी रखे हुए हैं। ग़ज़ल-9 के ये अशआर देखने लायक हैं -

*''गणना में आ के ही तो हुआ हूँ नगण्य मैं*
*करके विलीन '' आप ''में अगणित करो मुझे''*

और मकते का यह शेर भी कि -

*''हर शब्द में वही है, वही वर्ण-वर्ण में*
*वर्णन सुनो '' नदीम ''न वर्णित करो मुझे''*

इसी संवाद के चलते शायर महसूस करता है ग़ज़ल-16 का यह अनुपम मतला जो अपनी मिसाल - आप है कि,

*''सारे भुवन की सुन्दरता*
*अंतर्मन की सुन्दरता''*

तो ग़ज़ल-59, शेर-6 में गहरा आध्यात्मिक रंग सारी प्रकृति में किसी अलौकिक की अदृश्य सत्ता कुछ इस तरह महसूस करता है-

*''समीर, सूर्य, नदी, व्योम, गंध, हरियाली*
*डगर इन्हीं ने बतायी तिरे ठिकाने की''*

और तभी ग़ज़ल-36 के मक्ते के शेर-6 में शायर की आध्यात्मिक चेतना, अज्ञात प्रिय की 'माया' को पहिचान लेती है-

*''तू नदीम ''ओट से अपनी है बनाये क्या-क्या*
*हाय माया, तेरी माया, तेरी माया घूँघट ''*

रंगे तसव्वुफ़ से आगे ग़ज़ल-संग्रह में काव्य चेतना का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू ग़मे-दौराँ या समकालीन राजनीति के परिप्रेक्ष्य में देश और समाज के हालात हैं, जिन पर शायर ने कुछ बहुत प्रभावी अशआर कहे हैं जैसे ग़ज़ल-87 के सभी 9 शेर और उनमें भी ये शेर देखने लायक हैं ।

*''नए युग का वरदान, ''मतदान''है*
*कि ''दाता'' भी जिसके हैं ''याचक'' यहाँ,*
*दुखी चाहे जितनी हो जनता मगर*
*सुखी है सभी उसके सेवक यहाँ*
*हुए तब हुए, आज फिर चाहिये*
*सभी के समन्वित सुधारक यहाँ*

वायदों और आश्वासनों-घोषणाओं की राजनीति पर ग़ज़ल-89 में आकर्षक यह शेर-

*''वचन ही तो हैं, जोड़ते हैं जो हमको*
*वचन भ्रष्ट होंगे, तो फिर क्या रहेगा ?*

आज की राजनीति में देश के माहौल की बहुत नज़दीकी तस्वीर बनाते ग़ज़ल-86 के खुद-ब-खुद बोल रहे ये अशआर -

*'' सूरजों'' के शिविर ही शिविर आजकल*
*फिर भी मिटता नहीं है तिमिर आजकल*
*व्यक्ति ऐसे भी अब पुज रहे हैं यहाँ*
*ठौर पर पाँव जिनके न सिर आजकल*
*व्यक्ति की दुर्दशा जो कभी पहले थी*
*लौटती सी लगे है वो फिर आजकल''*

राजनीति ने समाज-जीवन में ऐसा अंतर्विरोध पैदा कर दिया है कि हम कहते कुछ हैं और करते कुछ और हैं।

और इसी ग़ज़ल के शेर-6 में आज के सार्वजनिक आवश्यक वस्तु वितरण के हालात देखिए-

*''है अभी तो तमस ही तमस*
*देखिए सूर्य कब हो उदय'*

वहीं इस ग़ज़ल का जीवन्त मक़ता देखें कि-

*''देख उनको ''नदीम'' आए घिन*
*बोलते थे कभी जिन की जय''*

और इस स्याह माहौल में जन-मन को झकझोरता ग़ज़ल-86 का यह शेर-

*''सत्य जो आज है, सबके हित में उसे*
*बिन गँवाए हुए एक क्षण भी, कहो''*

तो समकालीन राजनीतिक और शोषण केन्द्रित अर्थ व्यवस्था ने इन्सान की ज़िन्दगी को इस कदर असामान्य कर दिया है, कि ग़ज़ल-83 के ये 3 अशआर इन्हें यूँ शब्द देते हैं कि-

*'' हर नया क्षण नए एक संत्रास का*
*अब समय है कहाँ हास-परिहास का*
*कोई ऐसा नहीं खण्ड इतिहास का,*
*जिसमें हन्ता हुआ हो न विश्वास का''*
*जब न भोजन, न वस्त्रों का हल हो सका*
*प्रश्न हल होगा फिर कैसे आवास का''*

हालातों की अक्कासी करता ग़ज़ल-54 का यह मतला गौरतलब है-

*''उपजी उसी से द्वंद्व की ओछी परम्परा*
*हमने ''सहिष्णुता'' की जो छोड़ी परम्परा''*

और आज ईश्वर और अल्लाह के नाम पर लगातार भड़क रही धार्मिक कट्टरता और मजहबी उन्माद की ग़ज़ल-73 के शेर-6 में क्या खूब अक्कासी हुई है-

*''वो कौन है, वो है कैसा कभी नहीं जाना,*
*वो जिस के नाम पे लड़ते, विवाद करते हम''*

पर्यावरण-विज्ञान चेतना और समाज जीवन पर संकलन में चन्द बहुत अच्छे अशआर हैं।

निजी स्वार्थ के लिए मनुष्य के प्रकृति के अन्धाधुन्ध दोहन से धरती के पर्यावरण का जो विनाश हुआ है- उसकी यथार्थपरक अभिव्यक्ति ग़ज़ल-84 के शेर-2 और 5 देखें कि-

*''क्यों विषैला हुआ आज कण-कण कहो*
*किसने फूँका है ये मंत्र मारण कहो''*
*वास्तविक चाह दिखती नहीं है कहीं*
*फिर मिटे भी तो कैसे प्रदूषण कहो''*

ग़ज़ल-80 नदियों पर और ग़ज़ल-81 पानी पर कही गई बेहतरीन ग़ज़लें हैं, जो पर्यावरण की चेतना जगाने के साथ सीधे मानवीय संवेदना को स्पर्श करती हैं। नदी की ग़ज़ल-80 के मतले का यह आकर्षक शेर जो मानव जीवन के लिए स्वयं में बड़ी शिक्षा समाहित किए हुए है-

*''मोड़ जीवन में बहुत आएँगे, कहती नदियाँ*
*इसलिए बहती नहीं है कभी सीधी नदियाँ''*
*और ग़ज़ल-81 की वैज्ञानिक दृष्टि का यह शेर -*
*''देह में अपनी भी अनुपात है जल का उतना*
*जितने अनुपात में धरती पे है ठहरा पानी''*

और इस प्राकृतिक विनाश का मानव जीवन पर कैसा भयावह प्रभाव पड़ा, ग़ज़ल-11 के इस शेर में देखें-

*मिट्टी-पानी, आग-हवा से, अनुचित छेड़ गगन से की तो*
*इसका उत्तर लेकर आया, आग उगलता मौसम हम तक*

यहीं, भारतीय अंतरिक्ष यात्री ''कल्पना चावला'' को ग़ज़ल-91 के शेर-6 में शायर ने अत्यंत संवेदनशील शब्दों में याद किया है-

*''कल्पनाएँ और भी हैं और भी होंगी अभी,*
*काश कोई और निकले ''चावला'' सी ''कल्पना''*

जीवन के आदर्शों और व्यावहारिक शिक्षा पर विभिन्न ग़ज़लों में दिल छूने वाले चन्द अशआर ऐसे हैं, जिनसे इतिहास प्रसिद्ध कवि ''गिरधर कविराय'' की याद आती है । ग़ज़ल-17 का यह मतला गौर तलब है -

*''वे ही जीवन महान जीते हैं*
*जो सदा वर्तमान जीते हैं''*

ग़ज़ल-19 का अनुभव सिद्ध सीख देता यह शेर -

*''ये मिले, वो भी मिले, और हमें वो भी मिले*
*जाने कितनों ने इसी धुन में गँवाया जीवन''*

यहीं ग़ज़ल-79 का बहुत अधिक शिक्षा के अहं का खोखलापन उजागर करता यह शेर -

*''अज्ञान भटकते हैं, अतिज्ञान भटकते हैं*
*पा जाते निरक्षर पर विद्वान भटकते हैं''*

और अंत में, शायर अपने साहित्य सृजन का आंकलन ग़ज़ल-89 में इन अशआर में करता है -

शेर-5 *''भले ही न उपवन में प्रश्रय मिलेगा*
*सुमन तो सुमन है जो वन में खिलेगा''*
शेर-6 *''न क्यों काव्य दीपक सा देगा उजाला*
*हृदय दीप बनकर जो कवि का जलेगा''*

इस ग़ज़ल संकलन की एक अहम विशेषता इसकी सूफियाना रंग की ग़ज़लों का प्रभावशाली सांगीतिक पक्ष है जिसमें शास्त्रीय संगीत के प्रात: कालीन मध्यान्ह-अपरान्ह, सायंकालीन रागों, संधिप्रकाश राग, और रात्रिकालीन राग-रागिनियों में ये ग़ज़लियात गाये जाने लायक हैं । सूफियने रंग की ये ग़ज़लें इतनी अधिक भाव प्रवण हैं कि ये साहित्य से ज़्यादा संगीत के काम की हैं चूँकि इनमें रूहानी रंग शुरू से आखिर तक ग़ालिब है, इसलिये इन्हें खासतौर पर अमीर खुसरो रचित रागों जैसे- ''फरगाना, जिला, और साजगिरि'' में और लोकप्रिय रागों जैसे यमन-कल्याण, तोड़ी, अहीर भैरव, विभिन्न सारंग राग, पटदीप, भीमपलासी, मारवा, केदार, बागेश्री, मालकौंस, चन्द्रकौंस, सोहनी, वसन्त, बहार, दरबारी आदि में गाये जाने से इन ग़ज़लों का आन्तरिक भाव पक्ष

सच्चे अर्थों में जीवन्त हो उठेगा और श्रोताओं पर उसका बहुत गहरा असर होगा।

संकलन में दो ग़ज़लों क्रमांक–21 और क्रमांक–77 पर पूर्व प्रसिद्ध काव्य रचनाओं का प्रभाव है। ग़ज़ल–77 का शेर–6 कबीर के पद ''मन ना रंगाये, रंगाये जोगी कपड़ा'' से प्रभावित है, और ग़ज़ल–21 पर मशहूर शायर जाँ निसार अख्तर की लोकप्रिय ग़ज़ल–

*''अशआर मेरे यूँ तो जमाने के लिये हैं,*
*दो–चार फ़कत उनको सुनाने के लिये हैं''*

का प्रभाव साफ तौर पर नज़र आता है ।तुलनीय– ग़ज़ल 21 का मतला –

*''कुछ पंक्तियां ही सबको सुनाने के हेतु हैं,*
*अधिकांशत: उन्हीं को रिझाने के हेतु हैं''*

संकलन की तीन ग़ज़लें क्रमश–42, 43 और 88 छन्द ''दोहा'' में कही गई हैं । फारसी अरूज़ (छंद शास्त्र) में, संस्कृत पिंगल छन्द शास्त्र के छन्द दोहा की समतुल्य बह्र ''बह्र–ए–मुजतस मुसम्मन सालिम'' है, जिसका वजन (लय) ''मुस्तफएलुन् फाएलातुन, मुस्तफएलुन् फाएलातुन है।

2212 2122 2212 2122

लेकिन उपरोक्त बहर का वज़्न दोहा छन्द की लय से समतुल्य नहीं है। इसी प्रकार ग़ज़ल–14

*''ध्यान रहे, यह भूल न करना,*
*प्रिय मन के प्रतिकूल न करना''*

के शेर–6 के मिसरा–ए–सानी ''सूर्य को अर्पित धूल न करना'' में ''सूर्य'' शब्द के प्रयोग में एक मात्रा बढ़ गई है। अगर ''सूर्य'' के बदले ''रवि'' का प्रयोग किया जाता तो यह अधिक मात्रा दोष न होता।

ग़ज़ल संग्रह में प्रूफ की कुछ गम्भीर त्रुटियाँ हैं। ग़ज़ल–18, शेर–6 में प्रूफ त्रुटि ''लौ दीपक की ''छेड़ेगो ''तो के स्थान पर '' छेड़ोगे'' होना चाहिए था। ग़ज़ल–19 के मतले के शेर मिसरा–ए–सानी में एक शब्द ''जीवन'' मुद्रण से छूट गया है–

*''काम कहता है कि कुछ काम न आया ''जीवन''*

ग़ज़ल–20 के शेर–3 के मिसरा–उला में एक शब्द छूट गया है जिससे मिसरे का मात्रा संयोजन विषम हो गया है। तुलनात्मक पुनर्पाठ इस प्रकार है–

*मूल मिसरा– ''मौन का तेरे सभी ने है उठाया लाभ''*
*परिष्कृत पुनर्पाठ– ''मौन का तेरे सभी ने तो उठाया है लाभ''*

ग़ज़ल–49 के मतले के मिसरा–सानी के अन्त में ''है'' शब्द मुद्रण से छूट गया है।

*''आत्म निस्सृत हो जो, इक पल भी अधिक होता है''*

ग़ज़ल–84 के मकते के मिसरा–सानी के अन्त में ''कहो'' शब्द मुद्रण से छूट गया है, कृपया देखें–

*''क्या है कारण, कहो ? क्या निवारण कहो''*

अन्त में इन रूहानी सूफियाना ग़ज़लियात में रचनाकर्म का अहं नहीं बल्कि शायर की आंतरिक विनम्रता ग़ज़ल–60 के मक़ते में इस तरह व्यक्त होती है–

*''मेरी रचनाओं के सारे दोष हैं मेरे नदीम,*
*और जो निर्दोष है, मेरा रचा है ही नहीं''*

**पुस्तक प्राप्ति हेतु:–**
नासिर अली ''नदीम'', 219, नारो भास्कर, जालौन–285123 (उ.प्र.), मो.नं. 9838337386
–सी–72, विद्या नगर, (निलय अस्पताल के पीछे), होशंगाबाद रोड, भोपाल–462026 (म.प्र.), मो.: 09424400130

## श्रद्धांजलि

**शिवकुमार अर्चन**

**ख्याति प्राप्त गीतकार**

**जन्म : 5 अक्टूबर, 1946** **प्रयाण : 5 जुलाई, 2022**

**कला समय परिवार**
**की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि....**

### कलाघर में याद किए गए संत कवि रविदास

# सगुण भक्ति मक्खन है तो निर्गुण है 'घी'

बहुकला केंद्र भारत-भवन में बीते सप्ताह निर्गुण काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि संत शिरोमणि रविदास (रैदास) पर केन्द्रित समारोह का आयोजन हुआ। रविदास पर केन्द्रित भारत भवन का यह पहला आयोजन था। तीन दिन भारत भवन का पूरा परिसर रविदासमय हो गया। जगह जगह रविदास के पदों और साखियों के आकर्षक पोस्टरों का प्रदर्शन एवं रविदास पर रचित पुस्तकों का कालोज प्रदर्शित किया गया था। समारोह में तीनों दिन 'संत परंपरा और रैदास' विषय पर वैचारिक सत्र हुए। इसके अलावा संत रविदास के पदों की स्वरबद्ध प्रस्तुति कार्यक्रम का विशेष आकर्षण कहा जाएगा।

वैचारिक सत्रों में पहले सत्र के अध्यक्ष थे विख्यात साहित्यकार श्यामसुंदर दुबे और वक्ता थे वरिष्ठ विद्वान चन्द्रिका प्रसाद चन्द्र, वरिष्ठ कवि अनिल त्रिपाठी और समीक्षक अभिषेक शर्मा । दूसरे वैचारिक सत्र के अध्यक्ष भी प्रतिष्ठित ललित निबंधकार श्री राम परिहार और वक्ता थी वरिष्ठ कथाकार उर्मिला शिरीष, विद्वान समीक्षक डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र और संत साहित्य के शोधकर्ता बृजेन्द्र कुमार सिंहल।

समापन सत्र की अध्यक्षता 'संत रविदास की राम कहानी 'उपन्यास के लेखक देवेन्द्र दीपक ने की । वक्ता थे संत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डॉ. उदय प्रताप सिंह, वरिष्ठ कवि और समीक्षक इंदुशेखर 'तत्पुरुष' और दलित विमर्श के विख्यात हस्ताक्षर डॉ. जयप्रकाश कर्दम।

समापन वक्तव्य में देवेन्द्र दीपक ने कहा – सगुण भक्ति मक्खन है और निर्गुण भक्ति घी। जिसको जो रुचिकर लगे ,उसका सेवन करे। रविदास की वाणी में सगुण और निर्गुण का मिलन खिचड़ी की तरह है। डॉ. उदय प्रताप सिंह ने कहा उत्तर भारत की संत परंपरा में स्वामी रामानंद केन्द्र में हैं । सामाजिक समरसता के लिए उन्होंने कबीर, रैदास, सेन आदि को दीक्षा दी । जयप्रकाश कर्दम का कहना था कि रविदास जी का जीवन चुनौती भरा था लेकिन अपनी दृढता और साधना से उन्होंने विरोधी शक्तियों पर विजय प्राप्त की। इंदुशेखर तत्पुरुष ने भक्तमाल के साक्ष्य से रविदास को और उनकी भक्ति को परिभाषित किया इस त्रिदिवसीय आयोजन में जगह जगह सभी आमंत्रित विद्वानों के चित्रों को समेकित कर प्रदर्शित किया गया था ।

''मैं कठौती की गंगा'' करता रहा आकर्षित, सबके आकर्षण का केन्द्र रहा देवेन्द्र दीपक की रविदास पर रचित कविता ''मैं कठौती की गंगा ''का पोस्टर।

गूंजे रविदास के पद समारोह में वैचारिक सत्रों के साथ ही रविदास के पदों को स्वरबद्ध कर प्रस्तुत किया गया। इन पदों को जहां उभरते कलाकारों ने प्रस्तुत किए तो भजन गायक पद्मश्री से सम्मानित भारती बंधु जैसे गायकों ने सुर दिए।

पहली शाम भजन गायक भारती बंधु के भजनों की प्रस्तुति

से हुई। उन्होंने अपने शिष्यों के साथ भजन गुनगुनाएं।

रैदास का प्रसिद्ध पद-'प्रभुजी तुम चंदन, हम पानी' उपस्थित श्रोता साथ-साथ गुनगुनाने लगे। इसके अलावा 'अब कैसे छूटे राम नाम रट लागी,भज ले हरि-हरि रट ले हरि-हरि, मैं का जानूं देवा का जानू..... जैसे पद सुनाये। इसके पूर्व रामानंद सिंह संगीत महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने कपिल शर्मा के निर्देशन में संगीत वृंदगान की प्रस्तुति दी। इसके बाद प्रसिद्ध कोरियोग्राफर वैशाली गुप्ता के निर्देशन में वाणी मंगल की प्रस्तुति दी गई। अगले दिन सुबह के सत्र में विहान ड्रामा वर्क्स के कलाकारों ने श्री संत रविदास जी के पदों की सांगीतिक प्रस्तुति दी। तीस मिनट की इस प्रस्तुति में रैदास जी के चार प्रसिद्ध पदों का गायन हुआ। इसके अलावा संत रैदास के

जीवन से जुड़ी कुछ जनश्रुतियों को कथोपकथन की शैली में कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया। उन घटनाओं में उक्त गीतों को गूंथा गया था। इस प्रस्तुति के परिकल्पक, आलेखकार, निर्देशक सौरभ अनंत ने बताया कि यह एक अभिनव प्रयास था। जिसे दर्शकों ने सराहा।

प्रस्तुति में कुल सत्रह कलाकारों की टीम मंच पर थी। समापन दिवस पर सुबह के सत्र में श्वेता जोशी ने तथा शाम के सत्र में हेमंत चव्हाण ने संत रविदास के पदों की सांगीतिक प्रस्तुति दी। साथ ही फिल्म का प्रदर्शन भी हुआ। 'संत रविदास की अमर कहानी' शीर्षक इस फिल्म में संत का जीवन विस्तार से दर्शकों तक पहुंचा।

रपट-दीपक पगारे

# कथाकठौती की समीक्षा-गोष्ठी

''राजाराम रूपध्वनि कला-दीर्घा'', 'सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन शोध-पीठ' के ''राजाराम रूपध्वनि कला-दीर्घा'' सभा-कक्ष में आयोजित सारस्वत कार्यक्रम के अंतर्गत डॉ.बिनय षड़ंगी राजाराम द्वारा रचित बाल-कथा-संचयन...''कथाकठौती'' की समीक्षा-गोष्ठी का कार्यक्रम सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

इस अवसर पर सरस्वती-वंदना के उपरांत उपस्थित समस्त विद्वत जनों का आत्मिक स्वागत करते हुए पौधों से किया। डॉ.बिनय षड़ंगी राजाराम ने अपनी पुस्तक की एक कथा 'चित्रकार मोर' का वाचन किया, जिसके उपरांत समीक्षक श्रीमती सुनीता मिश्र ने पुस्तक पर अपने विचार प्रस्तुत किए।भोपाल के जाने-माने समीक्षक श्री गोकुल सोनी ने ''कथाकठौती'' पर अपनी महत्वपूर्ण टिप्पणी में संग्रह की अनेक विशेषताओं का उल्लेख किया। लेखिका संघ की अति सक्रिय अध्यक्ष श्रीमती अनिता सक्सेना ने डॉ.बिनय की बाल-कथाओं पर विस्तृत विवेचना करते हुए कहानियों के बाल-मनोविज्ञान के पक्ष को विशेष रूप से रेखांकित किया।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि-मुख्य वक्ता,व-मनीषी संस्कृत और संस्कार के गहन अध्येता डॉ.प्रभुदयाल मिश्र ने बाल-कथा-संचयन पर गंभीर समीक्षा प्रस्तुत करते हुए कहानियों के उत्स और उद्भावनाओं पर एवं लेखिका के कथा-संयोजन पर अपने बेबाक विचार रखे। कार्यक्रम के अध्यक्ष, लब्ध-प्रतिष्ठित वयोज्येष्ठ साहित्यकार डॉ.देवेन्द्र दीपक ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में पुस्तक पर अभिव्यक्त सार्थक विवेचनाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लेखिका के बहु-आयामी व्यक्तित्व पर भी अपने विचार रखे। उन्होंने पुस्तक के चित्रों और समग्र स्वरूप को विशेष रुप से रेखांकित

किया। मुख्य अतिथि वक्ता डॉ. प्रभुदयाल मिश्र ने बाल-कथा-संचयन पर अपने बेबाक विचार रखे। कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. देवेन्द्र दीपक ने पुस्तक के चित्रों और समग्र स्वरूप को विशेष रूप से रेखांकित किया। मुख्य अतिथि वक्ता डॉ. प्रभुदयाल मिश्र ने बाल कथा संचयन पर अपने बेबाक विचार रखे। कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. देवेन्द्र दीपक ने पुस्तक के चित्रों और समग्र स्वरूप को विशेष स्प से रेखांकित किया।

इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम का सुंदर संचालन करते हुए डॉ.आभा मिश्रा ने एक शिक्षिका की दृष्टि से भी बालकथा संचयन की कहानियों को कसौटी पर कसते हुए कार्यक्रम को ऊँचाई पर पहुँचाया। अंत में लेखिका श्रीमती मधुलिका श्रीवास्तव द्वारा सुविचारित शब्दों के साथ धन्यवाद ज्ञापन के पश्चात कथा-संचयन में प्रकाशित,लेखिका द्वारा बनाए तथा 'कला-दीर्घा' में प्रदर्शित मूल चित्र-कोलाजों को देखते हुए बाल कहानी और चित्रों के अन्योन्याश्रित संबंधों की अनौपचारिक चर्चाओं के साथ कार्यक्रम की समाप्ति हुई।

- डॉ.आभा मिश्रा

# नादब्रह्मोपासना की पर्याय ध्रुवपद गायकी की तीन प्रशिक्षण-कार्यशालाएँ

**पहली कार्यशाला** –

संस्था सचिव अलकेश शर्मा के सानिध्य एवं प्राचार्या डॉ. कमलेश शर्मा के संयोजन में जयपुर के सत्यसाईं महिला पी.जी. महाविद्यालय में दिनांक 11 से 13 अप्रेल 2022 को त्रिवसीय ध्रुवपद-कार्यशाला का आयोजन किया गया, इसमें ध्रुवपद-विशेषज्ञ प्रो. (डॉ.) मधु भट्ट तैलंग ने 40 विद्यार्थियों को भारतीय शास्त्रीय संगीत की सामवेद से नि:सृत पुरातन गायकी ध्रुवपद का प्रशिक्षण प्रदान किया। इसके अन्तर्गत ध्रुवपद के प्रमुख तत्वों सुर, ताल एवं साहित्य के शब्द-स्वर-संयोजन के कठिन तत्वों को स्वसृजित रोचक खेलों के द्वारा सरलीकरण करते हुए विद्यार्थियों को सिखाया। डॉ. मधु भट्ट ने अपने गुरु पं. लक्ष्मणभट्ट तैलंग द्वारा सृजित नादब्रह्म साधना पर आधारित ध्रुवपद-रचना राग मालकौस एवं ताल सूलताल में निबद्ध ''आदि नादब्रह्म नाद'' को विविध लयकारियों एवं छन्दों में उकेरते हुए सिखाया। शिविर के समापन पर विद्यार्थियों ने उसका सराहनीय प्रदर्शन भी किया। विद्यार्थियों के साथ तबले पर वनस्थली विद्यापीठ के श्री हरिनारायण मिश्रा ने बेहतरीन संगत की। इस समापन समारोह में मुख्य अतिथि डॉ. अखिल शुक्ला अधिवक्ता एवं सीनेट सदस्य, राजस्थान विश्वविद्यालय ने कार्यशाला एवं प्रशिक्षणार्थियों की सराहना की।

**दूसरी कार्यशाला**

भारत की नई पीढ़ी को पुरातन कलाओं एवं संस्कृति से परिचित कराने के महत्वपूर्ण उद्देश्य से जयपुर सिटी पैलेस के सर्वतोभद्र शाही आंगन में जयपुर प्रिंसेस एवं राजसमन्द (राज) की सांसद दिया कुमारी के संरक्षण एवं सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री रामू रामदेव के संयोजन में सवाई मानसिंह द्वितीय संग्रहालय, रंगरीत संस्था एवं सरस्वती कला केन्द्र की सहभागिता में दिनांक 1 से 30 जून को सांस्कृतिक विरासत प्रशिक्षण शिविर आयोजित हुआ एवं दिनांक 9 जून को शिविर में प्रतिभा निखार दिवस भी मनाया गया जिसमें स्वयं प्रिंसेस के सानिध्य में शिविर के अन्तर्गत सिखायी जा रही पेंटिंग, मांडना, कत्थक एवं बांसुरी के साथ ध्रुवपद गायकी की भी दो दर्जन प्रशिक्षणार्थियों ने बेहतरीन प्रस्तुतियां दीं।

ग़ौरतलब है कि इस शिविर में जयपुर घराने व जयपुर शैली में इन विधाओं के गुणी विख्यात कलाकारों द्वारा प्रशिक्षण दिया गया। इस शिविर में चित्रकारी श्री रामूरामदेव, श्री हेमन्त रामदेव एवं श्री बाबूलाल मारोठिया द्वारा, मांडना की लक्ष्मी नारायण जी कुमावत द्वारा, बांसुरी श्री आर.डी. गौड़ द्वारा, कत्थक डॉ. ज्योति भारती गोस्वामी एवं ध्रुवपद का प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग द्वारा प्रशिक्षण दिया गया। नादब्रह्म गायकी ध्रुवपद की वैदिक पद्धति के आधार पर ईश्वरसम्बोधक आलापचारी, प्राचीन संस्कृत प्रबन्ध एवं वैदिक मन्त्राधारित ध्रुवपदों की स्वररचना कर उन्हें प्रशिक्षणार्थियों को सिखाया गया, जिससे विद्यार्थी भारत पुरातन संस्कृति से रूबरू हो सकें। विद्यार्थियों को आदि शंकराचार्य द्वारा रचित संस्कृत विष्णुपद एवं स्तुतियों को भी विशेष रूप से सिखाने के अलावा ध्रुवपद में अभ्यास के तरीके, आवाज़-संस्कार, स्वर-संयोजन, छंदकारी, लयकारी एवं विविध तालों का प्रशिक्षण भी दिया गया। राग भैरव, मालकौंस एवं केदार की कुछ घरानेगत रचनाओं के साथ भारत की आज़ादी के अमृत महोत्सव पर प्रो. मधु भट्ट द्वारा सृजित नवाचार पूर्ण ध्रुवपद-रचना भी सिखाई गई, जिसकी स्वर एवं शब्द रचना स्वयं मधुभट्ट ने ही की। शिविर के समापन पर विद्यार्थियों ने सीखे हुए सबक का शानदार सधा हुआ प्रदर्शन किया। जिस पर युवा पखावज-वादक श्री ऐश्वर्य आर्य ने संगत की। गौरतलब है कि

ध्रुवपद जैसी पुरातन गायकी में 30 बाल एवं युवाओं ही नहीं अपितु वरिष्ठ नागरिकों ने भी गहरी रुचि दिखाते हुए इसे अत्यन्त लगन के साथ सीखा। कार्यशाला में सवाई मानसिंह द्वितीय संग्रहालय की एग्जीक्यूटिव ट्रस्टी रमादत्त, डायरेक्टर रीमा हूजा, नृत्यांगना ऊषा श्री एवं संस्कार भारती के राष्ट्रीय महामंत्री डॉ. अश्विन दलवी ने अतिथियों के रूप में उपस्थित होकर विद्यार्थियों को प्रोत्साहन प्रदान किया।

**तीसरी कार्यशाला** –

पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 1 फरवरी से 31 जुलाई तक 12 विद्यार्थियों ने भारत सरकार द्वारा छात्रवृत्ति के अन्तर्गत ''उत्तराधिकार गुरु–शिष्य परम्परा'' के अन्तर्गत ध्रुवपद गायिका प्रो. मधुभट्ट तैलंग से ध्रुवपद का गहन अध्ययन किया।

# संदीप व श्रीति राशिनकर पुणे में कालीदास पुरस्कार से सम्मानित

कालिदास जयंती के अवसर पर सांस्कृतिक नगरी पुणे के प्रतिष्ठित महाकवि कालिदास प्रतिष्ठान द्वारा एक गरिमामय कार्यक्रम आयोजित किया गया। पूर्वार्द्ध में आयोजित महाकवि कालिदास पुरस्कार समारम्भ के अंतर्गत अपने अभिनव रेखांकनों और कला में नवाचार के लिए चर्चित चित्रकार संदीप राशिनकर को व श्रीति राशिनकर के बहु आयामी साहित्यिक अवदान के लिए उन्हें महाकवि कालिदास पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

प्रतिष्ठान के अध्यक्ष वि. ग. सातपुते , कार्याध्यक्ष काकासो चव्हाण और उपाध्यक्ष डॉ. महेंद्र ठाकुरदास की उपस्थिति में विद्वान डॉ. न.म. जोशी, प्रो.सूर्यकांत वैद्य व अध्यक्ष डॉ. सतीश देसाई ने उन्हें शाल, स्मृति चिन्ह के साथ विशेष तौर पर पुणेरी पगड़ी पहनाकर सम्मानित किया। इस अवसर पर वी.ग. सातपुते की कृति 'सहित्यिकांच्या सहवासात' का अतिथियों द्वारा लोकार्पण किया गया।

कार्यक्रम के उत्तरार्ध में शिवाजी उराडे की अध्यक्षता में सावन पर केंद्रित प्रभावी मराठी कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। देश के चुनिंदा युवा व वरिष्ठ कवियों ने अपने इंद्रधनुषी रचनाओं से समां बांध दिया। सम्मेलन का सुचारू सूत्र संचालन सीमा गांधी ने किया। आषाढ़स्य प्रथम दिवसे आयोजित इस कार्यक्रम में बड़ी संख्या में सुधि श्रोता उपस्थित थे।

छायाकार–जगदीश कौशल

# समय की धरोहर

## डॉ. एन. राजम्

**( पद्म भूषण से सम्मानित )**

**जन्म - 16 अप्रैल 1938**

विश्व विख्यात वायलिन वादक पद्मभूषण डॉ. एन. राज्म् की प्रारिभिक संगीत शिक्षा 5 वर्ष की उम्र में अपने पिता श्री नारायण अय्यर से हुई जो कर्नाटक संगीत पद्धति के सुप्रसिद्ध वायलिन वादक थे बाद में इन्होंने ग्वालियर घराने के सुविख्यात संगीतज्ञ पंडित ओंकारनाथ ठाकुर से उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में शिक्षा प्राप्त की इन्हें पंडित औकारनाथ ठाकुर के कार्यक्रमों में वायलिन पर संगत करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ मात्र 17 वर्षा की आयु में वह गायकी ,अंग में वायलिन –वादन करने में दक्ष हो गई उस दौर के संगीत विद्वानों ने गायकी शैली में वायलिन –वादन को एक ना अविष्कार माना और इसका श्रेय डॉ.एन. राजम् को दिया गया रेडियो और दूरदर्शन के अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों के अलावा आपने देशविदेश के अनेक संगीत कार्यक्रमों में वायलिन वादन किया है इन में अमेरिका कनाडा, रूस, इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया आदि प्रमुख है आप लगभग 40 वर्षो तक बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय के संगीत संकाय में विभिन्न पदों पर कार्य करने के बाद डीन के पद से सेवा निवृत हुई है संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के लिए आपको विभिन्न सम्मान प्राप्त हुए हैं जिनमें पद्मश्री वर्ष 1984, पद्मभूषण वर्ष 2004 संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार वर्ष 2004 संगीत नाटक अकादमी की फेलोशिप वर्ष 2012 अदि प्रमुख हैं वयोवृद्व छायाकार श्री जगदीश कौशल ने वर्ष 1968 में विन्ध्य संगीत समाज रीवा द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संगीत समारोह में डा.एन.राजम् द्वारा वायलिन वादन करते समय यह फोटो क्लिक किया था.

संस्मरण

# सुविख्यात वायलिन वादक डा. एन. राजम् तब और अब

जगदीश कौशल

वायलिन वादन के क्षेत्र में अन्तर राष्ट्रीय ख्याति अर्जित करने वाली विदुषि महिला डा. एन. राजम् से मेरी पहली मुलाकाल आज से लगभग 55 वर्ष पूर्व वर्ष 1968 में हुई थी. विन्ध्य संगीत समाज रीवा द्वारा आयोजित आखिल भारतीय संगीत समारोह में उन्हें वायलिन वादन के लिए आंमत्रित किया गया था. उन दिनों वह काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के संगीत प्रभाग में वायलिन अध्यापन का कार्य करती थी इस संगीत समारोह में काशी से सुप्रसिद्व शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ और सुविख्यात तबला वादक पंडित किशन महाराज अपनी पत्नी जानी मानी सितार वादिका सुभी सविता देवी के साथ रीवा पधारे थे, चूँकि मैं विन्ध्य संगीत समाज के प्रचार सचिव के पद पर था इसलिए इन सभी अतिथि संगीतज्ञो से मेरा अच्छा खासा परिचय हो गया था मैनें इन कलाकारों के छायांकन के साथ साक्षात्कार भी लिए थे।

तब डॉ. एन. राजम् से हुई मुलाकाल में उन्होंने बताया था कि उनका जन्म 16 अप्रैल 1938 को केरल के ग्राम अरनाकुलम में हुआ था परम्परागत संगीतज्ञों के परिवार में जन्मी कुमारी /अय्यर राजम् के पिताजी श्री ए.नारायण अय्यर एक प्रतिष्ठित वायलिन वादक थे, उन्होने ने ही 5 वर्ष की आयु से इन्हें वायलिन वादन की शिक्षा देना प्ररम्भ का दिया था डॉ. एन. राजम् की प्रारंभिक संगीत शिक्षा दक्षिण भारतीय कर्नाटक संगीत पद्धति में हुई थी उन दिनों दक्षिण भारत में वायलिन प्रचलित हो चुका था, उत्तर भारतीय संगीत इस वाद्ययंत्र का पदार्पण नया –नया ही हुआ था दक्षिण भारतीय कर्नाटक संगीत पद्धति में शिक्षा पूरी करने के बाद आपने उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में शिक्षा गृहण की ग्वालियर घराने के सुविख्यात संगतिज्ञ पंडित ओंकारनाथ ठाकुर से आपने गंडा बंधवाकर शिक्षा प्राप्त की इस प्रकार उन्हें संगीत की दोनों पद्धतियों मे कुशलता प्राप्त हुई उन्होंने बताया कि पंडित ओंकारनाथ ठाकुर अपने कार्यक्रमों में वायलिन की संगति के लिए बैठाया करते थे संगति करने समय उनका यही प्रयास होता था कि उनके गुरु जो क्रियाएं कण्ठ से करते हैं उन्हें यथावत वायलिन के तंत्र पर उतारा जाय इस साधना के बल पर मात्र 17 वर्ष की आयु में वह गायकी अंग में वायलिन–वादन में दक्ष हो गई –उस दौर के संगीत विद्वानो ने गायकी शैली में वायलीन–वादन को एक नया आविष्कार माना और इसका श्रेय एन.राजम् को दिया गया सन् 1959 में श्रीमती राजम् ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दुस्तानी संगीत वायलिन में लेक्चर का पद ग्रहण किया–आपने भारतीय शास्त्रीय संगीत की हिन्दुस्तानी और कर्नाटिक प्रणालियों के तुलनात्मक अध्ययन पर शोध–प्रबंध लिखकर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से पी.एच.डी.उपाधिं प्राप्त की हिन्दुस्तानी और कर्नाटिक – दोनों पद्धतियों में वायलिन वादन के लिए स्वर्ण पदक प्राप्त किए सन् 1967 में ''सुरसिंगार संसदं'' ने आपको सुरमणि की उपाधि से विभूषित किया.

इसके बाद अब जो स्थिति है वह यह है कि लगभग 40 वर्षो तक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की संगीत संकाय में विभिन्न पदों पर रहने के बाद डीन के पद से सेवानिवृत हो चुकी है आपकी तीन पीढ़ियाँ वायलिन वादन कर रही है संगीत जगत की घरानों की प्राचीन परम्परा के सम्बंध में आपका मत है कि कलाकार को एक घरानें में बांधकर नहीं रखा जा सकता संगीत के कलाकार को हर घराने की अच्छाइयों का अनुसरण करना चाहिए.

संपर्क – ई. 3/1320 अरेरा कालोनी भोपाल–16,
मो. 9425393429

## पुस्तक – समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है।

**– संपादक**

आज़ादी का अमृत महोत्सव

लाड़ली लक्ष्मी योजना

2007 में हमने लाड़ली लक्ष्मी योजना प्रारंभ की, ताकि समाज का नजरिया बदले, इसलिए हमने योजना बनाई कि मध्यप्रदेश की धरती पर बेटी जन्म ले तो वह लखपति हो।
मेरा संकल्प है कि मेरी बेटियां सशक्त होकर आगे बढ़ें, मैंने लाड़ली लक्ष्मी योजना शुरू की, आज प्रदेश में 42 लाख से अधिक लाड़ली लक्ष्मी बेटियां हैं। मैं चाहता हूं कि मेरी बेटियां प्रशासनिक अधिकारी, प्राध्यापक, इंजीनियर, वैज्ञानिक, डॉक्टर बन प्रदेश का नाम रोशन करें। मैं भगवान से प्रार्थना करता हूं कि मेरी बेटियों पर अपने आशीष की वर्षा करना।

**शिवराज सिंह चौहान,** मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

# मध्यप्रदेश में लाड़ली आगे बढ़ रही... नाम रोशन कर रही...

## लाड़ली लक्ष्मी योजना

**स्वावलंबी बालिका, सशक्त समाज का आधार**

बेटियों के प्रति समाज की नकारात्मक सोच, लड़कों के मुकाबले उनकी कम होती संख्या, बालिका शिक्षा की कमजोर स्थिति, बेटियों को जल्दी ब्याहना जैसी समस्याओं के निदान एवं बालिकाओं के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य से मध्यप्रदेश सरकार द्वारा लाड़ली लक्ष्मी योजना 1 अप्रैल, 2007 से प्रारंभ की गई। लाड़ली लक्ष्मी योजना से मिलने वाले लाभ को स्थायी बनाने हेतु प्रदेश सरकार द्वारा 31 जुलाई, 2018 को मध्यप्रदेश लाड़ली लक्ष्मी (बालिका प्रोत्साहन) अधिनियम, 2018 लागू किया गया। यह अधिनियम प्रत्येक बालिका को मिलने वाली राशि की गारन्टी प्रदान करता है।

### पात्रता एवं शर्तें

1. 1 जनवरी 2006 अथवा उसके बाद जन्मी बालिकाएं।
2. अनाथ या दत्तक बालिकाएं।
3. माता-पिता मध्यप्रदेश के मूल निवासी हों।
4. बालिका स्थानीय आंगनवाड़ी केन्द्र में पंजीकृत हो।
5. माता-पिता आयकर दाता न हों।
6. केवल दो संतान हेतु।
7. द्वितीय संतान के जन्म पर परिवार नियोजन अपनाना अनिवार्य।

### योजना के लाभ

**लाड़ली लक्ष्मी योजना में बालिका को-**

1. रुपये 1,18,000/- का आश्वासन प्रमाण पत्र।
2. कक्षा 6वीं में प्रवेश पर छात्रवृत्ति रुपये 2,000/- कक्षा 9वीं में प्रवेश पर छात्रवृत्ति रुपये 4,000/- कक्षा 11वीं में प्रवेश पर छात्रवृत्ति रुपये 6,000/- कक्षा 12वीं में प्रवेश पर छात्रवृत्ति रुपये 6,000/-
3. 21 वर्ष की आयु पूर्ण होने पर 1 लाख की राशि, बालिका का विवाह 18 वर्ष की आयु पूर्व न होने व कक्षा 12वीं की परीक्षा में सम्मिलित होने की शर्त पर ई-पेमेंट के माध्यम से प्राप्त होगी।

### आवेदन करें

- पात्र हितग्राही लोक सेवा केन्द्र/ इंटरनेट कैफे / आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के माध्यम से ऑनलाइन / ऑफलाइन आवेदन कर सकते हैं।
- जनसामान्य एवं प्रशासनिक सुविधा हेतु विभाग द्वारा ladlilaxmi.mp.gov.in वेबसाइट संचालित की जा रही है।

श्योपुर जिले के चेनपुरा बगवाज की 8वीं कक्षा में पढ़ने वाली **गौरी** की आगे की पढ़ाई बंद कराने का निर्णय ले लिया गया था। गौरी को कक्षा 9वीं की पढ़ाई करने के लिए अपने गांव से बाहर जाना था। गांव की काफी लड़कियों की पढ़ाई इसी कारण छूट गई थी, परन्तु गौरी आगे पढ़ना चाहती थी। इसलिये उसने अपने साथ गांव के बाहर जाकर पढ़ाई करने के लिये अपनी दो सहेलियों को तैयार किया। उनके घर वालों से बात करके आंगनवाड़ी दीदी को बताया कि हम आगे पढ़ना चाहते हैं। गौरी के पिता हरिराम एवं माता दुलारी दोनों मजदूरी करते हैं। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता दीदी ने गौरी के माता-पिता से बात की, उन्हें बताया कि गौरी लाड़ली लक्ष्मी योजना में पंजीकृत है। उसे कक्षा 9वीं में रुपये 4000/- की छात्रवृत्ति मिलेगी। फिर कक्षा 11वीं और 12वीं में रुपये 6000/- की छात्रवृत्ति मिलेगी। यदि पढ़ाई बीच में छोड़ दी तो लाड़ली लक्ष्मी योजना का लाभ 1 लाख की राशि नहीं मिलेगी। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ने सुझाव दिया कि जिस स्कूल में गांव की लड़कियां पढ़ रही हैं, उसी में गौरी भी पढ़ सकती है। गौरी के माता-पिता इस बात पर सहमत हो गये और उसका कक्षा 9वीं में एडमिशन शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हजारेश्वर में करा दिया। इस तरह लाड़ली लक्ष्मी योजना **गौरी** की पढ़ाई में मददगार बनी।

## लाड़ली लक्ष्मी योजना के बेहतर परिणाम सामने आ रहे हैं...

### उपलब्धियां

मध्यप्रदेश के 52 जिलों के 313 विकासखण्डों के 52,117 गांवों में योजनान्तर्गत अब तक 42 लाख से अधिक बालिकाओं का पंजीयन किया जा चुका है एवं लाड़ली लक्ष्मी योजना निधि में रुपए 10,654 करोड़ की राशि जमा की गई है। योजना प्रारंभ से अब तक कक्षा 6वीं, 9वीं, 11वीं एवं 12वीं में प्रवेशित कुल 9 लाख से अधिक बालिकाओं को राशि रुपए 231.07 करोड़ की छात्रवृत्ति का वितरण किया जा चुका है।

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

### NHFS-5 के अनुसार

**मध्यप्रदेश में बाल विवाह में 9.3% की कमी आई है।**

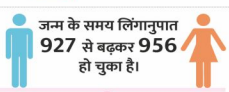

**जन्म के समय लिंगानुपात 927 से बढ़कर 956 हो चुका है।**

### लाड़ली लक्ष्मी योजना 2.0

बालिकाओं को आत्मनिर्भर बनाने एवं आर्थिक रूप से सशक्त करने के लिए विभाग ने लाड़ली लक्ष्मी योजना 2.0 तैयार कर प्रारंभ की है। इसमें बालिकाओं को उच्च शिक्षा एवं व्यवसायिक प्रशिक्षण की सुनिश्चितता का प्रावधान किया गया है।

### लाड़ली e-संवाद

लाड़लियों से माननीय मुख्यमंत्री जी के संवाद हेतु लाड़ली मोबाइल एप तैयार किया गया है। Google Play Store से यह एप download किया जा सकता है।

https://play.google.com/store/apps/details?id=com.crisp.ladlilaxmiyojna

### माँ तुझे प्रणाम

इस कार्यक्रम के अंतर्गत चयनित 178 लाड़ली बालिकाओं को देश की सीमा "बाघा बार्डर" का भ्रमण कराया गया।

### मुख्यमंत्री जी का धन्यवाद

**"लाड़ली लक्ष्मी"** योजना और **"माँ तुझे प्रणाम"** योजना हमें प्रभावित करती है आगे बढ़ने के लिए। हमारे भविष्य को साकार करने का अवसर देने के लिए धन्यवाद।

**कु. एंजेल जैन,** लाड़ली लक्ष्मी, मंडला

**बेटियों के उज्ज्वल भविष्य के लिए दृढ़ संकल्पित मध्यप्रदेश सरकार**

D-19242/22

पेंटिंग : गोपाल भारती

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल ( म.प्र. )- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास